प्रा.सु.1, 2074
Saint Park, ST

श्री आवश्यकसूत्र

Notes Date: 3

हरिभद्रीय वृत्ति

प्रव. अवग्रह के निक्षेप-

गा.1222 नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव, ये अवग्रह के 6 निक्षेप।

★ द्रव्यावग्रह = सचित्तादि द्रव्य का ग्रहण।

★ क्षेत्रावग्रह = जो जितने क्षेत्र का अवग्रह करे, उसका उतना अवग्रह।

कालावग्रह = जो जितना काल ग्रहण करे अर्थात् चौमासे में 4 मास रहने की अनुज्ञा लेना, शेषकाल में 1-1 मास।

भावावग्रह = प्रशस्त - ज्ञानादि का अवग्रह।
अप्रशस्त - क्रोधादि " ।

अथवा

★ अवग्रह 5प्र. - देवेंद्र, राजा, गृहपति, घर का मालिक, साधर्मिक का अवग्रह।

★ यहाँ भावावग्रह या साधर्मिकावग्रह का प्रयोजन है।

प्र. साधर्मिकावग्रह कैसे?

उ. चारों दिशा में गुरु का आत्मप्रमाण अवग्रह होता है, अतः वह साधर्मिक अवग्रह होगा।

गा.1223 बाहर रहा हुआ अनुज्ञा लेकर मितावग्रह में स्पर्श करे। अवग्रह क्षेत्र में सिर से गुरु के चरण का स्पर्श हो, उतना प्रवेश करे।

★ स्पर्श करे यानि रजोहरण से प्रमार्जे।

★ अव्याबाध 2प्र. - द्रव्य से खड्गादि से आघात की व्याबाधा जिसे नहीं है।
भाव से चारित्र वाले सम्यग्दृष्टि को।

★ यात्रा - 2प्र. द्रव्य से तापसादि का स्वक्रिया पालन।
भाव से साधुओं का।

Notes　Date :

★ यापना २ प्र.– द्रव्य से औषधादि से काया की
भाव से इंद्रिय-नोइंद्रिय के उपशम से शरीर की।

★ क्षामणा २ प्र.– द्रव्य से कलुषाशय वाले, ऐहिक अपाय से डरने वाले को।
भाव से संविग्न सम्यग्दृष्टि को।

गा. १२२४ अव्याबाध २ प्र. द्रव्य और भाव से। इसी प्रकार यात्रा, यापना और अपराध क्षामणा भी विस्तारार्थ से कहना।

★ यहाँ सूत्र में प्राय: वंदन करने वाले की विधि कही। निर्युक्ति-कार ने भी वही विधि कही है।

टीप्पणक → सूत्र में 'चउसिर' में २ बार सिर झुकाने रूप वन्दन की विधि भी कही अत: प्राय: लिखा है।

१. 'चउसिर' तो निर्युक्तिकार ने कहा, सूत्र में नहीं है।
२. निर्युक्तिकार ने भी सूत्र के अभिप्राय को ही स्पष्ट किया होने से दोष नहीं है।

हरिभद्रीय वृत्ति अब अब वन्दन की विधि–

गा. १२२५ छंदेणऽणुजाणामि तहत्ति तुब्भंपि वट्टई एवं। अहमवि खामेमि तुमे वयणाइं वंदणारिहस्स॥

★ छन्दसा, अनुजानामि, तहत्ति, तुब्भंपि वट्टई एवं = तुझे भी ऐसा ही वर्तता है, अहमवि खामेमि तुमे = मैं तुझे खमाता हूँ; ऐसे वंदन के योग्य गुरु के वचन होते हैं।
भावार्थ– सूत्र के अर्थ में बता दिया है।

गा. १२२६ वंदन करने वाले को संवेग उत्पन्न करते, गारवरहित, शुद्ध हृदय वाले गुरु को

भी ऐसे वंदन स्वीकारना चाहिए।

* शुद्ध हृदय = कषाय से मुक्त।
संवेग = शरीरादि से पृथक्त्व अथवा मोक्ष की उत्सुकता।

अव. सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति पूर्ण हुई। पदार्थ-पदविग्रह कहे गए। अब चालना-प्रत्यवस्थान –

गा.1227 (पूर्वपक्ष) आवर्तादि में यहाँ युगपद् काय-वचन का व्यापार कहा है। यह अयुक्त है क्योंकि 2 क्रिया का निषेध है।

* दो उपयोग न होने से 2 क्रिया भी साथ में नहीं करते। अतः सूत्र बोलकर फिर काय व्यापार करना चाहिए।

गा. 1228 (उत्तरपक्ष) भिन्न विषय वाली 2 क्रिया का निषेध है, एक विषय में नहीं। क्योंकि भंगिक सूत्र में 3 योग की क्रिया भी कही है।

* कहा है- भंगिकश्रुत को गुणता (गुनगुनाता) तीनों योग में वर्तता है। (मन से भांगे गिनना, वचन से परावर्तन, काया से उंगलियों पर गिनना)

गा. 1229 (पूर्वपक्ष) शिष्य प्रथम प्रवेश में वंदन कर आवस्सियाए से निकलकर पुनः दूसरे प्रवेश में वंदन क्यों करता है?

गा. 1230 (उत्तरपक्ष) जह दूओ रायाणं णमिउं कज्जं निवेइउं पच्छा।
वीसज्जिओ वि वंदिय गच्छइ एमेव साहू वि॥

* जैसे दूत राजा को नमन कर कार्य निवेदन करता है। फिर विसर्जन किया हुआ भी पुनः वंदन कर जाता है, ऐसे ही साधु भी।

अव. वंदनविधि के सेवन का फल–

गा. 1231 एयं किइकम्मविहिं जुंजंता चरणकरणमुवउत्ता। साहू खवंति कम्मं अणेगभवसंचियमणंतं॥

* अनुगम कहा गया। नय सामायिक अध्ययन की निर्युक्ति में ही देखना।

Notes Date:

कृत्वा वन्दनविवृतिं प्राप्तं यत्कुशलमिह मया तेन।
साधुजनवन्दनमलं सत्त्वा मोक्षाय सेवन्तु॥

वंदनाध्ययनं समाप्तम्॥

श्री प्रतिक्रमण-चतुर्थाध्ययनम्।

वंदनाध्ययन पूर्ण हुआ। अब प्रतिक्रमणाध्ययन शुरु करते हैं। इसका संबंध-

(a) ~~पहले वाले~~ तीसरे अध्ययन में 'अरिहंत द्वारा कथित सामायिक गुण वाले को ही वंदन करना चाहिए' ऐसा कहा था।

(a) यहाँ वंदनादि न करने से हुए ~~स्खलन~~ स्खलित की निंदा कहते हैं।

अथवा

(b) वंदन में साधुभक्ति से कर्मक्षय कहा, यहाँ मिथ्यात्वादि से पीछे हटने द्वारा कर्म बंध का निषेध कहेंगे।

अथवा

(c) सामायिक में चारित्र कहा। चतुर्विंशतिस्तव में दर्शन-ज्ञान रूप अरिहंत की गुणस्तुति कही। इन तीनों के वितथासेवन गुरु को वंदन पूर्वक निवेदन करना चाहिए। अतः वंदन कहा। अब निवेदन कर पुनः शुभ स्थानों में ~~सेवन रूप~~ भी पुनः वापस आना चाहिए अतः प्रतिक्रमण कहते हैं।

ऐसे अनेक संबंध से आए हुए प्रतिक्रमण अध्ययन के 4 अनुयोग द्वार विस्तार से कहना चाहिए (देखें भाग 4 pg. 10 अव.)।

उसमें ~~नि॰~~ नाम निष्पन्न निक्षेप में 'प्रतिक्रमण अध्ययन' नाम। इसमें 'प्रतिक्रमण' शब्द का निरूपण करते हैं-

(a) प्रतीपं प्रतिकूलं वा क्रमणं = पीछे उल्टा आना।
शुभयोगों से अशुभयोग में गए हुए को शुभों में ही वापस आना।
क्षायोपशमिक भाव से औदयिक भाव के वश गए हुए का वापस आना।

(b) शुभयोगेषु प्रति प्रति क्रमणं = शुभ योगों में बार-बार वर्तन करना।

अव. जैसे करण से कर्म-कर्ता की सिद्धि होती है क्योंकि कर्म-कर्ता बिना करणत्व नहीं घटता; वैसे प्रतिक्रमण से प्रतिक्रामक-प्रतिक्रान्तव्य की भी सिद्धि हो जाती है अतः इन तीनों को कहते हैं –

गा. 1232 प्रतिक्रमण, प्रतिक्रामक और प्रतिक्रान्तव्य सानुपूर्वी से प्रत्युपन्न, अतीत और अनागत में भी जानना।

* प्र. प्रतिक्रमण अतीत विषयक होता है क्योंकि 'अतीतं पडिक्कमामि पडुप्पन्नं संवरेमि अणागयं पच्चक्खामि' कहा है, तो तीनों काल में कैसे जोड़ना?

उ. प्रतिक्रमण शब्द का यहाँ अशुभयोग से निवृत्ति रूप सामान्य से अर्थ लेना। अतः भूतकाल में निंदा से अशुभ योग निवृत्ति, वर्तमान में संवर से अशुभयोग निवृत्ति और भविष्य में प्रत्याख्यान से अशुभयोग-निवृत्ति ही है। अतः दोष नहीं है।

अव. प्रतिक्रामक का स्वरूप –

गा. 1233 अशुभ पापकर्म योगों का जीव प्रतिक्रामक है। असाधु ध्यान और प्रशस्त योगों का प्रतिक्रमण नहीं करता।

* तु शब्द विशेषणार्थ –
सभी जीव प्रतिक्रामक नहीं हैं किंतु उपयुक्त सम्यग्दृष्टि ही प्रतिक्रामक है।

* प्र. पापकर्म के योग अशुभ ही होते हैं तो विशेषण क्यों लिखा?
उ. स्वरूप बताने के लिए।

* प्र. ध्यान भी प्रशस्त योग होने से अलग ग्रहण क्यों?
उ. मनोयोग की प्रधानता बताने के लिए।
प्रशस्त योग के ग्रहण से ध्यान भी प्रशस्त ही लेना।

Notes Date :

★ प्र. 'यथोद्देशं निर्देशः' न्याय से प्रतिक्रमण छोड़कर प्रतिक्रामक क्यों कहा?
उ. प्रतिक्रामक अल्पवक्तव्य होने से और क्रिया कर्ता के अधीन होने से दोष नहीं है।

प्र. तो प्रतिक्रामक पहले क्यों नहीं लिखा।
उ. क्योंकि प्रतिक्रमण अध्ययन का नाम निष्पन्न निक्षेप होने से।

अव. प्रतिक्रामक कहा गया। प्रतिक्रमण के पर्याय वाची –

गा.1234 (हारगा) प्रतिक्रमण, प्रतिचरणा, परिहरणा, वारणा, निवृत्ति, निंदा, गर्हा, शोधि 8प्र.।
I. II. III. IV. V. VI. VII VIII.

अव. प्रतिक्रमण के निक्षेप –

गा.1235 I. नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव 6 निक्षेप।

★ द्रव्य प्रतिक्रमण – अनुपयुक्त सम्यग्दृष्टि को
– लब्धि वि. के लिए करते उपयुक्त सम्यग्दृष्टि को।
– निह्नव को
– पुस्तकादि में लिखा हुआ (भाव का कारण बनने से द्रव्य)

★ क्षेत्र – जिस क्षेत्र में प्रतिक्रमण का वर्णन किया जाए।
– " " " " किया जाए।
– " " से वापस आया जाए।

★ काल 2प्र. ध्रुव → भरत-ऐरावत में प्रथम-अंतिम तीर्थंकर के तीर्थ में दो Time।
अध्रुव → मध्यम तीर्थंकरों के तीर्थ में कारण होने पर।

★ भाव 2प्र. – प्रशस्त – मिथ्यात्वादि ~~का~~ से
अप्रशस्त – सम्यक्त्वादि से।

★ प्रशस्त का यहाँ अधिकार है।

अव. II. प्रतिचरणा – प्रति प्रति तेषु अर्थेषु चरणं-गमनं तेनाऽऽसेवनाप्रकारेण
बार-बार उन अर्थों में आसेवना से रहना। निक्षेप →

Notes Date: 9.

गा.1236 नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव 6 निक्षेप।

* द्रव्य प्रतिचरणा – प्रतिक्रमण जैसे ही।
* क्षेत्र " – पहले दो प्रतिक्रमण जैसे। वहाँ eg. शालिगोपिकादि (जंतु विशेष) चावल के खेत में चरते हैं।
* काल – पहले दो क्षेत्र की तरह ही।
  eg. साधु सुबह या शाम को प्रतिक्रमण करते हैं।
* भाव – प्रशस्त – सम्यग्दर्शनादि में।
  अप्रशस्त – मिथ्यात्वादि में।

अव. III. परिहरणा = सर्व प्रकार से वर्जन। निक्षेप –

गा.1237 नाम स्थापना द्रव्य परिरय परिहार वर्जना अनुग्रह भाव, 8 प्र. की परिहरणा।

* द्रव्य – हेय विषयक अनुपयुक्तसम्यग्दृष्टि को या लब्धि वि. के लिए उपयुक्त को या निह्नव को
  – कंटकादि की परिहरणा।
* परिरय – पर्वत, नदी की परिहरणा (उन्हें cross किए बिना रास्ता बदलकर जाना)
* परिहार – लौकिक – माता वि. की।
  लोकोत्तर – पार्श्वस्थादि की।
* वर्जना – लौकिक – इत्वर – eg. सूतक में बच्चे वि. का वर्जन।
  यावत्कथिक – eg. चंडाल वि. का वर्जन।
  लोकोत्तर – इत्वर – eg. शय्यातर पिंडादि " ।
  यावत्कथिक eg. राजपिंडादि " ।
* अनुग्रह परिहरणा eg. अक्खोड़भंग परिहरणा।
  अक्खोड़ यानि हल वि. से नहीं जोता हुआ क्षेत्र, जहाँ लोग रहते न हो। ऐसी जगह में जो सबसे पहले आकर रहने लगे और खेती करे, उन लोगों का राजा अनुग्रह से जमीन का कर माफ कर देता है। अभी भी वल्कभंजक नाम से ये लोग रूढ हैं। (टीप्पणक)
* भाव – प्रशस्त – क्रोधादि की परिहरणा।
  अप्रशस्त – ज्ञानादि " " ।

Notes Date:

* प्रतिक्रमण अशुभ योग के परिहार पूर्वक होने से परिहरणा प्रतिक्रमण का पर्याय वाची है।

अव. IV. वारणा = निषेध। निक्षेप –

गा. 1238 नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव, वारणा के 6 निक्षेप।

* द्रव्य वारणा – तापसादि द्वारा हल से कृष्ट भूमि में उत्पन्न अन्नादि के परिभोग का निषेध।
  - अनुपयुक्त सम्यग्दृष्टि का
  - निह्नव का देशना में निषेध (?)
  - रोगी को अपथ्य का निषेध।
* क्षेत्र – जिस क्षेत्र में वर्णन किया जाए या वारण किया जाए।
  - अनार्य क्षेत्र का वर्णन।
* काल – जिस काल में वर्णन किया जाए या वारण किया जाए।
  - विकालादि में स्वाध्याय का निषेध।
  - वर्षा में विहार का निषेध।
* भाव – प्रशस्त – प्रमाद का वारण।
  अप्रशस्त – संयमादि " ।

अव. V निवृत्ति = वापस आना।

गा. 1239 नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव, 6 निक्षेप।

* वर्णन स्वयं करना।

अव. VI. निंदा = आत्म साक्षी में स्वयं की कुत्सा।

गा. 1240 नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव, 6 निक्षेप।

* द्रव्य निंदा – तापसादि की या अनुपयुक्त सम्यग्दृष्टि की या निह्नव की या अशुभ द्रव्य की विषयक निंदा।
* क्षेत्र – Same
  - संसक्त क्षेत्र की निंदा।

Notes Date: '11

* काल - Same - दुकालादि की।
* भाव - प्रशस्त - असंयमादि की।
अप्रशस्त - संयमादि की।

अव. VII. गर्हा = परसाक्षी में कुत्सा।
गा.1241 नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव।
* द्रव्य - Same - अनुपयुक्त सम्यग्दृष्टि स्वगुरु को आलोचना करता हुआ।

अव. VIII. शुद्धि = विमल, निर्मल करना।
गा.1242 नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव।
* द्रव्य - Same - जलक्षारादि से वस्त्र सुवर्णादि की शुद्धि।
* क्षेत्र - Same - कुदाली से हड्डी वि. शल्य का उद्धरण।
* काल - Same - शंकु (जिसकी छाया से Time मापा जाता था) वि. से समय जानकर अशुद्ध काल का त्याग।
* भाव - प्रशस्त - ज्ञानादि की शुद्धि।
अप्रशस्त - अशुद्ध क्रोध को निर्मल करना यानि स्पष्ट क्रोध करना।

अव. द्वार गा. 1234 पूर्ण (Pg. 8)। इन 8 पदों के दृष्टांत -
गा.1243 1. मार्ग 2. प्रासाद 3. दुग्धकाय 4. विषभोजन-तालाब 5.6. दो कन्या 7. पतिमारिका 8. वस्त्र और रोग।
* 1. प्रतिक्रमण में मार्ग दृष्टांत -
एक राजा ने नगर के बाहर महल बनाने की इच्छा से सीमा बनवाई × वहाँ रक्षक नियुक्त कर आदेश दिया, 'जो यहाँ घुसे उसे मार देना; यदि जैसे आया था, वैसे ही वापस जाए तो छोड़ देना' × एकदा रक्षक व्यस्त होने पर दो पुरुष, जिन्हें काल साथ नहीं देता, घुसे × रक्षक देखकर तुरंत तलवार म्यान से खींचकर आए और पूछा - तुम कैसे आए? × एक पुरुष - 'क्यों, आने में क्या तकलीफ' कहकर इधर-उधर दौड़ने लगा × रक्षकों ने उसे मार दिया × दूसरा डरा हुआ

Notes Date :

बोला- जो आप कहोगे वैसा करूँगा x रक्षक - जैसे आया था वैसे ही वापस जा x वह वैसे ही गया तो बच गया x

यह द्रव्य प्रतिक्रमण हुआ। भाव में उपनय -
राजा = तीर्थंकर, महल = संयम, 2 पुरुष = साधु, राग-द्वेष = रक्षक। यदि एक साधु ने संयम का लंघन किया तो मारा गया। दूसरा प्रमाद से असंयम में गया हुआ, नहीं करने के संकल्प के साथ वापस आया तो मोक्ष में गया।

2. प्रतिचरण में प्रासाद दृष्टांत -
एक नगर में समृद्ध वणिक् x उसका नया महल रत्नों से भरा x पत्नी को सौंपकर यात्रा पर गया x वह शरीर में लगी x शृंगार में व्यापृत उसने महल का ध्यान न रखा x महल का एक भाग गिरा x उसने सोचा - थोड़ा सा गिरने में क्या? x एकदा एक कोने में पीपल उगा x उसने सोचा - छोटा सा पीपल क्या करेगा? x पीपल बड़ा हुआ तो पूरा महल टूटा x वणिक् वापस आया x टूटा महल देखकर पत्नी को निकाल दिया x
अन्य महल बनाया x अन्य पत्नी को सौंपा x वह तीनों Time रोज ध्यान रखती है x लकड़ी के furniture, लेप्यकर्म (पुतली वि.), चित्र कर्म खराब होने पर वह ठीक करवाती है x वणिक् आया x तुष्ट होकर उसे ही स्वामिनी बनाई x x
यह द्रव्य प्रतिचरण हुआ। भाव में उपनय -
वणिक् = आचार्य, महल = संयम, एक साधु ने साता गारव से प्रतिचरण नहीं किया तो पहली पत्नी की तरह दुःखी हुआ, जिसने प्रतिचरण किया वह निर्वाण सुख का भी भागी हुआ।

3. परिहरणा में दुग्धकाय (दूध की कावड़) -
दुग्धकाय यानि दुग्ध के घड़े की कावड़ (जिसमें दोनों ओर घड़े लटकाए)
एक कुलपुत्र को पुत्री हुई x उसकी दो बहन अन्य गाँव में रहती थी x बहनों के पुत्र बड़े होने पर दोनों उसकी पुत्री का हाथ माँगने आई x कुलपुत्र - तुम्हारे पुत्र को भेजो, जो निपुण होगा उसे पुत्री दूँगा x दोनों पुत्र आए x कुलपुत्र ने दोनों को

पड़ और गोकुल से दूध लाने कहा x दो रास्ते थे - एक लंबा किंतु अच्छा, दूसरा छोटा किंतु खराब x एक छोटे रास्ते से चला किंतु विषमस्थान में टकराने से एक घड़ा फूट गया तो पीछे वाला घड़ा नीचे गिरकर फूट गया x एक लंबे रास्ते से धीरे-धीरे काबड़ लेकर आया x माता खुश हुए और कहा- मैंने जल्दी आने का नहीं किंतु दूध लाने का कहा था x अतः दूसरे को पुत्री दी xx

जिसने सीधा-छोटा रास्ता छोड़ दिया वह द्रव्य परिहरणा। भाव में उपनय-
कुलपुत्र = तीर्थंकर, दुग्ध = चारित्र, कन्या = सिद्धि, छोटा रास्ता = जिनकल्पादि, लंबा रास्ता = स्थविर कल्प, गोकुल = मनुष्य भव

जो साधु अयोग्य होने पर भी जिनकल्प स्वीकारे, वह दूध के घड़े की तरह चारित्र विराधना कर सिद्धि रूपी कन्या का अनाभागी होता है। जो गीतार्थ आपत्तियों में जयणा से यत्न कर संयम विराधना न करता है, वह जल्दी मोक्ष में जाता है।

4. वारणा में विषभोजन - तालाब का दृष्टांत —
एक राजा ने शत्रुसैन्य को आता हुआ जानकर रास्ते के एक गाँव में सभी भक्ष्य वस्तु और पानी के तालाब वि. में विष मिश्रित करवाया x शत्रु राजा ने विष मिश्रित जानकर स्वयं की सेना में घोषणा की - जो ये मिष्ट भोजन और पानी वापरेगा, वह मरेगा; जो कड़वा भोजन और दुर्गंधी पानी पीएगा, वह बचेगा x घोषणा के बाद भी जो आसक्त हुए, वे मरे; जो आसक्त नहीं हुए, वे बचे xx

राजा की घोषणा द्रव्य वारणा। भाव में उपनय -
राजा = तीर्थंकर, विषान्नपान = विषय, जो आसक्त हुए वे संसार में भटके, अन्य तिर गए।

5. निवृत्ति में एक कन्या दृष्टांत — एक बुनकर की पुत्री शाला में कपड़ा बुनती है x एक धूर्त मधुर स्वर से वहाँ गीत गाता है x वह आसक्त हुई x धूर्त - हम भाग

Notes Date :

जाते हैं x कन्या- मेरी सखी राजपुत्री के साथ मेरा संकेत है कि हम दोनों एक ही पुरुष की पत्नी बनेंगी, अतः उसके बिना मैं नहीं आऊँगी x धूर्त- उसे भी ले आ x बुनकर की पुत्री ने राजपुत्री को कहा x वह भी तैयार हुई x एक सुबह तीनों भागे x रास्ते में किसी ने गीत गाया-

जइ फुल्ला कणियारया चूयय / अहिमासयंमि घुटुंमि /
तुह न खमं फुल्लेउं जइ पच्चंता करिंति डमराइं ॥

वसंत ऋतु आम्रवृक्ष को उपालंभ देती है- हे आम्र! अधिकमास घोषित होने पर भी यदि कर्णिकार नामक कुत्सित वृक्ष पुष्पित होते हैं, तो यदि आस-पास वाले अशोभन करे तो भी तुझे पुष्पित होना योग्य नहीं है (उत्तम वृक्ष योग्य समय में ही पुष्पित होते हैं)।

राजपुत्री ने सोचा- बुनकर की पुत्री ऐसा करती है तो मुझे भी करना जरूरी नहीं है x सोचकर वह बोली- मैं रत्नकरंडक तो भूल गई x ऐसे बहाने से वह वापस आई x वहाँ एक सामंत राजा का पुत्र उसके पिता राजा के शरण में आया था x उसके साथ विवाह किया x उसके राजा बनने पर वह पटरानी बनी xx

राजकन्या का वापस आना द्रव्य निवृत्ति / भाव में उपनय-
कन्या = साधु, धूर्त = विषयासक्त, गीत = गुरु की शिक्षा / शिक्षा से जो वापस आए वे सुगति में गए, अन्य दुर्गति में गए।

अथवा अन्य उदाहरण-
एक गच्छ में आचार्य एक तरुण साधु को ग्रहण- धारण में समर्थ जानकर तैयार करते हैं x एकदा अशुभकर्मोदय से वह दीक्षा छोड़कर निकला x निकलते हुए एक गीत सुना x मंगल के लिए उसने उपयोग दिया x वहाँ शूरवीर युवान ये गा रहे थे-

तरियव्वा य पइण्णा मरियव्वं वा समरे समत्थएणं।
असरिसजणउल्लावा न हु सहियव्वा कुलपसूयएणं॥

कुल में उत्पन्न समर्थ पुरुष द्वारा युद्ध में या तो प्रतिज्ञा पूर्ण की जाना

चाहिए या मर जाना चाहिए किंतु असदृश (जो लोग समान न हो, हीन हो) लोगों के उत्पात सहन नहीं करना चाहिए।

लज्जां गुणौघजननीं जननीमिवाऽऽर्यामत्यन्तशुद्धहृदयामनुवर्तमानाः।
तेजस्विनः सुखमसूनपि संत्यजन्ति सत्यस्थितिव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञां॥

गुणों के समूह को उत्पन्न करने वाली और अत्यंत शुद्ध हृदय वाली आर्या लज्जा का माता की तरह अनुसरण करने वाले सत्य स्थिति के व्यसनी (सत्य के पक्षधर) तेजस्वी सुखपूर्वक प्राणों को भी छोड़ते हैं किंतु प्रतिज्ञा नहीं छोड़ते।

ऐसे गीत को सुनकर वह साधु सोचता है- यदि संग्राम की तरह दीक्षा छोड़कर मैं जाऊँगा तो हीन लोग मेरी हीलना करेंगे × अतः वापस आकर आत्मोचितप्रतिक्रांत साधु ने आचार्य की इच्छा पूर्ण की।

6. निंदा में दूसरी कन्या का उदाहरण—

एक नगर में राजा ने 'अन्य राजाओं की चित्रसभा है' ऐसा सोचकर स्वयं की चित्रसभा कराने के लिए चित्रकार समूह को सौंपा × एक चित्रकार की पुत्री भक्त लाती है × राजा राजमार्ग से अश्व पर वेग से निकला × वह डरकर में भागकर जैसे तैसे बची × भोजन लेकर पहुंचने पर पिता शरीर चिंता के लिए गए × उसने शिला पर मोरपींछ बनाई × राजा चित्रसभा में घूमने आया × राजा ने मोरपींछ लेने के लिए हाथ आगे किया किंतु शिला से टकराने से नख दुःखने लगे × वह हंसी × बोली - 3 पाए से पतंग टिकता नहीं है, चौथे आप गिरे × राजा- कैसे ? × पुत्री- रास्ते में अश्व से जैसे-तैसे बची, अश्वसवार को खबर नहीं कि मैं किसी को मारूंगा, वह पहला; राजा ने चित्रकारों को सभा दी किंतु सभी के कुटुंब में अनेक चित्रकार हैं, मेरे पिता अकेले हैं उन्हें भी उतना ही भाग दिया अतः राजा दूसरा; राजा की चित्रसभा में मेरे पिता ने सब धन खर्च दिया, अब जैसा तैसा आहार लाती हूँ, वह भी वे ठंडा बापरते हैं, तीसरे पिता; यहाँ मोर कैसे आए? यदि आए भी तो देखना चाहिए आपने तो देखे बिना ही लेने के लिए हाथ लंबा दिया, चौथे आप × राजा ने विवाह किया ×

राजमहल में बहुत रानियाँ होने से राजा सबके पास 1-1 रात जाता है × इसने

Notes Date :

रोज राजा इसके पास ही आए इसलिए युक्ति करी× दासी को सीखा दिया कि मैं राजा के पैर दबाती हूँ तब तू मुझे एक कहानी पूछना × प्रथम रात को जब राजा को नींद आने लगी तब दासी- हे रानी! राजा जागते हैं तब तक एक कहानी कहो × रानी - "एक व्यक्ति की पुत्री चतुर थी × एक साथ 3 जन की माँग आई × माता-भाई- पिता ने तीनों के साथ लग्न नक्की किए × तीनों एक साथ आए × रात को साँप डँसने से वह मर गई × तीन में से एक पुरुष उसके मस साथ ही जला × दूसरे ने अनशन किया × तीसरे ने देवी की आराधना कर संजीवन मंत्र लिया × मंत्र से पुत्री को पुनः सजीव किया किंतु उसके साथ जला पुरुष भी उत्पन्न हुआ × तीनों वापस आ गए तो पुत्री का विवाह किससे करना?" × राजा और दासी जवाब न दे सके तो दासी- आप ही कहो? × रानी- आज मुझे नींद आ रही है, कल कहूँगी × कहानी के कुतूहल से दूसरे दिन राजा उसके पास ही आया × रानी - तीन में से जिस पुरुष ने उसे उत्पन्न किया वह पिता हुआ, जो साथ में उत्पन्न हुआ वह भाई हुआ अतः अनशन वाले पुरुष के साथ विवाह किया ×

दासी- दूसरी कहानी कहो × रानी - "राजा के यहाँ सोनी भोयरे में से बाहर निकले बिना रत्नों के प्रकाश में रानी के आभूषण बनाते हैं × एक सोनी - अभी कौन सा समय चल रहा है? × दूसरा- रात्रि × जो चंद्र-सूर्य को देखता नहीं है उसे कैसे पता चलता?" दासी- आप ही कहो × रानी- मुझे नींद आ रही है, कल कहूँगी × तीसरे दिन रानी- उस सोनी को रतिअंधा (Night-blindness) रोग होने से वह जान गया × दासी- दूसरी कहानी कहो ×

रानी - "एक राजा के पास 2 चोर लाए गए × राजा ने उन्हें पेटी में बंद कर समुद्र में डलवाया × भोगे एक पुरुष ने पेटी निकाली × चोर को पूछा - कितने दिन से बंद हो? × चोर - 4 दिन से × उस चोर को कैसे पता चला?" × चौथे दिन रानी - उस चोर को हर चौथे दिन बुखार आता था ×

रानी - "दो सौतेली पत्नी थी × एक के पास रत्न थे × दूसरी पत्नी चोर न ले इसलिए उसने एक घड़े में बंद कर दिये ऐसी जगह रखा × दूसरी पत्नी ने मौके पर रत्न चोरकर घड़ा वैसे ही बंद कर दिया × तो भी पहली को रत्न चोरी की खबर पड़ गई × पहली पत्नी को घड़ा खोले बिना कैसे पता चला?" × छठें दिन रानी -

Notes Date : 17

वह घड़ा काँच का था x

रानी - "एक राजा के पास चार पुरुष रत्न थे - नैमेत्तिक, रथकार, सहस्रयोधी, वैद्य x राजा ने चारों को कन्या दी किंतु वह एक के साथ ही परणी x कैसे ? - उस कन्या को कोई विद्याधर ले गया x कन्या न मिलने से राजा ने कहा - जो कन्या लाएगा उसके साथ विवाह कराऊँगा x नैमेत्तिक - विद्याधर इस दिशा में ले गया x रथकार ने उड़नेवाला रथ बनाया x चारों रथ में पहुँचे x सहस्रयोधी ने विद्याधर को मार डाला x मरते हुए विद्याधर ने कन्या का मस्तक काट दिया x वैद्य ने संजीवनी से पुनः जीवित किया x राजा ने चारों को दी x कन्या - मैं चारों की पत्नी नहीं हो सकती अतः जो मेरे साथ अग्नि में जलेगा उसकी पत्नी मैं बनूँगी x बोलो, वह किसकी पत्नी बनेगी ?" x ६ठे दिन - नैमेत्तिक ने जान लिया कि वह मरने वाली नहीं है अतः नैमेत्तिक उसके साथ अग्नि में जला, दूसरे नहीं x कन्या ने चिता के नीचे सुरंग खुदाई थी, उससे दोनों निकल गए x नैमेत्तिक से विवाह किया x

रानी - "विवाह में जाती स्त्री ने किसी से सोने के कड़े लिए x सामने वाले कड़े की कीमत जितने रूपये लेकर कड़े दिए x स्त्री ने कड़े स्वयं की पुत्री को पहनाए x कुछ वर्षों बाद मालिक ने पुनः कड़े माँगे x किंतु पुत्री बड़ी होने से कड़े निकले नहीं x कड़े का मालिक - ये कड़े दे दो किंतु, इसके दूसरे पैसे ले लेना x स्त्री - हाथ काट के कड़े दूँ ? कहो तो same दूसरे कड़े बनवा दूँ x मालिक - ये ही कड़े चाहिए x बोलो, कैसे उसे समझाना ?" x ७वें दिन - उसे कहना कि वही रूपये हमें दो तो ये ही कड़े तुम्हें दें x

ऐसे ६ मास तक राजा रोज उसके पास ही जाता x अन्य रानियाँ चित्रकार पुत्री के छिद्र देखती हैं x चित्रकार पुत्री रोज एकांत में जाकर पुराने वस्त्राभूषण देखकर स्वयं की निंदा करती है कि 'तू चित्रकार की पुत्री है, तेरे पास राजलक्ष्मी है, राजा तेरा अनुवर्तन करता है अतः तू गर्व मत करना' x राजा को अन्य रानियों ने कहा - ये एकांत में कामण-दूमण कर आपको मार देगी x राजा ने तलाश कराकर सत्य जाना x खुश होकर उसे पटरानी बनाया x

Notes Date :

यह रानी की द्रव्य निंदा। भाव निंदा साधु की - हे जीव! जैसे तैसे मनुष्य भव और सम्यक्त्व, ज्ञान वि. प्राप्त कर तू गर्व मत करना कि मैं बहुश्रुत हूँ या उत्तम चारित्री हूँ।

7. गर्हा में पतिप्रारिका दृष्टांत -
एक वृद्ध ब्राह्मण अध्यापक था × उसे युवान पत्नी थी × एकदा बलि देते हुए वह बोली - मुझे कौए से डर लगता है × अध्यापक ने नियुक्त किया कि रोज एक विद्यार्थी को इस स्त्री की कौए से धनुष-बाण द्वारा रक्षा करना × एकदा एक विद्यार्थी ने सोचा - ये कोई इतनी भोली नहीं है कि कौए से डरे, यह सती नहीं है × वह उसका ध्यान रखने लगा × नर्मदा के सामने किनारे ग्वाले में वह आसक्त थी × एक बार वह घड़े से नदी तैर दी थी तभी नदी में कुछ चोर उतरे × उनमें से एक चोर को सुंसुमार ने पकड़ा × चोर चिल्लाया × स्त्री ने कहा - सुंसुमार की आँखें बंद कर × ऐसा करने से चोर को सुंसुमार ने छोड़ दिया × फिर गलत जगह से नदी में उतरने के लिए स्त्री ने चोर को डाँटा × वह विद्यार्थी यह जानकर वापस गया × दूसरे दिन उसी विद्यार्थी का नंबर था × वह बलि देने आई तब विद्यार्थी - दिन में कौए से डरती है, रात को नर्मदा में जाती है, नदी के कुतीर्थ और आँख बंद करना वि. उपाय तू जानती है × स्त्री - क्या करूँ? तुम्हारे जैसे युवान मुझे मिलते नहीं × स्त्री उस विद्यार्थी को कहती है - तू मुझे इच्छ × विद्यार्थी - अध्यापक होने से यह शक्य नहीं है × स्त्री अध्यापक के टुकड़े-टुकड़े कर पेटी में भरकर जंगल में डालने गई × वहाँ वाणव्यंतरी ने पेटी उसके साथ ही चिपका दी × पेटी से खून निकलता देख लोग धिक्कारने लगे × वह कहने लगी - पति को मारने वाली मुझे भिक्षा दो × एक बार साध्वीजी के पैर में गिरने से उसकी पेटी छूटी × दीक्षा ली × गर्हा की
इसके जैसी ही गर्हा करना चाहिए।

8. शुद्धि में वस्त्र-औषध दृष्टांत -
राजगृह × श्रेणिक × उसने दो सूती वस्त्र धोबी को दिए × धोबी ने दो पत्नी को

दिए × कौमुदी महोत्सव में दोनों पत्नी वह वस्त्र पहन कर गई × श्रेणिक और अभय महोत्सव में गुप्त वेश में घूमते हैं × अपने वस्त्र पहचान कर दोनों ने वस्त्र पर ~~संग~~ पान की पिचकारी मारी × पान की पिचकारी देख धोबी गुस्सा हुआ × क्षार से वस्त्र शुद्ध कर धोबी ने राजा को दिए × राजा ने पूछने पर धोबी ने सच कहा ×

क्षार से वस्त्र शुद्धि द्रव्य शुद्धि। भाव से साधु की गुरु के पास शुद्धि।

औषध दृष्टांत नमस्कार निर्युक्ति (गा. ९४४ भाग ३ पृ.९०) में कहा गया।

अव. साधु को रोज जैसे शुद्धि करना चाहिए वैसे माली के दृष्टांत से कहते हैं–

गा. १२४४ अवलोचन आलुंचन विकटीकरण भावशुद्धि। आलोचना करने पर आराधना, अनालोचना में भजना॥

* कोई निपुण माली स्वयं के बगीचे का दोनों समय अवलोकन करता है कि फूल है या नहीं? फिर फूलों का आलुंचन करता है यानि चूंटता है। फिर विकसित-मुकुलित-अर्द्धमुकुलित फूलों को अलग करता है, यह विकटीकरण। फिर गूंथता है। फिर ग्राहक माला लेते हैं तब चित्त की प्रसन्नता रूप शुद्धि होती है।

जो माली निपुण नहीं है, विपरीत करता है, उसे इष्ट अर्थ (पैसे) लाभ नहीं होता, शुद्धि भी नहीं होती।

* ऐसे साधु भी प्रत्युपेक्षणादि कर स्थंडिल भूमि का पडिलेहन कर काउसग्ग में सूत्र की अनुप्रेक्षा करे। गुरु के आने पर मुहपत्ति के पडिलेहन से लेकर काउसग्ग (शाम के प्रतिक्रमण में अतिचार की गाथा का (सुबह) काउसग्ग तक) तक के दैवसिक अतिचार विचारे, अवलोकन करे। ~~फिर विकटीकरण यानि~~ आलुंचन यानि स्पष्ट बुद्धि से अपराध की धारणा करे। विकटीकरण = छोटे-बड़े अपराधों का भाग करे। गुरु को निवेदन करते हुए को भावशुद्धि होती है।

Notes Date :

* ऐसे आलोचना करने पर यानि अपराधों का गुरु को निवेदन करने पर आराधना होती है। आलोचना न करने पर भजना।

भजना कैसे? –

आलोयणापरिणओ सम्मं संपट्ठिओ गुरुसगासं।
जइ अंतरावि कालं करिज्ज आराहओ तहवि॥
इड्ढीए गारवेणं बहुस्सुयमएण वावि दुच्चरियं।
जो ण कहेइ गुरूणं न हु सो आराहओ भणिओ॥

अव. साधु को शुद्धि करने की व्यवस्था–

गा.1245 प्रथम और चरम तीर्थंकर का सप्रतिक्रमण धर्म है। मध्यम तीर्थंकरों में कारण होने पर प्रतिक्रमण है।

* शठ और प्रमाद बहुल होने से प्रथम-चरम तीर्थंकरों के तीर्थ में प्रतिक्रमण आवश्यक है।

गा.1246 जो साधु अन्यतर स्थान में जब जाता है, मध्यम तीर्थंकरों के तीर्थ में वह तभी प्रतिक्रमण करता है।

* मध्यम तीर्थंकरों के तीर्थ में साधु प्राणातिपातादि अन्य स्थानों में जब-पूर्वाह्णादि जिस समय जाता है, उसी समय अकेला या गुरु के प्रत्यक्ष वह उस स्थान का प्रतिक्रमण करता है।

अव. यह भेद मात्र प्रतिक्रमण से ही है या अन्य भी है? –

गा.1247 22 तीर्थंकर सामायिक संयम का उपदेश देते हैं। ऋषभ और वीर छेदोपस्थापनीय संयम कहते हैं।

* जब सामायिक उच्चरते हैं तभी व्रतों में स्थापन करते हैं। – मध्यम 22 तीर्थंकर)

* पहले शस्त्रपरिज्ञा अध्ययन के ज्ञान तक प्रथम-चरम तीर्थंकर के तीर्थों में सामायिक संयत होते थे। अभी षड्जीवनिकाय अध्ययन तक के ज्ञान

में अपराध स्थानों का परिहार करते हुए को व्रत उच्चराते हैं।
यह निरतिचार की विधि है। सातिचार यानि मूलस्थान प्रायश्चित वाले साधु को पुनः व्रत उच्चराते हैं।

अव. 'सप्रतिक्रमण धर्म' कहा। प्रतिक्रमण के दैवसिकादि भेद —
गा.1248 दैवसिक, रात्रिक, इत्वरिक, यावत्कथिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, संवत्सर और उत्तमार्थ में प्रतिक्रमण होता है।

★ इत्वर = अल्पकालिक दैवसिकादि प्रतिक्रमण।
यावत्कथिक = व्रतादि रूप यावज्जीव प्रतिक्रमण।

★ प्र. दैवसिक प्रतिक्रमण होने पर पाक्षिकादि क्यों?
उ. जइ गेहं पइदियहंपि सोहियं तहवि पक्खसंधीए।
सोहिज्जइ सविसेसं एवं इहयंपि णायव्वं ॥

★ उत्तमार्थ यानि भक्तप्रत्याख्यान भी प्रतिक्रमण है क्योंकि वह निवृत्ति रूप है।

अव. यावत्कथिक प्रतिक्रमण —
गा.1249 5 महाव्रत, 6ठा रात्रिभोजन, 5 याम, भक्तपरिज्ञा दोनों तीर्थंकरों (प्रथम-चरम) में यावत्कथिक है।

अव. इत्वर प्रतिक्रमण दैवसिकादि कहे गए। अन्य रीति से इत्वर प्रतिक्रमण —
गा.1250 उच्चार, प्रस्रवण, कफ, श्लेष्म वोसिराने पर प्रतिक्रमण। आभोग-अनाभोग और सहसाकार में प्रतिक्रमण।

★ इरियावही रूप प्रतिक्रमण करने के नियम —
उच्चारं पासवणं भूमीए वोसिरित्तु उवउत्तो।
वोसरिऊण य तत्तो इरियावहियं पडिक्कमइ ॥

Notes Date:

वोसिरइ मत्तगे जइ तो न पडिक्कमइ मत्तगं जो उ।
साहू परिट्ठवेई णियमेण पडिक्कमे सो उ॥
खेलं सिंघाणं वाऽपडिलेहिय अप्पमज्जिउं तह य।
वोसिरिय पडिक्कमई तं पिय मिच्छुक्कडं देइ॥

अप्रतिलेखित या अप्रमार्जित भूमि/मात्रक में कफ या श्लेष्म वोसिराए तो मिच्छामि दुक्कडं कहने रूप प्रतिक्रमण करे।

* आभोग - अनाभोग - सहसाकार →
आभोगे जाणंतेण जोऽइयारो कओ पुणो तस्स।
जायम्मिवि अणुतावे पडिकमणेऽजाणया इयरो॥

जानते हुए भी जो अतिचार किया वह आभोग। आभोग से अतिचार होने पर ~~भी~~ अनुताप (पश्चात्ताप) होने पर भी प्रतिक्रमण करे। ~~अ~~ अजानते अतिचार हो वह अनाभोग। इसमें भी प्रतिक्रमण करे।

पुव्विं अपासिऊणं छूढे पायंमि जं पुणो पासे।
ण य तरइ णियत्तेउं पायं सहसाकरणमेयं॥

पहले कोई जीव को न देखकर पैर बढ़ाने पर पुनः जीव दिखे किंतु कदम वापस लेने के लिए समर्थ न हो, यह सहसाकार है। इसमें भी प्रतिक्रमण करे।

* प्रासंगिक –
पडिलेहेउं पमज्जिय भत्तं पाणं च वोसिरेऊणं।
वसहीकयवरमेव उ णियमेण पडिक्कमे साहू॥

भूमि का प्रतिलेखन और प्रमार्जन कर भक्त-पान और काजा वोसिराकर साधु अवश्य प्रतिक्रमण करे।

हत्थसया आगंतुं गंतुं च मुहुत्तगं जहिं चिट्ठे।
पंथे वा वच्चंतो णदिसंतरणे पडिक्कमइ॥

100 हाथ दूर से आकर या 100 हाथ दूर जाकर यदि मुहूर्त रूकना हो तो अथवा रास्ते में जाते हुए नदी वि. उतरने में प्रतिक्रमण करे।

अव. प्रतिक्रमण पूरा हुआ (देखें Pg. 8 पर अव.)। अब प्रतिक्रान्तव्य कहते हैं। वह सामान्य से 5 प्र. का होता है—

गा. 1251 मिथ्यात्व, असंयम, कषायों, अप्रशस्त योगों और संसार का प्रतिक्रमण। संसार
1252 का प्रतिक्रमण 4 प्र. । भाव प्रतिक्रमण त्रिविध-त्रिविध से जानना।

* संसार 4 प्र.- नरकायु के बंधहेतु महारंभादि, तिर्यगायु के हेतु, नरायु के हेतु, देवायु के हेतु। इन आयु के हेतु से वापस आना, पीछे हटना। विशेष माया का अनासेवनादि लक्षणों वाले शुभ हेतु से निराशंस और मोक्षाभिलाषी जीव द्वारा पीछे नहीं हटना।

* इन 5 स्थानों का प्रतिक्रमण त्रिविध-त्रिविध से करने पर भाव प्रतिक्रमण होता है। eg. मिथ्यात्व का भाव प्रतिक्रमण-
'बौद्ध धर्मादि सुंदर है' ऐसा मन से न विचारे, वचन से न बोले और काया से प्रयोजन बिना संसर्ग न करे।
मन से 'यह बौद्ध कैसे हो?' न विचारे, वचन से न बोले और काया से उसे बौद्धादि को सौंपे नहीं।
मन से बौद्धादि की अनुमोदना न करे, वचन से 'अच्छा किया' न बोले, अथवा मौन न रहे निषेधात्मक प्रेरणा करे, काया से ताली वि. न बजाए।

* कषाय प्रतिक्रमण में नागदत्त दृष्टांत —
दो साधु 'जो पहले च्यवे, उसे दूसरा प्रतिबोध करे' ऐसे संकेत पूर्वक काल धर्म कर देवलोक गए ×
एक नगर में सेठ की पत्नी ने उपवास कर देव से पुत्र का वरदान लिया ×
दो देव में से एक च्यवकर उसका पुत्र बना × नागदत्त नाम रखा × 72 कला में निपुण किंतु गांधर्व कला (साँप को खिलाने) में उसे अतिप्रिय × देव ने बहुत

Notes Date :

बार बोध दिया किंतु न माना x एकदा देव अव्यक्तलिंग (रजोहरण बिना का साधुवेश) में करंडक में 4 साँप लेकर आया x उद्यान में साँप खिलाते नागदत्त को मित्रों ने कहा - देखो, ये भी साँप खिलाने आया है। x नागदत्त - इस करंडक में क्या है? x देव - साँप x नागदत्त - आप हमारे साँप को खिलाओ, हम आपके साँप से खेलेंगे x देव उसके साँप से खेला किंतु बार-बार डँसने पर भी वह नहीं मरा x ईर्ष्या से नागदत्त बोला - मैं तेरे साँपों से खेलता हूँ x देव - मेरे साँप डँसेंगे तो तू मर जाएगा x आग्रह करने पर देव ने मंडल बनाकर चारों दिशा में करंडक रखे x नागदत्त के सर्व स्वजन को इकट्ठा कर बोला -

गा.1253 यह गांधर्व नागदत्त साँपों से खेलने के लिए इच्छता है, उसे यदि कोई डँसे तो मेरा दोष मत कहना।

अव. चार साँपों का वर्णन -

गा.1254 जो नए सूर्य की तरह आँख वाला है (लाल आँख), जिसकी जिह्वा का अग्रभाग विद्युत् लता जैसी चंचल है, जिसकी दाढ़ घोर (रौद्र) विष वाली है और जो उल्का जैसे जलते रोषवाला है, (वो यह क्रोध सर्प है)।

गा.1255 जिसके द्वारा डँसा मनुष्य कृत-अकृत सब भूल जाता है, ऐसे अदृश्य मृत्यु समान उसे (क्रोध सर्प) तू कैसे ग्रहण करेगा?

★ करंडक में होने से अदृश्य।

गा.1256 मेरुगिरि के तुंग शिखर जैसा, 8 फणवाला, जिसकी दो जीभ यमल है और दक्षिण (सीधे हाथ) में रहा यह सर्प मान से खड़ा है।

★ 8 फण = जाति-कुल-रूप-बल-लाभ-बुद्धि-वाल्लभ्य-श्रुत के मद।

★ यमल = यमं लाति = मृत्यु को लाने वाली।

★ सीधे हाथ की तरफ रहने वाले को सहज ही मान होता है अतः सीधे हाथ पर कहा।

गा.1257 जिसके द्वारा डँसा मनुष्य इंद्र को भी स्तब्ध होकर नहीं गिनता है। ऐसे मेरुपर्वत समान उस सर्प को कैसे ग्रहण करेगा?

गा.1258 लीला सहित शीघ्र गति वाली, स्वस्तिक लांछन से अंकित फण पताका वाली, निकृति और कपट से ठगने में कुशल माया रूपी नागिन है।

★ निकृति = आंतर विकार। कपट = वेशपरावर्तनादि बाह्य विकार।

गा.1259 तू सर्प को पकड़ने के स्वभाववाला है, औषधि के बल रहित है, अदक्ष है। उसने तो लंबे समय से विष इकट्ठा कर रखा है। वह नागिन गहनवन में रहती है।

★ गहन ~~बह~~ वन यानि हर कार्य में माया होती है।

गा.1260 उसके डँसने के बाद तेरी मृत्यु होगी क्योंकि तेरे पास औषधि और मंत्र का बल कम है। अतः तू स्वयं की चिकित्सा नहीं कर पाएगा।

गा.1261 सभी वस्तु का अभिभव करता, महान् आलय वाला, पूर्ण मेघ जैसा निर्घोष करता और उत्तर दिशा में रहा नाग लोभ से खड़ा है।

★ महान् आलय वाला = सर्वत्र अनिवारित होने से।

★ उत्तर दिशा में रहने से ~~सबसे~~ आगे 'सर्वोत्तर' लोभ है, यह बताया।

गा.1262 जिसके द्वारा डँसने से मनुष्य स्वयंभूरमण समुद्र की तरह दुष्पूर हो जाता है। तू सभी संकट के राजमार्ग समान ~~कैसे~~ सर्प को कैसे ग्रहण करेगा।

गा.1263 क्रोध-मान-माया-लोभ ये 4-चार वे पापी सर्प हैं जिनके द्वारा संतप्त जगत् बुखार वाले पुरुष की तरह हमेशा उकल रहा है।

गा.1264 इन पापी 4 सर्पों द्वारा जो डँसा जाता है, उसका नरकपतन होता है। उसे कोई आलंबन नहीं है।

नागदत्त साँप के साथ खेला और मरा × मित्र बहुत औषधि के प्रयोग करते हैं किंतु ठीक नहीं हुआ × स्वजन देव के पैर में पड़े × देव- मैं भी इन साँपों से डँसा गया हूँ, यदि ऐसा चारित्र पालेगा तो जीएगा अन्यथा जिंदा हुआ भी मर जाएगा। उस चारित्र का स्वरूप कहते हैं-

गा.1265 मैं भी इन 4 पापी सर्पों द्वारा डँसा गया हूँ। विषनाश के लिए विविध तप

Notes Date:

करता हूँ।

गा.1266 मैं पर्वत-वन-श्मशान-शून्य घर-वृक्ष के नीचे वि. स्थानों का सेवन करता हूँ। उन पापी सर्पों का क्षण भी विश्वास नहीं करता।

गा.1267 अति आहार नहीं करता। अल्प किंतु स्निग्धाहार भी नहीं करता क्योंकि स्निग्ध आहार से विषयों की उदीरणा होती है। जितने आहार से संयमयात्रा चले, उतना ही लेता हूँ। वह भी बार-बार नहीं लेता।

गा.1268 अधिकतर उपवासी ही रहता हूँ अथवा कभी-कभी विगइ रहित अल्पाहार करता हूँ।

गा.1269 जो थोड़ा आहार करता है, थोड़ा बोलता है, थोड़ा सोता है और उपधि-उपकरण थोड़े रखता है, उसे देव भी प्रणाम करते हैं।

देव स्वजनों को बोला- यदि ऐसा चारित्र पालेगा तो जीएगा अन्यथा मर जाएगा x स्वजन- ठीक है, ऐसे ही जीने दो x देव उसे जीवित करने के लिए यह बोला-

गा.1270 सिद्धों को नमस्कार कर और संसार में रहे जो महावैद्य हैं, उन्हें नमस्कार कर सर्व विष का निवारण करने वाली दंडक्रिया रूप विद्या को कहूँगा।

गा. * संसारस्थ महावैद्य- केवली, 14 पूर्वी वि.।

गा.1271 यह महात्मा सर्व प्राणातिपात, सर्व मृषावाद, सर्व अदत्तादान, सर्व अब्रह्म, सर्व परिग्रह का त्याग करता है, स्वाहा।

ऐसा कहने पर नागदत्त उठा x माता-पिता ने उसे कहा x वह श्रद्धा नहीं करता हुआ दौड़ा x गिरकर मरा x पुनः देव ने उठाया x ... ऐसे तीसरी उठने पर श्रद्धा करता हुआ माता-पिता की अनुज्ञा लेकर देव के साथ गया x एक वनखंड में देव ने उसे पूर्वभव कहे x वह प्रत्येकबुद्ध हुआ x वह शरीर रूपी करंडक से कषाय रूपी सर्पों को कभी बाहर नहीं निकलने देता x ऐसे प्रतिक्रमण किया हुआ वह दीर्घ श्रामण्य पर्याय पालकर सिद्ध हुआ।

कषाय प्रतिक्रमण का दृष्टांत पूर्ण हुआ (देखें pg. 23)

प्र. प्रतिक्रमण बार-बार क्यों किया जाता है ? मध्यम तीर्थंकरों के तीर्थ की तरह कार्य होने पर ही प्रतिक्रमण क्यों न किया जाए?

उ. इसमें वैद्य का दृष्टांत है –
एक राजा को पुत्र अतिप्रिय x राजा ने सोचा- इसे रोग न हो इसलिए क्रिया कराऊँ x वैद्य बुलाए x 3 वैद्य आए x राजा ने कहा- मेरे पुत्र को रोग न हो, ऐसी चिकित्सा करो x पहला वैद्य- मेरी औषध यदि रोग है, तो शांत करेगी, नहीं है तो पचती हुई व्यक्ति को मार देगी x दूसरा वैद्य- यदि रोग है तो शांत करेगी, नहीं है तो कोई लाभ-हानि नहीं करेगी x तीसरा- यदि रोग है तो शांत करेगी, नहीं है तो वर्ण-रूप-लावण्य-यौवन में परिणमेगी और आने वाले रोगों से रक्षा करेगी x राजा ने तीसरे वैद्य से चिकित्सा करवाई xx

ऐसे यह प्रतिक्रमण भी दोष है तो शुद्ध करता है, नहीं है तो चारित्र की शुद्धि को बढ़ाता है।

अत. प्रतिक्रान्तत्व कहे गए (देखें पृ 23 पर अत.)। गा. 1232 पूर्ण हुई (पृ 7)।
नाम निष्पन्न निक्षेप द्वार में 'प्रतिक्रमण' शब्द का व्याख्यान पूर्ण हुआ, 'अध्ययन' शब्द पहले कहा गया अतः नाम निष्पन्न निक्षेप द्वार पूर्ण (देखें पृ 6 पर अनुयोग द्वार)।
अब सूत्रात्मक निष्पन्न निक्षेप का अवसर है, वह सूत्र होने पर होता है अतः सूत्रानुगम में कहेंगे (देखें भाग 4 पृ. 13 अत.)
~~अब~~ अब प्रतिक्रमण सूत्र कहते हैं- 'करोमि भंते !...' इत्यादि। सूत्र की व्याख्या सामायिक अध्ययन की तरह जानना।

प्र. यह सूत्र तो सामायिकाध्ययन में कहा गया। तो पुनः क्यों कहा?
उ. अतिचारों का समभाव में रहकर ही प्रतिक्रमण करना चाहिए यह बताने के लिए।

Notes Date :

प्रतिक्रमण मंगल पूर्वक करना चाहिए। अतः सूत्रकार मंगल कहते हैं –

सूत्र – चत्तारि मंगलं अरिहंता मंगलं सिद्धा मंगलं।
साहू मंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चार मंगल हैं, अरिहंत मंगल हैं, सिद्ध मंगल हैं, साधू मंगल हैं, केवलि-प्रज्ञप्त धर्म मंगल है।

* मंगल शब्द का अर्थ भाग 1 में मंगलवाद में (Pg), अरिहंतादि शब्दों के अर्थ भाग 3 में नमस्कार निर्युक्ति में (Pg 47) कहे गए।
* साधु के ग्रहण से आचार्य-उपाध्याय का ग्रहण हो ही गया है।
* केवलिप्रज्ञप्त विशेषण से कपिलादि प्रज्ञप्त धर्म का व्यवच्छेद कहा।

* अरिहंतादि से ही सुख और हित होने से वे मंगल हैं। इसी कारण से वे लोक में उत्तम भी हैं –

सूत्र – चत्तारि लोगुत्तमा अरिहंता लोगुत्तमा सिद्धा लोगुत्तमा
साहू लोगुत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।

चार लोक में उत्तम हैं, अरिहंत लोक में उत्तम हैं, सिद्ध लोक में उत्तम हैं, साधु लोक में उत्तम हैं, केवलिप्रज्ञप्त धर्म लोक में उत्तम हैं।

* ये चार भाव लोक आदि में उत्तम हैं (देखें लोक शब्द के निक्षेप भाग 4 Pg 15)।
* अरिहंत की भाव लोक में उत्तमता बताते हैं –

वेदनीय-आयु-नाम-गोत्र ये 4 कर्म घाति कर्म की अपेक्षा प्रशस्त हैं। उनमें भी अरिहंतों को इन 4 का शुभ रस ही उदय में होता है। वह रस भी लोक में सबसे अधिक होता है। अतः वे औदयिक भाव लोक में उत्तम हैं। घाति कर्म के क्षय से उत्पन्न हुआ क्षायिक भाव भी उन्हें उत्तम होता है अतः क्षायिक भाव लोक में भी वे उत्तम हैं।

[प्र. क्षायिक भाव तो सभी केवलि में समान होते हैं तो अरिहंत में उत्तम कैसे?
उ. केवली की अपेक्षा उत्तम नहीं किंतु बौद्धादि अन्य दर्शनी जो मोक्ष के बाद

पुनरागमन मानते हैं उनकी अपेक्षा यह क्षायिक भाव उत्तम है क्योंकि मोहनीयादि का संपूर्ण क्षय होने से वे कभी वापस नहीं आते- टीप्पणक)

* सिद्ध तीनों लोक के मस्तक पर स्थित होने से क्षेत्रलोक में उत्तम और सभी कर्म के क्षय से क्षायिकभाव लोक में उत्तम हैं।

* साधु जिनेंद्रकथित दर्शन ज्ञान-चारित्र रूप भावलोक में उत्तम हैं।

* केवली प्रज्ञप्त धर्म 2 प्र. श्रुतधर्म और चारित्र धर्म। दोनों धर्म क्षायोपशमिक, औपशमिक और क्षायिक भाव लोक में उत्तम हैं।

अब. ये चारों लोकोत्तम होने से शरण करने योग्य हैं अथवा शरण करने योग्य होने से लोकोत्तम हैं-

सूत्र- चत्तारि सरणं पवज्जामि अरिहंते सरणं पवज्जामि सिद्धे सरणं पवज्जामि साहू सरणं पवज्जामि केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पवज्जामि।

संसार भय से रक्षण के लिए मैं चार का शरण स्वीकारता हूँ, अरिहंतों का शरण स्वीकारता हूँ, सिद्धों का शरण स्वीकारता हूँ, साधुओं का शरण स्वीकारता हूँ, केवलिप्रज्ञप्त धर्म का शरण स्वीकारता हूँ।

अब. मंगल करने के बाद प्रतिक्रमण सूत्र कहते हैं-

सूत्र- इच्छामि पडिक्कमिउं जो मे देवसिओ अइआरो कओ, काइओ वाइओ माणसिओ, उस्सुत्तो उम्मग्गो अकप्पो अकरणिज्जो दुज्झाओ दुविचिंतिओ अणायारो अणिच्छियव्वो असमणपाउग्गो नाणे दंसणे चरित्ते सुए सामाइए तिण्हं गुत्तीणं चउण्हं कसायाणं पंचण्हं महव्वयाणं छण्हं जीवणिकायाणं सत्तण्हं पिंडेसणाणं अट्ठण्हं पवयणमाऊणं नवण्हं बंभचेरगुत्तीणं दसविहे समणधम्मे समणाणं जोगाणं जं खंडियं जं विराहियं तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

* शब्दों की व्युत्पत्ति वि. टीका में विस्तार से है किंतु यहाँ नहीं लिखी है।
eg. दिवसेन निर्वृत्तः दैवसिकः।

Notes Date :

सूत्रार्थ

मेरे द्वारा (मे) जो दिवस संबंधी अतिचार किया गया (जो देवसिओ अइआरो कओ) उससे पीछे आने के लिए मैं इच्छता हूँ (इच्छामि पडिक्कमिउं)। उसका (तस्स) मिच्छामि दुक्कडं। ~~तस्स शब्द से~~ उपर्युक्त वाक्य से क्रिया काल और मिच्छामि दुक्कडं से निष्ठा काल कहा।

वह अतिचार उपाधि के भेद से अनेक प्रकार का होता है। प्रकार बताते हैं- काया से किया हुआ (कायिक), वचन से किया हुआ (वाइओ), मन से किया हुआ (माणसिओ)।

अब कायिक और वाचिक अतिचार कहते हैं- सूत्र में नहीं कहा हुआ (उस्सुत्तो), क्षायोपशमिक भाव रूप मार्ग से औदयिक भाव में जाना (उम्मग्गो), चरण-करण के व्यापार रूप कल्प्य से विपरीत (अकप्पो), नहीं करने योग्य (अकरणिज्जो)। यहाँ हेतु-हेतुमद् भाव जानना → अतिचार उत्सूत्र होने से ही उन्मार्ग है, अकल्प्य होने से ही करणीय नहीं है।

मानसिक अतिचार — एकाग्रचित्त से आर्त-रौद्र रूप दुर्ध्यान करना (दुज्झाओ), चलचित्तता से अशुभ चिंतन करना (दुव्विचिंतिओ)। ऐसा होने से ही श्रमण के प्रायोग्य नहीं है (असमणपाउग्गो)। इसी कारण से अनाचार है (अणायारो)। इसलिए वह मन से भी इच्छने योग्य नहीं है (अणिच्छियव्वो)।

ये अतिचार का विषय = ज्ञान, दर्शन, चारित्र विषयक (णाणे दंसणे चरित्ते)। अब भेद से अतिचार विषय कहते हैं — श्रुत विषयक (सुए) विपरीतप्ररूपणादि अतिचार। सामायिक विषयक (सामाइए) सामायिक से सम्यक्त्व- चारित्र सामायिक जानना। सम्यक्त्व सामायिक के शंकादि अतिचार।

चारित्र सामायिक के अतिचार विस्तार से कहते हैं-
तीन गुप्ति के (तिण्हं गुत्तीणं), चार कषायों के (चउण्हं कसायाणं), 5 महाव्रतों के (पंचण्हं महव्वयाणं), 6 जीवनिकायों के (छण्हं जीवणिकायाणं), 7 पिंडैषणा के

(सत्तण्हं पिंडेसणाणं), 8 प्रवचन माता के (अट्ठण्हं पवयणमाऊणं), 9 ब्रह्मचर्य गुप्ति के (नवण्हं बंभचेरगुत्तीणं), 10 समणधर्म के (दसविहे समणधम्मे)

7 पिंडेषणा - संसट्ठमसंसट्ठा उद्धड तह होइ अप्पलेवा य।
उग्गहिआ पग्गहिआ उज्झिय तह होइ सत्तमिआ॥

1. असंसृष्ट - नहीं खरड़े हुए हाथ और भाजन से वोहरना।
2. संसृष्ट - खरड़े हुए हाथ-पात्र से वोहरना। गाथा में पहले संसृष्ट सुखपूर्वक उच्चार के लिए।
3. उद्धृत - गृहस्थ ने स्वयं के लिए अलग भाजन में भोजन निकाला हो उसमें से वोहरना।
4. अल्पलेप - अल्प शब्द अभाव वाचक। अलेपकृत् वस्तु वोहरना।
5. अवगृहीता - भोजन के लिए थाली वि. में निकाले हुए से वोहरना।
6. प्रगृहीता - भोजन के लिए कवल लेते के हाथ वि. से वोहरना।
7. उज्झितधर्मा - त्याग के योग्य वस्तु वोहरना।

विस्तार अन्य ग्रंथों से जानना।
ब्रह्मचर्य गुप्ति और श्रमण धर्म आगे कहेंगे, शेष सुगम।

ऐसे श्रमणों के योग यानि व्यापारों का (समणाणं जोगाणं) जो खंडन यानि देश से विराधना की हो या जो विराधित किया हो यानि बहुत अधिक विराधना की हो (जं खंडिअं जं विराहिअं); यहाँ एकांत से संपूर्ण अभाव का अर्थ नहीं लेना।
इस प्रकार के अतिचार का मेरा दुष्कृत मिथ्या हो (मिच्छामि दुक्कडं)।

अब इस सूत्र की सूत्रस्पर्शिक गाथा —
गा.1272 पडिसिद्धाणं करणे किच्चाणमकरणे य पडिक्कमणं।
असद्दहणे य तहा विवरीयपरूवणाए य॥

★ अकालस्वाध्यायादि प्रतिषिद्ध अतिचारों के सेवन में, कालस्वाध्यायादि

Notes Date :

कृत्यों के असेवन में, केवलिप्ररूपित पदार्थों के अश्रद्धान में और विपरीत प्ररूपणा में प्रतिक्रमण होता है।

* इस गाथा से यथायोग्य सभी सूत्र का अनुसरण करना। eg. सामायिक में प्रतिषिद्ध राग-द्वेष करने में, उनका निग्रह न करने में, 'सामायिक मोक्ष का कारण है' ऐसी श्रद्धा न करने में और 'सामायिक असत्प्रभाव वाली है' ऐसी विपरीत प्ररूपणा में प्रतिक्रमण होता है।

अब. ऐसे सामान्य अतिचारों का संक्षेप में प्रतिक्रमण कहा। अब विभाग से अतिचारों का प्रतिक्रमण कहेंगे। गमनागमन के अतिचारों का प्रतिक्रमण –

सूत्र – इच्छामि पडिक्कमिउं इरियावहियाए विराहणाए गमणागमणे पाणक्कमणे बीयक्कमणे हरियक्कमणे ओसाउत्तिंगपणगदगमट्टिमक्कडासंताणासंकमणे जे मे जीवा विराहिया एगिंदिया बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया अभिहया वत्तिया लेसिया संघाइया संघट्टिया परियाविया किलामिया उद्दविया ठाणाओ ठाणं संकामिया जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सूत्रार्थ

ईर्यापथ संबंधी विराधना (इरियावहियाए विराहणाए) में हुए अतिचारों से पीछे हटने के लिए मैं इच्छा करता हूँ (इच्छामि पडिक्कमिउं)। इस वाक्य से क्रियाकाल कहा। तस्स मिच्छामि दुक्कडं से संबंध जोड़ना। इससे निष्ठाकाल कहा।

अतिचार का विषय बताते हैं – गमन-आगमन में।

गमन = स्वाध्यायादि के लिए वसति से बाहर जाना।

आगमन = प्रयोजन समाप्त होने पर वसति में आना।

गमनागमन में भी अतिचार कैसे हुआ –
द्वीन्द्रियादि त्रस प्राणी का आक्रमण यानि पैर से पीड़न करना (पाणक्कमणे) में, बीजों के आक्रमण में (बीयक्कमणे) इस पद से बीज में जीवत्व कहा, हरी वनस्पति के आक्रमण में (हरियक्कमणे) इस पद से सभी वनस्पति का जीवत्व कहा।

अवश्यायोत्तिंगपनकदगमृत्तिकामर्कटसन्तानसंक्रमणे सति –
अवश्याय यानि झाकल इस पद से शेष जल की संभोग का वारण करने के लिए कहा। उत्तिंग यानि गधे के आकृति वाले जीव या कीड़ी के नगर। पनक यानि फफुंद लीलफुग। दग = पानी, मृत्तिका = पृथ्वीकाय का ग्रहण। मर्कटसंतान = मकड़ी के जाले। इन जीवों के संक्रमण में।

और अधिक कितना कहूँ! जितने भी जीव मेरे द्वारा विराधित किए गए (जे मे जीवा विराहिया) पृथ्व्यादि एकेंद्रिय (एगिंदिया), कृम्यादि द्वीन्द्रिय (बेइंदिया), कीड़ी वि. त्रीन्द्रिय (तेइंदिया), भ्रमरादि चतुरिंद्रिय (चउरिंदिया), चूहे वि. पंचेंद्रिय (पंचिंदिया)
पैर से घिसे गए या उठाकर पटके गए (अभिहआ), इकट्ठे किए गए या धूल से ढँके गए (वत्तिआ), पीसे गए या भूमि वि. पर लगाए गए (लेसिआ = श्लेषिताः), परस्पर शरीरों से एकत्र किए गए (संघाइआ = संघातिताः), थोड़े स्पर्शे गए (संघट्टिआ), चारों ओर से पीड़ित किए गए (परितापिताः), ग्लानि को प्राप्त किए गए (किलामिआ = क्लामिताः), त्रस्त किए गए (उद्दविआ = उत्त्रासिताः), उनके स्थान से अन्य स्थान ले गए (ठाणाओ ठाणं संकामिआ), जीवन से रहित किए गए (जीविआओ ववरोविआ),
ऐसे जो अतिचार हुए उनको मेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

अव. गमनागमन के अतिचार कहे। सोने की Position के अतिचार –
सूत्र– इच्छामि पडिक्कमिउं पगामसिज्जाए निगामसिज्जाए संथाराउव्वट्टणाए परिवट्टणाए आउंटणपसारणाए छप्पइसंघट्टणाए कूइए कक्कराइए छिइए

Notes   Date :

जंभाइए आमोसे ससरक्खामोसे आउलमाउलाए सोअणवत्तिआए इत्थीविप्परिआसिआए दिट्ठीविप्परिआसिआए मणविप्परिआसिआए पाणभोयणविप्परिआसिआए जो मे देवसिओ अइआरो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

<u>सूत्रार्थ</u>

निम्नोक्त हेतुओं से मेरे द्वारा जो दिवस संबंधी अतिचार किया गया (जो मे देवसिओ अइआरो कओ) उससे पीछे हटने के लिए मैं इच्छता हूँ (इच्छामि पडिक्कमिउं)। तस्स मिच्छामि दुक्कडं जोड़ना।

हेतु कहते हैं- प्रकामशय्या यानि ⓐ ५प्रहर सोना अथवा ⓑ संथारे-उत्तरपट्टे से अतिरिक्त उपकरण वापरना अथवा ⓒ ३कल्प(२सूती, १ऊनी) से अतिरिक्त वस्त्र रखना, स्वाध्यायादि न करने से इसमें अतिचार है।(पगामसिज्जाए)

रोज-रोज प्रकाम शय्या करना ही निकामशय्या है (निकामसिज्जाए)।

उल्टी करवट से सोते को सीधी करवट करना ~~अथवा vice versa~~, यही उद्वर्तन है (संथारा उव्वट्टणाए), सीधी से पुनः उल्टी करवट करना परिवर्तन (परिवट्टणाए) इनमें प्रमार्जे बिना उद्वर्तन या परिवर्तन करने से अतिचार।

शरीर संकोच करना (आउंटण-), अंग फैलाना (पसारणाए), इनमें कुक्कुटि के दृष्टांत में प्रतिपादित विधि को न करते हुए को अतिचार।

*→ जू का अविधि से स्पर्श करने से (छप्पइसंघट्टणाए)। खाँसी खाते हुए (कूइए) अविधि से मुहपत्ति या हाथ मुँह पर रखे बिना खाने से अतिचार।

'यह शय्या विषम है, गर्मीवाली है' इत्यादि शय्या के दोष कहना कर्करायित कहा जाता है (कक्कराइए) यहाँ आर्तध्यान से अतिचार।

अविधि से छींकने पर (छिइए), अविधि से बगासी खाने पर (जंभाइए), प्रमार्जे बिना हाथ से छूना (आमोसे = आमर्ष), पृथ्व्यादि रज के साथ स्पर्शी हुई वस्तु को स्पर्शना सरजस्कामर्ष (ससरक्खामोसे) से अतिचार।

ये सब जागते हुए के अतिचार कहे।

अब सोते हुए के अतिचार कहते हैं–
स्वप्न निमित्तक विराधना से (सोमणवत्तियाए), यह विराधना मूल-उत्तर गुण विषयक होता है, अतः भेद से विराधना कहते हैं– स्त्रीविपर्यास यानि अब्रह्मासेवन से होने वाली विराधना (इत्थीविप्परियासियाए), दृष्टिविपर्यास यानि स्त्री दर्शन के अनुराग से होने वाली विराधना से (दिट्ठीविप्परियासियाए), मन से अशुभ विचारना=मनविपर्यास से होने वाली विराधना, पानभोजनविपर्यास यानि रात में पान-भोजन के परिभोग से होने वाली विराधना से (पणविप्परियासियाए पाणभोयण-विप्परियासियाए); ये सब विराधना स्वप्न में समझना।

इन हेतुओं से जो दैवसिक अतिचार मेरे द्वारा किया गया हो, उसका मिच्छामि दुक्कडं।

प्र. दिन में शयन निषिद्ध होने से अतिचार असंभव ही है?
उ. अपवाद से दिन में भी सोया जाता है, मार्ग के श्रमादि कारण में।

* कुक्कुटि दृष्टांत–
मुर्गी पैर को आकाश में (हवा में) फैलाती है और संकोचती है, वैसे ही साधु भी आकाश में पैर फैलाए। पैर फैलाने पर जब बहुत दुःखने लगे तब पूंजकर संकोचे, फिर जहाँ एड़ी नीचे टिकाना हो, वह जगह पूंजकर एड़ी नीचे रखे।
इस विधि को न करते साधु को अतिचार लगता है।

अब सोने के अतिचार कहकर गोचरी के अतिचार कहते हैं–
सूत्र– पडिक्कमामि गोयरचरियाए भिक्खायरियाए उग्घाडकवाडउग्घाडणाए साणावच्छादारासंघट्टणाए मंडीपाहुडियाए बलिपाहुडियाए ठवणापाहुडियाए संकिए सहसागारिए अणेसणाए पाणभोयणाए बीयभोयणाए

Notes Date :

हरियभोयणाए पच्छेकम्मियाए पुरेकम्मियाए अदिट्ठहडाए दगसंसट्ठहडाए रयसंसट्ठहडाए पारिसाडणियाए पारिठावणियाए ओहासणभिक्खाए जं उग्गमेणं उप्पायणेसणाए अपरिसुद्धं परिगहियं परिभुत्तं वा जं न परिट्ठविअं तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

सूत्रार्थ

गोचर चर्या में जो अतिचार हुए (गोयरचरियाए) उनसे मैं पीछे हटता हूँ (पडिक्कमामि)।

लाभ-अलाभ से निरपेक्ष, अदीनचित्त वाले मुनि इष्ट-अनिष्ट वस्तुओं में राग-द्वेष को प्राप्त न करते उत्तम-अधम-मध्यम कुलों में भिक्षा के लिए घूमते हैं। इसे भिक्षाचर्या कहते हैं।

इसमें अतिचार कैसे? वह बताते हैं-

उद्घाटकपाटोद्घाटन- सांकल लगाए बिना या कुछ बंध दरवाजा उद्घाट। ऐसे दरवाजे को पूरा खोलने से हुआ अतिचार। अप्रमार्जनादि से इसमें अतिचार) (उग्घाडकवाडउग्घाडणाए)।

कुत्ते, बछड़े या बच्चे के संघट्टे से (साणावच्छादारासंघट्टणाए)

पके हुए चावल के ऊपर का कुछ भाग मंडी कहलाता है, उस मंडी में से छोराए या मंडी अलग भाजन में निकालकर नीचे के चावल वि. छोराए तो मंडीप्राभृतिका। इसमें प्रवर्तन दोष (मंडीपाहुडिआए) (टीप्पणक)

चार दिशा में कुछ अन्न से पूजा कर या कुछ दाने अग्नि में डालकर छोराए (बलिपाहुडिआए)। भिक्षाचरों के लिए जो अन्न निकालकर रखा हो, वह छोरे तो स्थापना दोष (ठवणापाहुडिआए)

उद्गमादि दोषों में से किसी दोष की शंका होने पर लिया (संकिए)।

सहसाकार यानि अचानक से अकल्पनीय वस्तु छोरी, इसमें अकल्प्य वस्तु नहीं परठने पर या अविधि से परठने पर दोष (सहसागारिए)।

रसजादि प्राणियों की जिस भोजन में संघट्टा वि. विराधना हो या मृत्यु

हो, ऐसी प्राभृतिका से लेना। यहाँ विराधना दाता-ग्राहक दोनों की लेना (पाणभोयणाए) बीज वाला भोजन लेना हो (बीयभोयणाए), हरी वनस्पति वाला भोजन लेना (हरियभोयणाए) लेने के बाद हाथ धोना वि. पश्चात् कर्म हो (पच्छेकम्मियाए) लेने के पहले हाथ धोना वि. विराधना हो (पुरेकम्मियाए) लेने वाली वस्तु कहाँ से कैसे ली? यह देखे बिना या न दिखता हो वहाँ लेना (अदिट्ठहडाए), इसमें जीवों के संघट्टा वि. से अतिचार संभव है। पानी से संसृष्ट वस्तु लेना (दगसंसट्ठहडाए) पृथ्वी की रज से संसृष्ट वस्तु लेना (रयसंसट्ठहडाए), नीचे गिराते-गिराते लेना (पारिसाडणियाए = पारिशाटनिकया), जिस भाजन से दान देना है उस भाजन में रही अन्य वस्तु को छोड़कर (फेंककर, त्यागकर) लेना (पारिट्ठावणियाए), विशिष्ट द्रव्य माँगने को शास्त्र में ओहासण कहते हैं, ऐसे ओहासण की प्रधानता वाली भिक्षा ली (ओहासणभिक्खाए)।

ऐसे बहुत भेद होने से कितना कहें? आधाकर्मादि उद्गम से (उग्गमेणं) धात्री वि. उत्पादन से और शंकितादि एषणा से (उप्पायणेसणाए) जो अपरिशुद्ध (जं अपरिसुद्धं) अशनादि ग्रहण किया (व परिगहियं) अथवा वापरा (परिभुत्तं), परठा नहीं (जं न परिट्ठविअं)

ग्रहण किया हुआ भी न परठा और वापरा हुआ भी भाव से पुनः न करने के संकल्प पूर्वक न परठा

इस प्रकार जो अतिचार हुए, उनसे हुआ मेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

अब गोचरी के अतिचार कहकर स्वाध्यायादि के अतिचार का प्रतिक्रमण करते हैं-

सूत्र पडिक्कमामि चाउक्कालं सज्झायस्स अकरणयाए उभओकालं भंडोवगरणस्स अप्पडिलेहणाए दुप्पडिलेहणाए अप्पमज्जणाए दुप्पमज्जणाए अइक्कमे वइक्कमे अइयारे अणायारे जो मे देवसिओ अइआरो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

चार काल - दिन और रात के प्रथम तथा अंतिम प्रहरों में स्वाध्याय यानि सूत्र पोरसी न करने से जो दिवस संबंधी अतिचार मेरे द्वारा किया गया

Notes Date :

उससे मैं पीछे हटता हूँ। तथा प्रथम और अंतिम प्रहर रूप दो काल में भांड यानि पात्र और उपकरण वस्त्रादि की अप्रत्युपेक्षणा, दुष्प्रत्युपेक्षणा, अप्रप्रार्जना, दुष्प्रप्रार्जना से जो अतिचार किया उससे मैं पीछे हटता हूँ।
अप्रत्युपेक्षणा= चक्षु से देखना ही नहीं। दुष्प्रत्युपेक्षणा= बराबर न देखना।
अप्रप्रार्जना= रजोहरणादि से स्पर्श ही न हो। दुष्प्रार्जना= अविधि से प्रमार्जना।

तथा अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार में से जो दैवसिक अतिचार किया हो, उससे मैं पीछे हटता हूँ।
अतिक्रमादि का स्वरूप - आधाकर्म गोचरी का निमंत्रण होने पर 'मैं आऊँगा' ऐसा स्वीकारना, पात्र लेना, उपयोग करने तक अतिक्रम। जाते हुए कदम उठाने से लेकर खोरने के लिए पात्रा आगे करने तक व्यतिक्रम। खोरने से लेकर वापरने के लिए कवल लेने तक अतिचार। कवल मुँह में डालने से नीचे उतारने तक अनाचार।

अत. यह अतिचार संक्षेप से एकविध, संक्षेप-विस्तार से द्विविध यावत् असंख्य-विध, विस्तार से अनंतविध। एकविधादि भेद -

सूत्र पडिक्कमामि एगविहे असंजमे। पडिक्कमामि दोहिं बंधणेहिं - रागबंधणेणं दोसबंधणेणं। प. तिहिं दंडेहिं - मणदंडेणं वयदंडेणं कायदंडेणं। प. तिहिं गुत्तीहिं - मणगुत्तीए वयगुत्तीए कायगुत्तीए।

* एक प्रकार के असंयम में निषिद्ध के करने वि. से जो मेरे द्वारा दैवसिक अतिचार हुआ उससे मैं पीछे हटता हूँ, उसका मिच्छामि दुक्कडं।
* दो प्र. के बंधन- राग, द्वेष से होने वाले अतिचारों से मैं पीछे हटता हूँ। राग-द्वेष का स्वरूप भाग 3 गा. 918 नमस्कार निर्युक्ति से जानना।

(Pg 51)

* 3 दंडों से हुए अतिचारों से मैं पीछे हटता हूँ - मनदंड, वचनदंड, कायदंड। मन वि. दुष्प्रयुक्त हो तो आत्मा दंड किया जाता है।

मन दंड में उदाहरण – कोंकण देश का साधु घुटने ऊपर और सिर नीचे कर कुछ सोच रहा था x शुभ ध्यान में मग्न जानकर साधुओं ने उसे वंदन किया x बहुत देर बाद वह साधुओं के साथ बोलने लगा x साधुओं ने पूछा - क्या चिंतन किया ? x साधु - अभी कर्कश हवा चल रही है, यदि मेरे पुत्र घास जलाकर बीज बोएँगे तो वर्षा काल में बहुत चावल की फसल उगेगी x आचार्य ने उसे रोका x
यदि ऐसा कोई मन से अशुभ विचारे तो मन दंड।

वचन दंड में उदाहरण – एक साधु संज्ञाभूमि से आया x सविधि से गुरु के पास आलोचना करता है - मैंने सुअर का समूह देखा x यह सुनकर पास में रहे शिकारी मारने गए x

काय दंड में उदाहरण – चंडरुद्राचार्य रथयात्रा देखने उज्जयिनी आए x वे क्रोधी थे x वहाँ वेश्या के घर से निकला, जात्यादि संपन्न एक सेठ का पुत्र दीक्षा के लिए उपस्थित हुआ x साधुओं ने उसका विश्वास न कर चंडरुद्र के पास भेजा x आ. ने उसी समय सोच कर दीक्षा दी x सुबह अन्य गाँव जाते हुए आगे शिष्य पीछे चंडरुद्र चले x पत्थर से टकराकर गुरु ~~चले~~ गिरे x गुस्से में शिष्य को दंड से सिर पर मारा - तूने पत्थर क्यों नहीं देखा ? x शिष्य सहन करता है x प्रतिक्रमण में गुरु ने शिष्य के मस्तक पर खून देखा x मिच्छामि दुक्कडं माँगते आ. को वैराग्य से केवलज्ञान हुआ x शिष्य को भी कुछ देर बाद केवलज्ञान हुआ।

* 3 गुप्तियों से हुए अतिचारों से मैं पीछे हटता हूँ – मनगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति। निषिद्ध करने, कृत्य न करने, अश्रद्धा वि. से गुप्ति में अतिचार होते हैं।
मनगुप्ति में उदाहरण – जिनदास श्रावक x सर्वरात्रिकी प्रतिमा स्वीकार कर यान-शाला में रहा x उसकी व्यभिचारी पत्नी खीले वाला पलंग लेकर आई x

Notes Date :

उसके पैर पर ही पलंग का एक पाया रखा x पलंग पर जार पुरुष के साथ अनाचार किया x पाये से पैर बींधाया x बहुत बड़ी वेदना सहन करी x पत्नी को ऐसे देखकर भी ध्यान में एकाग्र मन वाले उसे अशुभ विचार भी नहीं हुआ x
ऐसी मन गुप्ति करना चाहिए।
वचन गुप्ति में उदाहरण - स्वजनों को मिलने निकले एक साधु को रास्ते में चोरों ने पकड़ा x पास में कुछ न होने से छोड़ा और चोरों के सेनापति ने कहा - हम यहाँ छुपे हैं, ऐसा किसी को मत कहना x साधु आगे चले x एक लग्न की यात्रा (Procession) में स्वजनों को मिलकर उनके साथ ही वापस आए x उसी जगह पर चोरों ने लूटा x साधु को देखकर एक चोर - ये तो वही साधु हैं जिसे हमने पकड़कर छोड़ दिया था x साधु की माता ने पूछा - क्या इसे सही में पकड़कर छोड़ा था? x चोर - हाँ x माता - तो छुरी लाओ जिससे कुपुत्र को दूध पिलाने वाले मेरे स्तनों को मैं काट दूँ x सेनापति - ये आपका कौन है? x माता - दुष्ट जन्म से पैदा हुआ पुत्र है जिसने तुम्हें देखकर भी न कहा x सेनापति ने साधु को पूछा - क्यों नहीं कहा? x धर्मकथा की x शांत होकर सेनापति ने सब माल माता को वापस दिया x
ऐसी वचन गुप्ति करना चाहिए।
कायगुप्ति में उदाहरण - सार्थ के साथ निकले एक साधु को रहने के लिए स्थंडिल (सचित्त) भूमि नहीं मिली x ढूँढने पर एक पैर रखे इतनी जगह मिली x वे एक पैर पर पूरी रात खड़े रहे किंतु अस्थंडिल में पैर भी न रखा x शक्र ने प्रशंसा की x एक देव ने रास्ते में बहुत सारी मेंढकी विकुर्वी x साधु जयणा से चलने लगे x तभी सामने एक हाथी दौड़ता हुआ विकुर्वा x साधु आस-पास की सचित्त भूमि में न गए x हाथी ने सूँढ से उछाला x नीचे गिरते हुए साधु ने सोचा - मुझसे जीव मरेंगे, अतः मिच्छामि दुक्कड़ देते हैं किंतु खुद की चिंता न की x दुष्ट देव ने नमन किया।

~~सूत्र~~ सूत्र- पडिक्कमामि तिहिं सल्लेहिं - मायासल्लेणं नियाणसल्लेणं मिच्छा-दंसणसल्लेणं | पडिक्कमामि तिहिं गारवेहिं - इड्ढीगारवेणं रसगारवेणं साया-गारवेणं | पडिक्कमामि तिहिं विराहणाहिं - णाणविराहणाए दंसणविराहणाए चरित्तविराहणाए | पडिक्कमामि चउहिं कसाएहिं - कोहकसाएणं माणकसाएणं मायाकसाएणं लोहकसाएणं | पडिक्कमामि चउहिं सण्णाहिं - आहारसण्णाए भयसण्णाए मेहुणसण्णाए परिग्गहसण्णाए | पडिक्कमामि चउहिं विकहाहिं - इत्थिकहाए भत्तकहाए देसकहाए रायकहाए | पडिक्कमामि चउहिं झाणेहिं - अट्टेणं झाणेणं रुद्देणं झाणेणं धम्मेणं झाणेणं सुक्केणं झाणेणं |

* तीन शल्यों से हुए अतिचारों से पीछे हटता हूँ | द्रव्य शल्य - कंटकादि, भावशल्य - ३ |

मायाशल्य - माया से अतिचार की आलोचना न करे या अन्यथा करे या अभ्याख्यान (दूसरे पर आरोप) करे | eg. में रुद्र का दृष्टांत आगे कहेंगे और पंडरार्या का दृष्टांत नमस्कार निर्युक्ति में (भाग ३ pg 57) कहा गया |

निदान शल्य - देव या मनुष की ऋद्धि देखने या सुनने से उसके अभिलाष से अनुष्ठान करे | इसमें हिंसादि की अनुमोदना से दोष | eg. ब्रह्मदत्त चक्री का चरित्र | ~~कहा गया~~

मिथ्यादर्शन शल्य - विपरीत दर्शन ही कर्मबंध का हेतु होने से शल्य है | यह आभिनिवेश - मतिभेद - अन्यसंस्तव रूप उपाधि से ३ प्र. का होता है | आभिनिवेश में गोष्ठामाहिल, मतिभेद में जमालि के दृष्टांत कहे गए (भाग २ गणधरवाद) अन्य संस्तव में भिक्षु उपासक श्रावक का दृष्टांत आगे कहेंगे |

* तीन गारव से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूं | द्रव्य गौरव - वज्रादि का, भावगौरव - मान और लोभ से आत्मा के अशुभ भाव |

ऋद्धिगौरव - राजा वि. को पूज्य आचार्यादि की अभिलाषा से गौरव | ऋद्धि प्राप्त होने पर अभिमान, प्राप्त न होने पर प्रार्थना से होने वाले आत्मा के अशुभ भाव | ~~इसमें मंगु आचार्य का दृष्टांत~~ |

Notes Date :

* रस गौरव – इष्ट रस की प्राप्ति में अभिमान और अप्राप्ति में प्रार्थना से होने वाला अशुभ भाव।

साता गौरव – सुख से गुरुता।

तीनों गौरव में मंगु आचार्य का दृष्टांत –

मथुरा x आर्य मंगु आचार्य पधारे x श्रावक इष्ट रस-वस्त्र-शयन-आसनादि अधिक व्होराते हैं x वे 3 गौरव में आसक्त अकालधर्म प्राप्त कर मथुरा की नाले के पास यक्ष बने x संज्ञाभूमि जाते हुए साधुओं को यक्षायतन के पास से जाते हुए को यक्ष यक्षप्रतिमा में प्रवेश कर जीभ गवाक्ष में से बाहर निकालकर बताता है x बहुत बार ऐसा होने पर कभी साधुओं के पूछने पर बोला – जीभ से दुष्ट मैं वह मंगु हूँ, यहाँ उत्पन्न हुआ हूँ; यदि तुम भी ऐसा करोगे तो ऐसे बनोगे अतः ऐसा न हो इसलिए जीभ बता रहा हूँ x देखकर साधु अधिक गारव रहित हुए।

★ तीन विराधना से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ। विराधना = किसी वस्तु का खंडन।

ज्ञान विराधना – णाणपडिणीय[1] णिण्हव[2] अच्चासायण[3] तदंतराय[4] च।
कुणमाणस्सऽइयारो णाणविसंवादजोगं च॥

1. प्रत्यनीकता ऽ ए. की निंदा से (a) मति-श्रुत-मतिज्ञान अशोभन है क्योंकि उससे जाना हुआ कभी वैसा ही होता है, कभी गलत होता है।
(b) श्रुतज्ञान भी अशोभन है क्योंकि शीलरहित को वह कुछ लाभ नहीं देता।
(c) अवधिज्ञान भी अशोभन है क्योंकि अरूपि द्रव्य को नहीं जानता।
(d) मनःपर्यायज्ञान " " " मात्र मनुष्य क्षेत्र की अवधि वाला है।
(e) केवलज्ञान भी अशोभन है क्योंकि दर्शन-ज्ञान प्रवृत्ति समय के भेद से होने से अकेवल है।
2. निह्नव = छुपाना, अन्य के पास पढ़े होने पर अन्य का व्यपदेश करें।
3. अत्याशातना = सभी जगह 6 काय और वो ही व्रतों की बात, प्रमाद-अप्रमाद भी वो ही, कुछ नया तो आता नहीं तथा मोक्षाकांक्षी साधु को ज्योतिष और योनि

का क्या काम? वि. बोलना।

4. अंतराय- पढ़ते हुए को अंतराय करना। असज्झाय करना, झगड़ना वि.।

5. ज्ञान विसंवाद योग - अकाल स्वाध्याय करना वि. से ज्ञान के साथ विसंवाद का योग करना।

दर्शन विराधना - ज्ञान की तरह ही 5 कारण

1. प्रत्यनीकता - क्षायिकदर्शनी भी श्रेणिकादि नरक गए। इत्यादि निंदा।
2. निह्नव - दर्शन प्रभावक शास्त्र जिसके पास पढ़े हो, उसका नाम छुपाना वि.।
3. अत्याशातना - इन कलह वाले शास्त्रों से क्या? वि. निंदा।
4. अंतराय - पूर्ववत्
5. दर्शनविसंवाद योग - शंकादि द्वारा।

चारित्रविराधना - व्रतादि के खंडन रूप।

* चार कषायों से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ। कषाय का स्वरूप नमस्कार निर्युक्ति से सोदाहरण जानना।

* चार संज्ञा से हुए अतिचार से पीछे हटता हूँ। संज्ञा यानि 29. ⓐ क्षायोपशमिकी- ज्ञानावरण के क्षयोपशम से उत्पन्न मति, इससे यहाँ अधिकार नहीं है।
ⓑ औदयिकी - 49. आहारसंज्ञादि।

आहारसंज्ञा = क्षुधावेदनीय कर्म के उदय से उत्पन्न आहार की इच्छा रूप आत्म परिणाम। 4 स्थानों से होती है - ⓐ अवमकोष्ठता - पेट खाली हो तो ⓑ क्षुधावेदनीय कर्मोदय से ⓒ मति - आहारश्रवणादि से ⓓ तदर्थोपयोग - सतत आहार को विचारने से।

भयसंज्ञा = भय मोहनीय के उदय से उत्पन्न जीव का परिणाम विशेष। ये भी

Notes Date:

चार स्थानों से होता है - ⓐ हीनसत्त्वता ⓑ भयमोहनीयोदय ⓒ मति ⓓ तदर्थोपयोग।

मैथुनसंज्ञा = वेदमोह के उदय से होता मैथुनाभिलाष रूप जीव परिणाम। ये चार स्थानों से होता है - ⓐ चितमांसशोणितता ⓑ वेदमोहनीयोदय ⓒ मति ⓓ तदर्थोपयोग।

परिग्रह संज्ञा = तीव्र लोभ के उदय से उत्पन्न परिग्रहाभिलाष रूप जीवपरिणाम। ये भी चार स्थान ⓐ अविवेक ⓑ लोभोदय ⓒ मति ⓓ तदर्थोपयोग।

* चार विकथा से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।

स्त्रीकथा - ४ प्र. ⓐ जातिकथा - ब्राह्मणी वि. की किसी जाति की स्त्री की प्रशंसा या द्वेष करना। ⓑ कुलकथा - उग्रादि कुल में उत्पन्न स्त्रियों में से किसी की प्रशंसा या द्वेष। ⓒ रूपकथा - आंध्र वि. देश में उत्पन्न स्त्री के रूप की प्रशंसा या द्वेष। ⓓ नेपथ्यकथा - आंध्र वि. देश की स्त्रियों में से किसी के कछोटे वि. वस्त्र की प्रशंसा या द्वेष।

टीप्पणक भक्तकथा - ४ प्र. ⓐ आवापकथा - 'अमुक राजा या सेठ वि. की रसोई में १० शाक, ५ पल, घी तथा आढक प्रमाण चावल होते हैं' वि. सामान्य से रसोई में द्रव्यों की संख्या कहना।

ⓑ निर्वापकथा - 'एकैक शाक में १० या ५ बगार होने पर सभी भेद इतने होते हैं' वि. विशेष से व्यंजन के भेद, कूरादि के भेद कहना।

ⓒ आरंभ कथा - 'ग्रामनगरादि के बकरे, भैंस वि. और जंगली हिरण वि. इतने जीव अमुक की रसोई में मारकर पकाए जाते हैं' वि.।

ⓓ निष्ठान कथा - 'अमुक की रसोई में १०० रुपये, अमुक के ५००, अमुक के लक्षपाक रसोई होती है' वि.।

* अविविक्तता – क्षण में दृष्ट-नश्वर धन-कनकादि से शाश्वत आत्मा को भी अलग नहीं देखता है किंतु धन-कनकादि को स्वतन्त्वता से ~~अध्यवस्य~~। अध्यवसित करता है, ऐसे अविविक्तता से तीव्र परिग्रह संज्ञा होती है।

हरिभद्रीय वृत्ति

* देशकथा – ५ प्र. ⓐ छंदकथा – छंद = गम्य-अगम्य eg. अंग-लाट देश में मामा की पुत्री गम्य है, गोल्लादि में वह बहन होने से अगम्य है, उत्तर देशों में सौतेली माँ गम्य है वि.।

ⓑ विधि कथा – विधि = रचना eg. भोयण विधि – इस देश के लोग पहले ये खाते हैं वि. प्राणि भूषित विधि, विवाह विधि वि.।

ⓒ विकल्प कथा – धान्यनिष्पत्ति कहीं कुएँ के पानी से, कहीं नदी, कहीं नीक, कहीं बाढ़ के पानी से होती है। ऐसे धान्य-घर-देवकुल-गाँव-नगरादि की कथा।

ⓓ नेपथ्य कथा – भेडिग = स्त्रियों का ~~ज~~ पीछे पीठ पर जाली रहित Blouse।
जालिका = जाली सहित ~~Blouse~~ Blouse। (टीप्पणक)
ऐसे स्त्री-पुरुषों के वेश कोई देश में स्वाभाविक या कृत्रिम होते हैं वि.।

राजकथा – ५ प्र. ⓐ निर्गमकथा – 'आज राजा ऐसी ऋद्धि की विभूति से निकला है' वि.। ⓑ प्रवेश कथा – 'सुवर्ण और सूर्य जैसी कांति वाले शरीर वाला राजा हाथी पर शोभता है जैसे – अलकापुरी से इंद्र आया हो' वि.। ⓒ बल कथा – 'इस राजा के पास इतने रथ-घोड़े-पैदल-हाथी वि. है'। ⓓ कोश-कोष्ठागार – कोश = धन भंडार; कोष्ठागार = धान्य भंडार, 'इस राजा के पास इतने कोश, इतने कोष्ठागार हैं' वि.।

* चारध्यान से हुए अतिचारों से पीछे हटता हूँ। ध्यान का काल अंतर्मुहूर्त ही होता है। ४ प्र. –

1. आर्तध्यान – ध्येय अमनोज्ञविषय का संयोगादि, उसमें शोक-रोना वि. आर्त ध्यान। फल – तिर्यंच गति।
2. रौद्रध्यान – सतत वध करना वि. रूप। फल – नरक गति।

Notes Date:

3. धर्म्यध्यान - जिन प्रणीत भावों की श्रद्धा वि. । फल - देवगति वि. ।
4. शुक्लध्यान - अवध, असंमोहादि रूप । फल - मोक्ष ।
यह संक्षेप अर्थ है । विस्तारार्थ ध्यान शतक से जानना ।

श्री ध्यानशतकम्

अव. ध्यान शतक ~~महर्ष~~ महार्थ वाला होने से और वस्तुतः अन्य शास्त्र होने से प्रारंभ में विघ्नविनायक की उपशान्ति के लिए ~~और~~ मंगल के लिए इष्ट देवता का नमस्कार कहते हैं -

गा.1 शुक्लध्यान रूपी अग्नि से कर्म इंधन को जला देने वाले, योगीश्वर और शरण्य ऐसे वीर प्रभु को प्रणाम कर ध्यानाध्ययन कहता हूं ।

* वीर - ईर् धातु गति-प्रेरणा अर्थ में, वि उपसर्ग पूर्वक अच् प्रत्यय वीरः ।
विशेष से कर्म को दूर करे या विशेष से (पुनरागमन न हो ऐसे) शिव गए हुए ।
* शुक्ल = शुचं क्लमयति शोक को दूर करने वाला ।
ध्यान = चिन्त्यते ध्यायतेऽनेन तत्त्वं, जिससे तत्त्व विचारा जाय । यानि एकाग्र चित्त निरोध ।
कर्म = मिथ्यात्वादिहेतुभिः क्रियते, मिथ्यात्वादि 5 हेतु से जो कराय वह । यह कर्म तीव्र दुःख रूपी अग्नि का कारण होने से इंधन समान है । कर्मरूपी इंधन जलाने से अग्नि समान शुक्ल ध्यान ।
* प्रणम्य = प्रकर्षेण मनोवाक्काययोगै र्नत्वा ।
* ध्यानाध्ययन = ध्यान का प्रतिपादक अध्ययन । अधीयते इति अध्ययनं ।
* योगेश्वर = मन-वचन-काय रूप योगों से ईश्वर । प्रधान । ~~अथवा~~
~~योगीश्वर~~ = भगवान् के योग अनुत्तर होने से वे प्रधान हैं -
कहा है - द्रव्यमन के योग द्वारा सदा मनःपर्यायज्ञानी और अनुत्तर देवों के संशयों को केवलज्ञान से जानकर संशय का व्यवच्छेद करते हैं ।1
स्पष्ट, पद-अक्षर से सरल, मनुष्य-देव-तिर्यंचों की स्वभाषा में परिणमने वाली, मन को शांति करने वाली, योजन तक जाने वाली, अद्वितीय

अकेली अनेकों के संशयों का व्यवच्छेद करने वाली वाणी को सुनने वाला श्रोता पूरे आयुष्य में भी खेद न पाये। 2-3
सभी देवों से भी अधिक कांत काययोग अ. का है तो भी सभी जीवों को शांति देते हैं।

अथवा

योगीश्वर = आत्मा को मोक्ष से जोड़ने वाले धर्म-शुक्ल ध्यान रूप योग वाले योगी के ईश्वर/स्वामी।

अथवा

योगिस्मर्य = योगियों के स्मरण करने योग्य या योगियों के ध्येय।

* शरण्य = शरणे साधुः, रागादि से पराभूत जीवों के प्रति वात्सल्य वाले या रक्षक।

* प्र. जिसने शुक्लध्यानाग्नि से कर्मेंधन जलाया दिए हैं, वे योगेश्वर ही हैं; वह योगेश्वर शरण्य ही होते हैं, अतः विशेषण अनर्थक है?
उ. शुक्लध्यानाग्नि से कर्मेंधन जलाने वाले सामान्य केवली भी हैं, किंतु वे योगेश्वर नहीं हैं क्योंकि वचन-काया का अतिशय उन्हें नहीं है।
शरण्य वे ही हैं, ऐसा बताने के लिए यह प्रविशेषण दुष्ट नहीं है। तथा उभयपदव्यभिचार, एकपदव्यभिचार और अज्ञात बताने के लिए पूर्वमुनियों द्वारा विशेषण कहने की अनुज्ञा शास्त्र में दी गई है।

अब. ध्यान का लक्षण -
गा. 2 जो स्थिर अध्यवसान है, वह ध्यान। जो चंचल है, वह चित्त। वह चित्त 3प्र. का हो सकता है - भावना, अनुप्रेक्षा, चिंता।

* स्थिर = निश्चल, अध्यवसान = मन। स्थिर मन अर्थात् एकाग्र आलंबन वाला मन ध्यान कहा जाता है।

* जो चंचल है, वह चित्त है। चित्त सामान्य से 3प्र. का होता है -

Notes Date :

1. भावना = ध्यान के अभ्यास की क्रिया।
2. अनुप्रेक्षा = स्मृति के ध्यान से भ्रष्ट के चित्त की चेष्टा। स्मृति यानि सूत्र का पुनरावर्तन (!)।
3. चिन्ता = इन दोनों प्रकार से रहित मन की चेष्टा।

अब. ध्यान का लक्षण सामान्य से कहकर ध्यान का ही काल-स्वामी से निरूपण करते हैं-

सू. 3 छद्मस्थों का ध्यान यानि एक वस्तु में अंतर्मुहूर्तमात्र चित का अवस्थान। जिनों का ध्यान योगनिरोध है।

* अंतर्मुहूर्त → मुहूर्त यानि 48 मिनट जितना काल विशेष। अंतर् शब्द मध्य अर्थ में है। अर्थात् मुहूर्त के अंदर।
मात्र शब्द - इससे अधिक काल के व्यवच्छेद के लिए।
* अवस्थान = निष्कंपता से रहना।
वस्तु = वसन्ति गुणपर्याया अस्मिन् इति।
छद्मस्थ → छद्म = छादयति इति, ढाँकने वाला ढक्कन, आवरण, विधान।
ज्ञानादि गुणों के आवरक होने से ज्ञानावरणीयादि घातिकर्म छद्म कहे जाते हैं।
छद्मनि स्थिताः छद्मस्थाः।
* जिन = केवली।
योग = शरीरादि के संयोग से उत्पन्न जीव के परिणाम विशेष रूप व्यापार)

* छद्मस्थों का ध्यान एक वस्तु में अंतर्मुहूर्त तक चित्त को स्थिर रखना है, जबकि केवलियों का ध्यान योगनिरोध है।
केवली का ध्यान योगनिरोध ही है, चित्तावस्थान नहीं क्योंकि उन्हें चित्त ही नहीं है। केवली
योगनिरोध केवली का ही ध्यान है, छद्मस्थ का नहीं क्योंकि छद्मस्थों को योगनिरोध अशक्य है।

अब· योगनिरोध का काल वि. आगे कहेंगे। अभी अंतर्मुहूर्त बाद छद्मस्थों का क्या होता है, वह कहते हैं –

गा. 4 अंतर्मुहूर्त के बाद चिंता या ~~अन्य ध्यान~~ ध्यानान्तर होता है। बहु वस्तु के संक्रम में ध्यान का प्रवाह लंबे समय तक हो सकता है।

★ यहाँ ध्यानान्तर यानि अन्य ध्यान नहीं लेना किंतु ध्यान के बीच में होने वाले भावना और अनुप्रेक्षात्मक चित्त लेना।

★ यह ध्यानान्तर भी तब होता है जब इसके बाद पुनः ध्यान होने वाला हो। ऐसे ध्यान का प्रवाह चलता है –
ध्यान – ध्यानान्तर – ध्यान – ध्यानान्तर ... (टीप्पणक द्रष्टव्य है)
इस ~~प्रकार~~ प्रकार बहुत वस्तु में संक्रम होने पर ध्यान का प्रवाह चलता है।

★ उसमें वे वस्तु आत्मा में रहे मन वि. या दूसरे द्रव्यादि हो सकते हैं।

अब. यहाँ तक सामान्य से ध्यान का लक्षण कहा। अब विशेष से कहने की इच्छापूर्वक ध्याने के भेद और ध्यान का विशिष्टफल में हेतुत्व –

गा. 5 आर्त, रौद्र, धर्म, शुक्ल ध्यान हैं। उनमें अंतिम दो निर्वाण के साधन हैं, आर्त-रौद्र संसार के कारण हैं।

★ आर्त = ऋते भवं। ऋत = दुःख, दुःख है निमित्त जिसमें अर्थात् दुःख से होने वाले दृढ़ अध्यवसाय, क्लिष्ट।

★ रौद्र = हिंसादि क्रूरता को अनुसरने वाला।

★ धर्म्य = श्रुतधर्म और चारित्रधर्म को अनुसरने वाला।

★ शुक्ल = शोधयति अष्टप्रकारं कर्ममलं इत्यतः शुचं क्लमयति।

★ प्र. निर्वाण यानि तो मोक्ष, धर्मध्यान से मोक्ष कैसे ?
उ. ⓐ निर्वाण यानि सामान्य से सुख। धर्मध्यान भी देवगति में सुख का कारण है।
ⓑ परंपरा से धर्मध्यान भी मोक्ष का कारण है।

★ आर्त-रौद्र संसार के कारण हैं, उसमें भी व्याख्या से विशेषप्रतिपत्ति होने से तिर्यंच-नरक के भव जानना।

Notes Date:

अव. आर्तध्यान के ४भे. तत्वार्थ में कहे गए - आर्तममनोज्ञानां सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहार: (9-31), वेदनायाश्च (9-32), विपरीतं मनोज्ञादीनां (9-33), निदानं च (9-34)। इसमें से प्रथम भेद -

गा. 6 द्वेष से मलिन जीव का अमनोज्ञ शब्दादि विषय-वस्तुओं के वियोग का अत्यंत चिंतन और असंप्रयोग का अनुसरण।

* मन के अनुकूल मनोज्ञ, इष्ट। प्रतिकूल अमनोज्ञ।

विषीदन्ति एतेषु सक्ता: प्राणिन: इति विषया। वस्तु = विषय के आधार रूप द्रव्य।

* अमनोज्ञ शब्दादि विषय और वस्तु प्राप्त होने पर 'कैसे मेरा इनसे वियोग हो' ऐसा वियोग को अत्यंत विचारना। इससे वर्तमान काल कहा।

तथा वियोग होने पर 'कैसे हमेशा ये मुझसे दूर रहे' ऐसे असंप्रयोग को अनुसरना। इससे भविष्य काल कहा।

तथा पहले वियुक्त और असंप्रयुक्त के बहुमत होने से भूतकाल कहा।

अव. दूसरा भेद -

गा. 7 वेदना के प्रतिकार में आकुल मन वाले जीव का शूल-सिररोगादि वेदना के वियोग का प्रणिधान और उनके असंप्रयोग की चिंता।

* उपर्युक्त रीति से 3 काल जानना।

अव. तीसरा भेद -

गा. 8 राग में रक्त जीव का इष्ट विषयादि और वेदना के अवियोग का अध्यवसान और संयोग का अभिलाष।

* पूर्ववत् 3 काल जानना।

अव. चतुर्थ भेद -

गा. 9 देवेन्द्र-चक्रवर्तित्वादि के गुण-ऋद्धि की प्रार्थनामय, अधम और अज्ञान को अनुसरने वाला निदान का अत्यंत चिंतन।

* दीव्यन्ते इति देवाः, तेषां इन्द्राः।
चक्रेण विजयाधिपत्ये वर्तितुं शीलं एषां इति।
* 'मैं इस तप-त्यागादि से देवेंद्र बनूँ' वि.।

* प्र. यह अधम क्यों है ? उ. क्योंकि अज्ञान का अनुसरण करने वाला है। अज्ञानी सिवाय अन्य किसी को सांसारिक सुखों में अभिलाष नहीं होता।

विद्वच्चित्तं भवति च महद् मोक्षकाङ्क्षैकतानं।
नात्यस्कन्धे विटपिनि कषत्यंसमित्तिं गजेन्द्रः॥

विद्वान का चित्त मोक्ष की कांक्षा में एकतान होता है। जैसे - हाथी छोटे तने वाले पेड़ पर कभी पीठ नहीं खुजालता।

अव. किसे यह ध्यान होता है और इसका फल -
गा. 10 राग-द्वेष-मोह से व्याप्तित जीव को ये 4 प्र. का आर्तध्यान होता है। यह संसार को बढ़ाने वाला और तिर्यंच गति का मूल है।

* प्र. शूल वेदना से अभिभूत साधु को भी असमाधि से और चिकित्सा करने में वियोग के प्रणिधान की अप्राप्ति से आर्तध्यान की प्राप्ति है। तथा तप-संयम के सेवन में सांसारिक दुःख के वियोग के प्रणिधान से आर्तध्यान की प्राप्ति है।
उ. रागादि के वशवर्ती मुनि को आर्तध्यान होती ही है, अन्य को नहीं।

अव. इसी बात को ग्रंथकार कहते हैं -
गा. 11 'यह स्वकर्म के परिणाम से जनित है' ऐसे वस्तु स्वभाव के चिंतन में तत्पर और सम्यक् सहन करते मध्यस्थ मुनि को असमाधि कैसे ?
* राग-द्वेष के मध्य में रहने वाले मध्यस्थ।
जगत् की त्रिकाल अवस्था को जानने वाले मुनि।

Notes Date :

* मध्यस्थ मुनि को भी पूर्व कर्म से ऐसा अशुभ होता है, किंतु वे परिताप नहीं करते।
* ऐसे मुनि 'स्वकर्म से यह उत्पन्न हुआ है तथा इसे भोगे बिना छुटकारा नहीं है, पुव्विं खलु भो! कडाणं कम्माणं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं वेत्ता मोक्खो, नत्थि अवेइत्ता, तवसा वा झोसइत्ता' वि. वस्तु स्वभाव के चिंतन में तत्पर और शुभ अध्यवसाय से सहन करते हुए मुनि असमाधि नहीं होती।

अव. शंका में से ⓐ असमाधि का उत्तर दिया। अब ⓑ ⓒ—
गा. 12 अल्पसावद्यवाले प्रतिकार को करते प्रशस्त आलंबन वाले मुनि को तथा तप-संयम रूप प्रतिकार का सेवन करते मुनि को धर्मध्यान ही है, निदान नहीं है।
* अल्पसावद्य वाले प्रतिकार को करते हुए प्रशस्त आलंबन अर्थात् ज्ञानादि को उपकारक ऐसे कारण वाले साधु को धर्मध्यान ही है, निदान नहीं है। क्योंकि वे निर्दोष हैं। वचन की प्रमाणता से वे निर्दोष हैं - गीयत्थो जयणाए कडजोगी कारणंमि निद्दोसो'।
अन्यथा प्रतिकार किए बिना परलोक साधना अशक्य है।
इससे ⓑ चिकित्सा में आर्तध्यान का उत्तर दिया।

* सांसारिक दुःखों के प्रतिकार रूप तप-संयम को सेवते हुए मुनि को धर्मध्यान ही है, यदि वे निदान बिना आचरे तो।

* प्र. संपूर्ण कर्मक्षय से मोक्ष हो, यह भी निदान ही है।
उ. हाँ, निश्चय से यह भी निषिद्ध ही है क्योंकि कहा गया है—

मोक्षे भवे च सर्वत्र निःस्पृहो मुनिसत्तमः।
प्रकृत्यभ्यासयोगेन, यत उक्तो जिनागमे॥

तो भी भावना में अपरिणत जीव की अपेक्षा व्यवहार से यह हुए नहीं है।

क्योंकि इससे ही उसकी चित्तशुद्धि और क्रिया में प्रवृत्ति होती है।

अव. प्र. आपके द्वारा कहा गया आर्तध्यान संसार को बढ़ाने वाला है, कैसे ?
उ. संसार का बीज होने से। बीज कैसे है—
गा.13 राग, द्वेष, मोह संसार के हेतु कहे गए हैं और आर्तध्यान में वे तीनों हैं। अतः संसार रूपी वृक्ष का वह बीज है।

* प्र. यदि सामान्य से संसार का हेतु है तो तिर्यंच गति का कारण क्यों कहा।
उ. तिर्यंच गति में जाने का कारण होने से ही संसार वृक्ष का बीज है। अन्य मत— तिर्यंच गति में ही बहुत जीव संभव होने से और स्थिति भी बहुत होने से संसार का उपचार किया जाता है।

अव. आर्तध्यानी की लेश्या—
गा.14 आर्तध्यान को प्राप्त जीव को कर्म परिणाम से जनित, अति संक्लिष्ट नहीं ऐसी कृष्ण-नील-कापोत लेश्याएँ होती हैं।
* अतिसंक्लिष्ट नहीं— रौद्रध्यान की लेश्या की अपेक्षा से।

अव. आर्तध्यानी के लिंग/चिह्न—
गा.15 उसके इष्टवियोग— अनिष्टयोग-वेदना से होने वाले आक्रंदन-शोक-परिदेवन-ताड़नादि लिंग हैं।
* आक्रंदन = बड़ी आवाज से रोना।
शोक = आँसू सहित दीनता।
परिदेवन = बार-बार क्लिष्टभाषण।
ताड़न = छाती-सिर कूटना, बाल खींचना वि.।

गा.16 निजकृतों की निंदा करे। विस्मयसहित विभूतियों की प्रशंसा करे। उनकी प्रार्थना करे। इनमें राग करे। उनके अर्जन में तत्पर रहे।

Notes Date :

★ आर्तध्यानी स्वयं द्वारा किए हुए अत्यफल वाले या विफल कर्म-शिल्प-वाणिज्यादि की निंदा करे।

★ आश्चर्य सहित व दूसरे की संपत्ति की प्रशंसा करे। उसे इच्छे। प्राप्त होने पर उनमें राग करे। उनको प्राप्त करने में लगा रहे।

गा. 17 ~~आर्तध्यान~~ शब्दादि विषय में गृद्ध, सद्धर्म से पराङ्मुख, प्रमाद में तत्पर, जिनप्रत में निरपेक्ष वह आर्तध्यान में रहता है।

★ सद्धर्म = क्षमादि चारित्र धर्म।
जिनप्रत = आगम।

अब. ये आर्तध्यान किसे होता है और किसे नहीं, इसकी संभावना-

गा. 18 अविरत-देशविरत और प्रमाद में तत्पर संयत को यह ध्यान होता है। साधुओं द्वारा सर्वप्रमाद का मूल समान यह ध्यान छोड़ने योग्य है।

★ अप्रमत्त संयत को आर्तध्यान कभी नहीं होता, प्रमत्त को ही होता है।

अब. आर्तध्यान कहा। रौद्रध्यान भी सू. - हिंसाऽनृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रम् (तत्त्वार्थ सू. 9-36)। प्रथम भेद-

गा. 19 निर्घृण मन वाले को अतिक्रोध रूपी ग्रह से ग्रस्त, अधमविपाक वाला तथा जीववध-वेध-बंधन-दहन-अंकन-मारणादि में प्रणिधान रूप रौद्रध्यान का प्रथम भेद है।

★ वध = हाथ-चाबुक-लता वि. से मारना।
वेध = कील वि. से नाक वि. छेदना।
बंधन = रस्सी-बेड़ी वि. से बांधना।
दहन = अंगारे वि. से जलाना।
अंकन = कुत्ते, शृगाल के चरण से चमड़ी खींचना अर्थात् इनके नख वि. से चमड़ी खींचना।
मारण = तलवार-शक्ति-भाले वि. से प्राण छुड़ाना।

* प्रथम यानि नरकादि रूप जघन्य विपाक वाला।

अव. दूसरा भेद –

गा.20 मायावी, अतिसंधान में तत्पर और पच्छन्नपाप वाले जीव को पिशुन-असभ्य-असद्भूत-भूत घातादि वचनों में प्रणिधान।

* अनिष्ट के सूचक पिशुन। असभ्य = जकार-मकारादि। असद्भूत = झूठ। झूठ व्यवहार नय से 3 प्र. – ⓐ अभूतोद्भावन ⓑ भूतनिह्नव ⓒ अर्थान्तराभिधान
भूतघात = जीव के घात में तत्पर वचन।

* अतिसंधान = दूसरे को ठगना।

* पच्छन्नपाप = ब्राह्मणादि गुण रहित भी स्वयं को गुणवंत बताए, इससे दूसरा पच्छन्नपाप नहीं है।

अव. तीसरा भेद –

गा.21 तीव्रक्रोध-लोभ से आकुल जीव का परलोक अपाय से निरपेक्ष, भूतोपघात करने वाला, अनार्य ऐसा परद्रव्य के हरण में चित्त।

अव. चौथा भेद –

गा.22 शब्दादि विषय के साधन-धन के संरक्षण में परायण, अनिष्ट, सबकी शंका से आकुल, परोपघात से आकुल और कषाय से आकुल ऐसा चित्त।

* 'कौन कब क्या करेगा?' ऐसी शंका से सोचता है - सभी का यथाशक्ति मारना ही ठीक है।

* शब्दादि विषय के साधन रूप धन के संरक्षण में रौद्रध्यान कहा है, चैत्य के धन की रक्षा में रौद्रध्यान नहीं है।

अव. रौद्रध्यान का उपसंहार –

गा.23 करण-करावण-अनुमति से चार भेदों वाला सतत ऐसा चिंतन, अशुभ,

Notes Date :

अविरत- देशविरत के मन द्वारा सेवित यह रौद्रध्यान है।
* अविरत- देशविरत कहने से सर्वविरत का व्यवच्छेद कहा।
* अधन्य- निंद्य।
* मन शब्द का ग्रहण 'ध्यान में मन प्रधान अंग है' यह बताने के लिए।

अव. यह कैसे जीव को होता है और इसका फल-
गा. 24 राग-द्वेष-मोह से आकुल जीव को यह रौद्र ध्यान होता है। यह रौद्र-ध्यान नरकगति का मूल संसार बढ़ाने वाला है।

अव. रौद्रध्यानी की लेश्या-
गा. 25 रौद्रध्यान से युक्त जीव को कर्मपरिणाम से जनित, तीव्र संक्लिष्ट कृष्ण-नील-कापोत लेश्याएँ होती हैं।

अव. रौद्रध्यायी के लक्षण-
गा. 26 हिंसादि में वाह्यकरण में उपयुक्त जीव को उत्सन्न-बहुल-नानाविध-आमरण दोष है।
* उत्सन्न दोष= हिंसादि 4 में से किसी एक में सतत बहुलता से प्रवर्तना।
* बहुल दोष= चारों में बहुलता से प्रवर्तना।
नानाविध दोष = चमड़ी छीलना, आँखफोड़ना वि. बहुत प्रकार के हिंसा उपायों में बार-बार प्रवर्तन।
आमरण दोष = स्वयं या पर की बड़ी आपत्ति देखकर भी हिंसादि पापों में कालसौरिक कसाई की तरह पश्चात्ताप न हो बल्कि हिंसादि कार्य असमाप्त होने का पश्चात्ताप करे।

* वाह्यकरण शब्द से वचन-काय का ग्रहण।

गा. 27 रौद्रध्यान से युक्त चित्त वाला दूसरे को आपत्ति आने पर खुश होता है।

निरपेक्ष, निर्दय, निरनुताप जीव पाप करके खुश होता है।
* दूसरे को संकट आने पर खुश होता है - "अच्छा हुआ, इसे ऐसा हुआ"।
* निरपेक्ष = इह-परभव के अपाय से निरपेक्ष।
निर्दय = दूसरे की अनुकंपा रहित।
निरनुताप = पश्चात्ताप रहित।

अब. रौद्रध्यान कहा गया। ~~धर्म~~ धर्मध्यान कहने के लिए द्वार गा. —
गा. 28 ध्यान की I. भावनाएँ, II. देश, III. काल, IV. आसनविशेष, V. आलंबन, क्रम जानकर
गा. 29 VI. ध्येय का ध्यान करना चाहिए। VII. ध्याता, VIII. अनुप्रेक्षाएँ, IX. लेश्या, X. लिंग,
(द्वारगा.) और फल जानकर अभ्यास किए हुए मुनि को धर्मध्यान करना चाहिए। फिर शुक्ल ध्यान करे।

अब. I. धर्मध्यान की भावनाएँ —
गा. 30 पूर्व में अभ्यास किए हुए मुनि भावनाओं से ध्यान की योग्यता को
(अतिदेश गा.) प्राप्त करते हैं। वे 1. ज्ञान - 2. दर्शन - 3. चारित्र - 4. वैराग्य से उत्पन्न भावनाएँ हैं।

अब. 1 ज्ञान भावना का स्वरूप —
गा. 31 ज्ञान में नित्य अभ्यास वाले मुनि मन की धारणा और विशुद्धि करे।
फिर ज्ञान से गुणों का सार जानने वाले मुनि निश्चल मन से ध्यान करे।
* ज्ञान यानि श्रुतज्ञान में नित्य अभ्यास वाले मुनि मन की धारणा, विशुद्धि और संसार से निर्वेद (च शब्द से) करे।
मनधारणा = अशुभव्यापार के निरोध पूर्वक शुभव्यापार में अवस्थान।
विशुद्धि = सूत्र-अर्थ की शुद्धि।
अब निर्वेद = वैराग्य।

* गुण = जीवाजीवादि में रहे गुणों को सार ज्ञान से जानकर, श्रद्धा कर,

Notes Date :

अतिशय निश्चल-निष्कंप बुद्धि से ध्यान करे

अव. 1. ज्ञान भावना कही। 2. दर्शन भावना (पुतिहारगा. 30 pg. 58) —

गा. 32 शंकादि दोष से रहित, प्रशमस्थैर्यादिगुणगण से युक्त मुनि ध्यान में दर्शनशुद्धि से असंमूढमन वाला होता है।

★ शंकादि = 'शङ्काकाङ्क्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरति-चाराः' (तत्त्वार्थ 7-18) । इनका स्वरूप प्रत्याख्यान अध्ययन में कहेंगे।

★ प्रशम = प्रकृष्ट श्रम, खेद। यह यहाँ स्व-पर समय के तत्त्वज्ञान रूप लेना।

सपरसमयकोसल्लं थिरया जिणसासणे पभावणया।
आययणसेव भत्ती दंसणदीवा गुणा पंच॥

दर्शन को दीप्त करने वाले, शोभाने वाले 5 गुण हैं- स्वपरसमयकौशल्य, स्थिरता, प्रभावना, आयतन सेवा, भक्ति। स्थिरता जिनशासन में, प्रभावना शासन की, आयतन सेवा यानि स्थ रक्षा, भक्ति देव-गुरु की जानना।

★ दोषरहित और गुण युक्त जीव ही दर्शनशुद्धि से ध्यान में असंमूढमन वाला अर्थात् अन्य तत्त्वों में चित्त नहीं भटकने वाला होता है।

अव. 2. दर्शन भावना कही। 3. चारित्र भावना -

गा. 33 चारित्र भावना से जीव प्रयत्न बिना ही नए कर्म ग्रहण नहीं करता, पुराने कर्म की निर्जरा करता है, पुण्य उपार्जन करता है और ध्यान को प्राप्त करता है।

अव. 4. वैराग्य भावना —

गा. 34 जगत् के स्वभाव को जानने वाला, निःसंग, निर्भय, निराश और वैराग्य से भावित मन वाला ध्यान में सुनिश्चल होता है।

★ जन्म मरणाय नियतं बन्धुर्दुःखाय धनमनिर्वृत्तये।
तन्नास्ति यन्न विपदे तथापि लोको निरालोकः॥

जन्म, मरण के लिए है, स्वजन दुःख के लिए, धन अशांति के लिए है। जगत् में वह कोई वस्तु नहीं है जो विपत्ति के लिए न हो। तो भी लोग विपत्ति को देखते नहीं हैं।
ऐसा जगत् का स्वभाव है।

★ ऐसे जगत्स्वभाव को जानने वाला भी कभी कर्मवश से ससंग होता है अतः कहा 'निःसंग' विषय से उत्पन्न ~~संग~~ स्नेह के संग से रहित।

★ ऐसा जीव भी कभी भयभीत होता है अतः कहा 'निर्भय' = भय से रहित।

★ ऐसा जीव भी कभी विशिष्ट परिणति के अभाव से परलोक में आशंसा वाला होता है अतः उसके व्यवच्छेद के लिए कहा- 'निराश' इह-परलोक की आशा से रहित।

★ ऐसा जीव अज्ञानादि रूप उपद्रव से रहित होने से ध्यान में निश्चल होता है।

अव. वैराग्य भावना कही। प्रतिद्वार गा. 30 (पृ. 58) पूर्ण। I. भावना द्वार पूर्ण (देखें द्वार गा. 28 Pg 57)। II. देश द्वार-

गा. 35 यति का स्थान हमेशा ही युवति-पशु-नपुंसक-कुशील से रहित विजन कहा गया है। ध्यान काल में विशेष से विजन कहा है।

★ साधु का स्थान हमेशा ही निर्जन स्थान तीर्थंकर-गणधरों द्वारा कहा गया है। अर्थात् साधु को हमेशा निर्जन स्थान में रहना चाहिए।

★ निर्जन स्थान भी विशेष युवति-पशु-नपुंसक-कुशील से रहित होना चाहिए।

युवति = मनुष्य स्त्री और देवी। पशु = तिर्यंच स्त्री।

कुशील = जूइयरसोलमेंठा वट्टा उब्भामगादिणो जे य।
एए होंति कुसीला वज्जेयव्वा पयत्तेणं॥

द्यूतकार, कुलाल (शराब का व्यापारी), महावत, बदमाश (चट्ट), परस्त्रीलंपट जार पुरुष (उद्भ्रामक) आदि कुशील होते हैं। इनका प्रयत्न पूर्वक वर्जन करना चाहिए। (अथवा सोल = स्थानपाल टीप्पणक)

Notes Date:

★ साधु का स्थान हमेशा ऐसा निर्जन होना चाहिए तो ध्यान काल में तो विशेष से निर्जन होना चाहिए क्योंकि अपरिणत ज्ञानादिभावना रूप योग वाले साधु द्वारा अन्यत्र (जन सहित स्थान में) ध्यान की आराधना करना अशक्य है।

अव. अपरिणतयोगादि वाले साधु का स्थान कहा। अब परिणतयोगादि वाले साधु का विशेष कहते हैं –

गा. 36 स्थिर किए हुए योग वाले ~~मुनि~~ और ध्यान में निश्चल मन वाले मुनि को जनाकीर्ण गाँव में, शून्य में या अरण्य में कोई अंतर नहीं है।

★ स्थिर = संघयण-धृति से बलवान् ऐसे मुनि।

कृतयोग = अभ्यस्त किए हैं योग जिन्होंने ऐसे मुनि।

यहाँ चतुर्भंगी

	स्थिर	कृतयोगी
1.	✓	x
2.	x	✓
3.	✓	✓
4.	x	x

तीसरे भांगे वाले मुनि यहाँ लेना।

अथवा

स्थिर = बार-बार करने से परिचित किए हैं योग जिन्होंने ऐसे मुनि।

★ ग्रसति बुद्ध्यादिगुणान् इति ग्रामः = बुद्धि वि. गुणों को खाने वाला।
करादीनां गम्यः इति ग्रामः = जहाँ कर – Tax वि. लेते हों।

गा. 37 मन-वचन-काय योगों का जहाँ समाधान हो जाए, वह ध्यान करते हुए का भूतोपरोध रहित देश है।

★ प्र. मनोयोग का समाधान हो, वचन-काययोग के समाधान की क्या जरूर?
उ. इनका समाधान मनोयोग के समाधान में उपकारक है। तथा वचन-

काय योग के समाधान भी ध्यान होते ही हैं क्योंकि कहा गया है -

एवंविहा गिरा मे वत्तव्वा एरिसी न वत्तव्वा।
इय वेयालियवक्कस्स भासओ वाइगं झाणं ॥
सुसमाहियकरपायस्स अकज्जे कारणंमि जयणाए।
किरियाकरणं जं तं काइयझाणं भवे जइणो ॥

* यहाँ मात्र समाधान नहीं लेना किंतु पृथ्व्यादि के संघट्ट वि. से और मृषावाद-अदत्तादान-मैथुन-परिग्रहादि उपरोध से रहित देश होना चाहिए।

अव. II. देश द्वार कहा (द्वार गा. 28 Pg 57) । III. काल द्वार -

गा. 38 काल भी वही है, जिसमें जोग का समाधान उत्तम हो। ध्यानी को दिन-रात वेलादि का नियमन नहीं कहा है।

अव. III. काल द्वार पूर्ण। IV. आसन विशेष द्वार -

गा. 39 जो देहावस्था जीती हुई है, जो ध्यान में उपरोध करने वाली नहीं है उस अवस्था में ध्यान करना चाहिए। वह अवस्था चाहे खड़े-खड़े हो, बैठे हो या सोए हो।

अव. प्र. यह देश-काल-आसन को नियम क्यों नहीं है? उ.-

गा. 40 क्योंकि सभी देश-काल-अवस्था में रहे, शांतपाप वाले मुनि श्रेष्ठ केवलादि के लाभ को अनेक बार प्राप्त हुए।

* केवलादि में ~~केवल~~ आदि शब्द से मनःपर्यायज्ञान वि. लेना।

गा. 41 इसलिए शास्त्र में ध्यान के देश-काल-अवस्था का नियम नहीं है। जैसे योगों का समाधान हो, वैसे प्रयत्न करना चाहिए।

अव. IV. आसन द्वार पूर्ण। V. आलंबन द्वार (गा. 28 Pg. 57) -

* देखें टीप्पणक Pg.66 Last

Notes Date:

गा.५२ वाचना-पृच्छना-परिवर्तना-अनुचिंता और सामायिकादि सद्धर्मविषयक ही आलंबन हैं।

★ वाचनादि श्रुतधर्म के आलंबन हैं। सामायिकादि चारित्रधर्म के आलंबन हैं।

★ सामायिकादि में आदि शब्द से मुहपत्ति पडिलेहन वि. चक्रवालसामाचारी वि.।

अव. इनके आलंबन होने का कारण—

गा.५३ जैसे दृढ़ द्रव्यालंबन वाला पुरुष विषम स्थान में भी चढ़ जाता है, वैसे सूत्रादि को आलंबन बनाने वाला धर्मध्यान में चढ़ सकता है।

★ मजबूत रस्सी वि. द्रव्यालंबन वाला पुरुष विषम-दुःसंचर स्थान में भी चढ़ सकता है।

अव. आलंबन द्वार पूर्ण। VI. क्रम द्वार (द्वार गा. 28 Pg 57) — यहाँ लाघव के लिए धर्म और शुक्ल ध्यान का क्रम एकसाथ बताते हैं—

गा.५४ केवली को भवकाल में मनोयोग का निग्रहादि ध्यानप्राप्ति का क्रम है। शेष जीवों को समाधि अनुसार ध्यान प्राप्त होता है।

★ भवकाल से निर्वाण के निकट का अंतर्मुहूर्त जितना ही काल, जो शैलेशी अवस्था में होता है, वह जानना।

यह क्रम शुक्लध्यान में ही होता है।

★ शेष जीव यानि धर्मध्यान को स्वीकारने वाले।

अव. VI. क्रम द्वार पूर्ण। VII. ध्येय या ध्यातव्य कहते हैं। ध्येय ४ प्र. — 'आज्ञाऽपाय-

** विपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम्' (त. 9-37)। प्रथम भेद—

गा.४५ सुनिपुण, अनादिनिधन, जीव को हितकर, भूतभावना रूप, अनर्घ, अमित, अजित, महार्थ, महानुभाव, महाविषय (वाली आज्ञा का ध्यान करो)।

★ प्र. भ. की आज्ञा निपुण, कुशल क्यों है?

उ. सूक्ष्मद्रव्यादि की उपदर्शक होने से और मत्यादिज्ञान की प्रतिपादक होने

से – सुपणाणंमि नेउण्णं केवले तयणंतरं।
अप्पणो सेसगाणं च जम्हा तं परिभावगं॥
केवलज्ञान की अपेक्षा श्रुतज्ञान में निपुणता अधिक है क्योंकि वह स्वयं का और शेष ज्ञानों का भी प्रतिपादक है।

* ~~द्रव्यादि~~ द्रव्यास्तिक नय की अपेक्षा द्वादशांगी अनादि-निधन यानि शाश्वत है।

* जीव को हितकर 1. 'सभी जीव मारने नहीं चाहिए' वि. से सभी जीवों को पीड़ा करने वाली न होने से।
2. इस आज्ञा पालन से जीव सिद्ध हुए अतः हितकारी।

* भूतभावना = सत्य का स्वरूप बताने वाली, अनेकांत परिच्छेदात्मक।

* अनर्घ्य = सर्वोत्तम होने से अमूल्य।
सव्वेवि य सिद्धंता सदव्वरयणासया सतेलोक्का।
जिणवयणस्स भगवओ न मुल्लमित्तं अणग्घेणं॥
तीन लोक और सभी द्रव्य रत्नाकर सहित सभी सिद्धांत (इतर शास्त्र, दर्शन) अनर्घ्य होने से भगवत् जिनवचन का मूल्य नहीं माप सकते।

कल्पद्रुमः कल्पितमात्रदायी चिन्तामणिश्चिन्तितमेव दत्ते।
जिनेन्द्रधर्मातिशयं विचिन्त्य द्वये हि लोको लघुतामवैति॥
कल्पवृक्षः विचारी हुई वस्तु देता है। चिन्तामणि भी विचारी हुई वस्तु को देता है। लोक जिनेंद्रधर्म के अतिशय को सोचकर इन दोनों में लघुता को देखता है। (क्योंकि जिन धर्म अचिंत्य भी देता है)

अथवा 'ऋणघ्न' पर्याय = कर्म को हनने वाली।

Notes Date :

* अमित = अपरिमित

सव्वनईणं जा होज्ज वालुया सव्वउदहीण जं उदयं।
एत्तोवि अणंतगुणो अत्थो एगस्स सुत्तस्स॥

अथवा 'अमृत' जैसी प्रीठी –

जिणवयणमोदगस्स उ रत्तिं च दिवा य खज्जमाणस्स।
तित्तिं बुहो न गच्छइ हेउसहस्सोवगूढस्स॥

हजारों युक्ति से युक्त जिनवचन रूपी मोदक को रात-दिन खाता हुआ भी पंडितपुरुष तृप्ति प्राप्त नहीं करता (क्योंकि रोजें नई युक्ति मिलती है)

नरनरयतिरियसुरगणसंसारियसव्वदुक्खरोगाणं।
जिणवयणमेगमोसहमपवग्गसुहक्खयं फत्थयं॥

नर, नरक, तिर्यंच, देवों के समूह के सभी संसारी दुःख-रोगों का एक मात्र औषध मोक्षसुख रूप अक्षत फल देने वाला जिनवचन है।

अथवा 'अमृता' यानि नहीं मरी हुई अर्थात् उपपत्ति-युक्त होने से सजीव।

* अजित= शेष दर्शन-शास्त्र की आज्ञाओं से अपराजित।

* प्रहार्य = पूर्वापर अविरोधि होने से, अनुयोगद्वारात्मक होने से, नयगर्भित होने से।

अथवा

'महत्या' = सम्यग्दृष्टि, भव्य जीव जैसे महान् व्यक्तियों में रहने से।

अथवा

'महास्था' = महा यानि पूजा, पूजा में रही हुई अर्थात् पूजनीय।

* महानुभाव = महान् सामर्थ्यादि प्रभाव वाली। महान् के 2 अर्थ
प्रधान प्रभाव वाली, प्रभूत (बहुत) प्रभाव वाली।
14पूर्वी सर्वलब्धि संपन्न होने से यह आज्ञा प्रधान है। तथा 14पूर्वी इसके प्रभाव से बहुत कार्य करने में समर्थ है e.g. 'पभू णं चोद्दसपुव्वी घडाओ घडसहस्सं करित्तए' 14पूर्वी 1घड़े से 1000 घड़े करने के लिए समर्थ है।
यह इहलोक में प्रभाव है। परलोक में-
उववाओ लंतगंमि चोद्दसपुव्वीस्स होइ उ जहण्णो।
उक्कोसो सव्वट्ठे सिद्धिगमो वा अकम्मस्स॥
14पूर्वी का जघन्य उपपात लांतक (6ठे) स्व विमान में, उत्कृष्ट से सर्वार्थसिद्ध में या कर्मरहित का सिद्धि में गमन होता है।

* महाविषय = सकलद्रव्यादि इसके विषय होने से।

गा.46 जगत् के प्रदीप समान जिनेश्वरों की ~~आज्ञा~~ अनिपुणजन को दुर्ज्ञेय और नय-भंग-प्रमाण-गम से गहन ऐसी निरवद्य आज्ञा का ध्यान करे।
* निरवद्य आज्ञा = 32 दोष से रहित (भाग 3 गा. 881 पृ)
अथवा
'निरवद्य' क्रिया विशेषण = इहलोक-परलोकादि की आशंसा रहित ध्यान करे।
* केवलज्ञान से संपूर्ण संशय रूप अंधकार का नाश करने से जगत् के प्रदीप।
* नय - नैगमादि।
भंग - 29. क्रमभंग - जीव अजीव
एक ~~अनेक~~ एक
एक अनेक
अनेक एक
अनेक अनेक

स्थानभंग -

Notes Date :

प्रियधर्म	दृढधर्म
✓	×
×	✓
✓	✓
×	×

प्रमाण - द्रव्यादि प्रमाण अनुयोग द्वार में।
गम - ~~इस~~ २४ दंडकादि अथवा थोड़े ही अलग ऐसे एक जैसे आलावे eg. षड्जीवनिकाय आदि में।

अव. जो आज्ञा ऐसी विशिष्ट है, वह तो जानने के लिए भी शक्य नहीं है, ध्यान तो दूर। तो क्या करे -

गा.४७ मति की दुर्बलता से, वैसे आचार्य के विरह से, ज्ञेय की गहनता से, ज्ञाना-
गा.४८ वरणीयोदय से, हेतु-उदाहरण असंभव होने से जो आज्ञा (जिनवचन) न समझाए तो भी मतिमान् सर्वज्ञ का मत अवितथ है, ऐसा विचारे।

* प्र. ज्ञानावरणोदय से ही मतिदौर्बल्य, ज्ञेय की गहनता लगना वि. होता है। तो ये सब कहना योग्य नहीं है।

उ. ज्ञानावरण के कार्य को ही संक्षेप-विस्तार से, उपाधि के भेद से कहा जाता है।

* हिनोति-गमयति जिज्ञासितधर्मविशिष्टान् अर्थान् इति हेतुः

अव. ऐसा क्यों विचारे?
गा.४९ अनुपकृत ऐसे और परानुग्रह में परायण, जगत्प्रवर, ~~जित~~ रागद्वेषमोह को जीते हुए जिन अन्यथावादी नहीं होते

~~अव. ध्यातव्य~~

टीप्पणक विचय यानि परिचय, अभ्यास क्योंकि आगे कहेंगे कि आज्ञादि के अभ्यास

की प्रवृत्ति करते हुए को धर्मध्यान होता है।

हरिभद्रीय वृत्ति

अव. ध्यातव्य का प्रथम भेद कहा गया। द्वितीय भेद – (देखें Pg 62 last अव.)

गा. 50 वर्ज्यका परिवर्जी जीव राग-द्वेष-कषाय-आश्रवादि क्रियाओं में वर्तमान जीवों के इह-परलोक में अपायों को ध्यान करे।

★ वर्ज्य = रागादि छोड़ने योग्य वस्तु।
उसका परिवर्जन करने वाला अप्रमत्त जीव।

अव. तृतीय भेद –

गा. 51 प्रकृति-स्थिति-प्रदेश-रस से भिन्न, शुभ-अशुभ में विभक्त, योग के प्रभाव से उत्पन्न कर्मविपाक को विचार।

★ प्रकृति से भिन्न यानि 8 भेद ... असंख्य भेद वि.।

★ स्थिति से भिन्न यानि 8 प्रकृतियाँ वि. की जघन्य-मध्यम-उत्कृष्ट काल-अवस्था।

★ प्रदेश भिन्न – आत्मा के असंख्य आत्मप्रदेश पर अनंत कर्म लगे हैं किंतु यहाँ असत् कल्पना से आत्मप्रदेश 256 माने तो हर प्रदेश पर $(256)^3 = 16777216$ कर्म प्रदेश लगे हैं वि. (स्पष्टता टीप्पणक में)

★ अथवा
पृष्ट-अवगाढ-अनंतर-अणुबादर-ऊर्ध्वादि भेद से भिन्न ऐसे एकक्षेत्र में अवगाढ सूक्ष्म कर्म अणुओं से बद्ध आत्मप्रदेशों का कर्म विपाक विचारे।

★ रस भिन्न – यानि पृष्ट-बद्ध-निकाचित प्रकृति के उदय का अनुभव।

टीप्पणक →

'कृत्वा पूर्वविधानं पदयोस्तावेव पूर्ववद् कार्यौ।
वर्गघनौ कुर्यात्तां तृतीयराशेस्ततः प्राग्वत्॥' (हरिभद्रीय वृत्ति)

पूर्वमहर्षि के वचन होने से यह गंभीर हमारे जैसे को अगम्य है। आम्नाय के अनुसार गमनिका मात्र कहते हैं –

यहां प्रदेश से भिन्न कर्मविपाक विचारना। प्रदेश यानि जीव के कर्माणु।

Notes Date :

कितने कर्माणु से एकैक जीवप्रदेश बंधा है, वह विचारना है। यह प्रदेशबंध कम्मपयडी वि. में विस्तार से कहा है इसलिए वृत्तिकार ने 'शुभाशुभ यावत्' शब्द लिखा। यहाँ संक्षेप से कहते हैं:-

असंख्य प्रदेश वाले जीव के असत्‌कल्पना से 256 प्रदेश मानो। इस राशि का घन करने पर जो फल आए उतने कर्मप्रदेशों से ये जीव प्रदेश बंधे हुए हैं; मात्र बहुत्व दिखाने के लिए यह है।

$(256)^3$ करने के लिए यह करणगाथा है - कृत्वापूर्वविधानं इत्यादि।

इस कारिका का अर्थ -

स्थाप्योऽन्तघनोऽन्त्यकृतिः स्थानाधिक्यं त्रिपूर्वगुणिता च।
आद्यकृतिरन्त्यगुणिता त्रिगुणा च घनस्तथाऽऽद्यस्य॥

256 संख्या में 6 आद्य (पूर्व की संख्या) और 2 अन्त्य है। घन = Cube, कृति = Square।

→ अन्त्यघनः स्थाप्यः ⇒ $2^3 = 8$ स्थाप्य यानि लिखना।

→ अन्त्यकृतिः त्रिपूर्वगुणिता च स्थानाधिक्यं स्थाप्या ⇒ $2^2 \times 3 \times 5 = 60$

2 का square कर 3 और पूर्व संख्या (5) से गुणा कर स्थान की अधिकता पूर्वक स्थापन करना।

स्थान की अधिकता यानि पहले की 8 संख्या One's में थी, उसे Tens की सहित संख्या में 60 के साथ लिखना।

स्थापना -
8
60

→ आद्यकृतिः अन्त्यगुणिता त्रिगुणा च स्थानाधिक्यं स्थाप्या ⇒

अंत्य 2, उसकी अपेक्षा आद्य 5, $(5)^2 \times 2$ (अंत्य) $\times 3 = 150$

स्थापना -
8
60
150

→ घनस्तथाऽऽद्यस्य स्थानाधिक्येन स्थाप्यते - $(5)^3 = 125$

स्थापना
8
60
150
125

Addition ⇒ ~~8525~~ ~~64~~ 4

इतने विस्तार से 'कृत्वा पूर्वविधानं पदयोः' इसकी व्याख्या हुई।

→ अब 'स्थाप्योऽन्तघनो' इत्यादि करणकारिका पुनः ~~आवृत्त~~ Repeat करते हैं।
उसमें 'निर्युक्ते राशिरन्त्यम्' इस वचन से अब अन्त्य संख्या 25। उसका घन मिला हुआ ही है अतः 'अन्तघन' छोड़कर अन्त्यकृति... करते हैं।

→ ~~अन्त्यकृतिः त्रिपूर्वगुणिता च स्थानाधिक्यं स्थाप्या~~ ⇒ ~~(25)² × 3×6 (पूर्व)~~

~~= 11250~~ ~~स्थापना~~ – ~~8525~~
~~6+~~
+
~~11250~~

इसके आगे Pg. No. 134 में last पर पारिस्थापनिका निर्युक्ति के बाद देखें।

→ 256 में से 2-2 संख्या लेकर उपर्युक्त कारिका लगाना है। पहली बार में अन्त्य = 2, आद्य = 5। दूसरी बार में अन्त्य = 25, आद्य = 6।

→ स्थानाधिक्य – संख्या की digit बढ़ाना –

$\frac{1}{8} \Rightarrow \frac{1}{8}\ 6 \mid \frac{2}{0} \Rightarrow \frac{1}{8}\ 1 \mid \frac{2}{0}\ 5 \mid \frac{3}{0}$

$\Rightarrow \frac{1}{8}\ 6\ 1 \mid \frac{2}{\ }\ 0\ 5\ 1 \mid \frac{3}{\ }\ 0\ 2 \mid \frac{4}{\ }\ 5$

Notes Date:

हरिभद्रीय

वृत्ति अव. व्याल्त्य का तृतीय भेद कहा गया। चौथा भेद — (देखें Pg62 last अव.)

गा. 52 जिनेश्वर कथित द्रव्यों के लक्षणसंस्थान आसन विधान मान और उत्पाद-भंग-स्थिति आदि पर्याय विचारे।

* लक्षण - गतिसहायकादि धर्मादि द्रव्यों के।
संस्थान - पुद्गलरचना का आकार परिमंडलादि।
जीव के समचतुरस्रादि।
धर्म-अधर्म का आकार लोकाकाश की अपेक्षा से।
काल का आकार मनुष्यक्षेत्र जैसा।
आसन - यानि आधार। धर्मादि द्रव्यों का आधार लोकाकाश अथवा स्वस्वरूप।
विधान - यानि भेद। ~~ब~~ द्रव्य-देश-प्रदेश वि.।
मान - प्रमाण। धर्मादि द्रव्यों के प्रमाण।
* उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य → घटमौलीसुवर्णार्थी नाशोत्पत्तिस्थितिष्वयम्।
शोकप्रमादमाध्यस्थं जनो याति सहेतुकम्॥

गा. 53 जिनकथित, अनादिनिधन, पंचास्तिकायमय और नामादिभेद से विहित लोक अधोलोकादि 3प्र. का है।

* लोक पंच अस्तिकायमय है।
* काल से अनादि-अपर्यवसित है। इस पद से ईश्वरादिकृत लोक का व्यवच्छेद कहा।
* ऐसा लोक भी अलग-अलग दर्शन में विचित्र (अनेक प्रकार का) है। इसलिए कहा 'जिनकथित'।
* प्र. गा. 52 में ~~जिना~~ 'जिनदेशित' पद से जिनकथित का अधिकार चालू ही है तो यहाँ यह पद अतिरिक्त है।

उ. नहीं क्योंकि यह आदर बताने के लिए कहा है और आदर में पुनरुक्त दोष नहीं होता।

अनुवादादरवीप्साभृशार्थविनियोगहेत्वसूयासु ।
ईषत्सम्भ्रमविस्मयगणनास्मरणेष्वपुनरुक्तम् ॥

1. अनुवाद - 'बड़े भाई को ज्येष्ठ कहते हैं' यहाँ बड़े भाई और ज्येष्ठ एक ही होने पर भी पुनरुक्त नहीं है।
2. आदर - 'गुरुदेव ऐसा कहते थे, गुरुदेव ऐसा कहते थे' ऐसे बार-बार गुरुदेव शब्द आने पर भी पुनरुक्त नहीं है।
3. वीप्सा - 'दाने-दाने पर लिखा है, खाने वाले का नाम' यहाँ दाने-दाने से 'प्रत्येक दाने पर' अर्थ होने से वीप्सा।
4. भृशार्थ - 'तू क्रोधी है क्रोधी' बहुत क्रोध बताने के अर्थ में।
5. विनियोग - सामने वाले को सिखाने के लिए एक ही वाक्य बार-बार बोले।
6. हेतु - किसी बात को मगज में ठसाने के लिए हेतु बार-बार कहे eg. 'बहुत खाएगा तो शरीर बिगड़ेगा, देख फिर से कहता हूँ, बहुत खाएगा तो शरीर बिगड़ेगा'।
7. असूया - ईर्ष्या से कोई बार-बार एक ही बात कहे।
8. ईषत् -
9. संभ्रम - जल्दी में बार-बार बोलना eg. जल्दी जल्दी कर।
10. आश्चर्य - eg. अद्भुत! अद्भुत!
11. गणना - 25-25 की थप्पी करना हो तो गिनने में 1, 2, 3, 4 वि. पुनरुक्त नहीं।
12. स्मरण - 'ये वही है, वही है' रूप।

* नामादि भेद से रह हुआ/कहा हुआ। (लोक के निक्षेप देखें भाग 4 गा. 1069 Pg.15)

* क्षेत्र लोक से यह लोक अधो वि. उ9. का है।

गा. 54 आकाशादि में रहे पृथ्वी, वलय, द्वीप, सागर, नरक, विमान, भवनादि संस्थान शाश्वत लोकस्थिति के विधान विचारें।

* पृथ्वी = घर्मा से लेकर ईषत्प्राग्भार तक 8।

Notes Date :

वलय = घनोदधि-घनवात-तनुवात रूप 3 वलय × 7 पृथ्वी = 21 वलय।
द्वीप = जंबूद्वीप से लेकर स्वयंभूरमण द्वीप तक असंख्य।
सागर = लवण समुद्र " " समुद्र " " ।
नरक = सीमंतक से लेकर अप्रतिष्ठान तक संख्येय (84 लाख)।
विमान = ज्योतिष से सर्वार्थसिद्ध तक असंख्य (ज्योतिष विमान असंख्य होनेसे)।
भवन = असुरादि 10 निकाय के भवनवासी देवों के भी वलय संख्येय (7 करोड़ 72 लाख)
व्यंतर के नगर = रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रथम 1000 यो. में ऊपर-नीचे 100 यो. छोड़कर मध्य के 800 यो. में व्यंतरों के असंख्य नगर हैं।

गा. 55 जीव उपयोगलक्षण वाला, अनादिनिधन, शरीर से भिन्न, अरूपी और स्वयं के कर्म का कर्ता भोक्ता है। (ऐसे जीव को विचारे)

गा. 56 इस जीव के स्वकर्म से उत्पन्न, जन्मादि रूप जल वाला, कषाय रूप पाताल वाला, सैकड़ों संकट रूप जंगली पशु वाला, मोहावर्त वाला, महाभयानक संसार रूप समुद्र को विचारे।

* जन्म-जरा-मरण बहुत होने से वे ही संसार में जल रूप हैं।
कषाय संसार को उत्पन्न करने से पाताल रूप हैं।
व्यसन यानि द्यूतादि अथवा संकट पीड़ा के हेतु होने से जंगली पशु रूप हैं।
मोहनीय कर्म जीव को विशिष्ट भ्रम उत्पन्न करने से आवर्त रूप है।

गा. 57 अज्ञान रूपी हवा से प्रेरित संयोग-वियोग रूपी तरंगों की परंपरा वाले, अनोरपार, अशुभ संसार सागर को विचारे।

* अज्ञान संयोग-वियोग का प्रेरक होने से हवा समान है।
अनोरपार = अनादि-अपर्यवसित।

गा. 58 इसे तैरने में समर्थ सम्यग्दर्शनरूप बंधन वाले, ज्ञानमय निर्यामक वाले, पापरहित चारित्र रूप महापोत को विचारे।

गा. 59 संवर से छिद्ररहित किया हुआ, तप रूप हवा से प्रेरित और शीघ्रतर वेग वाले,

वैराग्य मार्ग में रहे हुए और दुर्ध्यान रूप तरंग से क्षोभ नहीं पाने वाले चारित्र पोत को विचारे।

गा. 60 मुनिरूपी वणिक् महामूल्यवान् शीलांग रत्न से भरे हुए उस पोत पर चढ़कर शीघ्रता से विघ्न बिना निर्वाणपुर को प्राप्त करते हैं।

★ शीलांग ऐकान्तिक और आत्यंतिक सुख का हेतु होने से रत्न।

गा. 61 वहाँ त्रिरत्न के विनियोग मय, एकांतिक, निराबाध, स्वाभाविक, निरुपम, अक्षत सुख को जैसे प्राप्त करते हैं, वैसे विचारे।

गा. 62 बहुत कहने से क्या? जीवादिपदार्थ के विस्तार से युक्त, सर्वनय के समूह मय समय के सभी सद्भाव को विचारे।

★ समय का सद्भाव = सिद्धांत का अर्थ।

अव. ध्यातव्य द्वार पूर्ण (देखें द्वार गा. 28 Pg 57 अव. last Pg. 62) | VIII. ध्याता द्वार -

गा. 63 क्षीणमोह और उपशांतमोह वाले, ज्ञान रूपी धन वाले, सर्वप्रमाद से रहित मुनि धर्मध्यान के ध्याता कहे गए हैं।

अव. धर्मध्यान के ध्याता कहे गए। अब लाघव के लिए शुक्लध्यान के ध्याता भी यहाँ ही कहते हैं -

गा. 64 शुक्लध्यान के प्रथम दो भेद के ध्याता सुप्रशस्त संघयण वाले, पूर्वधर ये ही (अप्रमत्त मुनि वि.) होते हैं। अंतिम दो भेद के ध्याता सयोगी-अयोगी केवली होते हैं।

★ धर्मध्यान के 3 ध्याता कहे - 1. अप्रमत्त मुनि 2. क्षीणमोह (क्षपकश्रेणी में आरूढ) 3. उपशांत मोह (उपशामक निर्ग्रंथ)।

★ शुक्लध्यान के प्रथम दो भेद के ध्याता भी ऐसे ही मुनि किंतु प्रथम संघयण वाले और 14 पूर्वी होते हैं।

इनमें 'प्रथम संघयण वाले' विशेषण सामान्य से है अर्थात् सभी शुक्लध्यान के सभी ध्याता प्रथम संघयण वाले होते हैं।

Notes Date :

'पूर्वधर' विशेषण अप्रमत्त मुनि का जानना, निर्ग्रंथों (क्षपक-उपशामक निर्ग्रंथ) का नहीं। क्योंकि माषतुष-मरुदेवी आदि अपूर्वधरों को भी इस शुक्लध्यान की प्राप्ति हुई है। अर्थात् अप्रमत्त मुनि १४पूर्वी हो तो ही शुक्ल ध्यान कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। किंतु क्षपक या उपशामक (८वें या उससे ऊपर के गुणस्थान में) १४पूर्वी हो या न हो, वे शुक्लध्यान कर सकते हैं।

अव. VIII. ध्याता द्वार पूर्ण। IX. अनुप्रेक्षा द्वार (गा. 29 से 57) –

गा. 65 पहले धर्मध्यान से सुभावित चित्त वाले मुनि ध्यान अटकने पर भी ~~चित्त~~ हमेशा अनित्यादि भावना में तत्पर हो।

* इन भावनाओं का फल – सचित्तादि द्रव्यों में राग-आसक्ति रहितता और संसार से वैराग्य (निर्वेद)।

अव. X. लेश्या द्वार –

गा. 66 धर्मध्यान को प्राप्त मुनि को तीव्र-मंदादि भेद वाली, क्रमशः विशुद्ध ऐसी पीत-पद्म-शुक्ल लेश्या होती है।

अव. XI. लिंग द्वार –

गा. 67 आगम से, उपदेश से, आज्ञा से या निसर्ग से जिनप्रणीत भावों की श्रद्धा धर्मध्यान का लिंग है।

* आगम से = सूत्रादि पढ़कर श्रद्धा हो।
  उपदेश से = सूत्रानुसार देशना से।
  आज्ञा से = आज्ञाप्यन्ते इति आज्ञा, जो जीवादि पदार्थ की सचोट व्यवस्था जानकर श्रद्धा हो।
  निसर्ग से = स्वाभाविक।

गा. 68 जिन और साधुओं के गुण-कीर्तन-प्रशंसा-विनय-दान से युक्त और श्रुत-शील-संयम में रत को धर्मध्यानी जानना।

* कीर्तन = सामान्य से गुण कहना।
प्रशंसा = अहोभाव पूर्वक भक्तियुक्त स्तुति।

अव. XII. फल द्वार शुक्लध्यान के फल के साथ (लाघव के लिए) कहेंगे। धर्मध्यान पूर्ण। अब शुक्लध्यान कहेंगे। शुक्लध्यान की व्युत्पत्ति कही गई (Pg49) यहाँ भी भावना वि. 12 द्वार हैं (द्वार गा. 28, 29 Pg 57)। उनमें से भावना-देश-काल-आसन द्वार धर्मध्यान के समान होने से सीधा V. आलंबन द्वार –

गा.69 जिनमत में प्रधान ऐसे क्षांति-मार्दव-आर्जव-मुक्ति ऐसे आलंबन हैं जिनके द्वारा जीव शुक्लध्यान में चढ़ता है।

* क्षांति-मार्दव-आर्जव-मुक्ति क्रमशः क्रोध-मान-माया-लोभ के त्याग रूप हैं। त्याग 2प्र. – उदय का निरोध और उदय में आए हुए को विफल करना।

अव. VI. क्रम द्वार – प्रथम दो भेदों का क्रम धर्मध्यान में ही कहा गया (गा.44 Pg.62)। इसमें ही विशेष कहते हैं –

गा.70 छद्मस्थ जीव त्रिभुवन के विषयवाले मन को क्रमशः संक्षेप कर एक अणु में निष्कंप ध्यान करे। मनरहित जिन शुक्लध्यान के अंतिम दो भेद के ध्याता हैं।

* अंतिम दो भेद में से दूसरे भेद में शैलेशी अवस्था आती है।

अव.प्र. छद्मस्थ कैसे मन का संक्षेप कर अणु में धारे? और केवली कैसे मन दूर करते हैं? उ.–

गा.71 जैसे पूरे शरीर में रहे विष को मंत्र से डंक के भाग में लाते हैं। फिर वहाँ से भी प्रधानतर मंत्र के योग से विष दूर किया जाता है।

गा.72 वैसे त्रिभुवन रूप शरीर विषयक मन रूपी विष को योग रूप मंत्र से युक्त मुनि परमाणु में स्थिर करते हैं। फिर जिन रूपी वैद्य वहाँ से भी दूर करते हैं।

* मन ही संसार रूप मरण का कारण होने से विष है।

Notes   Date :

अव. अन्य दृष्टांत –

गा. 73 ईंधन का समूह दूर करने पर अग्नि हानि को प्राप्त होती है अथवा बहुत ईंधन दूर करने पर अग्नि थोड़े ईंधन में शेष बचती है। फिर थोड़ा ईंधन भी दूर करने पर बुझ जाती है।

गा. 74 वैसे विषयरूपी ईंधन से हीन मन रूप अग्नि क्रमशः छोटे से विषयरूप ईंधन (अणु में) में स्थिर होता है। वहाँ भी दूर करने पर बुझ जाता है।

* मन दुःख रूपी दाह का कारण होने से अग्नि समान है।

अव. पुनः अन्य दृष्टांत –

गा. 75 नालिका का पानी या तप्त लोहे के भाजन में रहा पानी क्रमशः कम होता है, वैसे योगियों के मन रूप जल को जानो।

* नालिका यानि घटिका। नीचे छिद्र होने से पानी कम होता है।
* योगी का मन भी धीरे-धीरे कम होने से पानी जैसा है।

अव. 'जिन वैद्य मन को दूर करते हैं' इससे मनोयोग के निरोध की बात कही। अब शेष योग के निरोध –

गा. 76 ऐसे ही क्रमशः वचनयोग और काय योग का निरोध करते हैं, तब केवली मेरु की तरह शैलेशी (स्थिर) होते हैं।

* योगनिरोध की प्रक्रिया नमस्कार निर्युक्ति (गा. 955 भाग 3 पृ) में कही गई तो भी स्थान खाली न रहे, इसलिए यहाँ संक्षेप में कही।

अव. VI. क्रम द्वार पूर्ण (देखें द्वार गा. 28 पृ 57) | VII. ध्यातव्य द्वार –

गा. 77 एक वस्तु में उत्पाद-स्थिति-भंगादि पर्यायों का पूर्वगत श्रुत अनुसार अनेक नयों से अनुस्मरण (चिंतन)

गा. 78 ऐसा राग के परिणाम रहित जीव का अर्थ-व्यंजन-योग संक्रमण से सविचार ऐसा पृथक्त्ववितर्क सविचार नाम शुक्लध्यान का पहला भेद है।

* पूर्वगतश्रुत अनुसार यह ध्यान पूर्वधर को जानना। मरुदेवी वि. को अन्य प्रकार से जानना।

* अर्थ से व्यंजन (शब्द), शब्द से योग वि. संक्रमण होने से यह सविचार ध्यान है।
* पृथक्त्व यानि भेद से विस्तीर्ण भाव से वितर्क वाला ध्यान अर्थात् संक्रमण होने से ध्यान का विषय विस्तीर्ण है तथा श्रुतानुसार होने से वि वितर्क है।

भव. दूसरा प्रकार –

गा. 79 उत्पाद-स्थिति-भंगादि में से एक पर्याय में हवा रहित स्थान में रहे दीप की तरह निष्कंप चित्त।

गा. 80 अर्थ-व्यंजन-योगांतर में असंक्रम वाला, पूर्वगतश्रुत के आलंबन वाला एकत्ववितर्क अविचार नामक द्वितीय शुक्ल ध्यान है।

* विचार यानि संक्रम रहित। एकत्व यानि व्यंजन या अर्थ रूप वितर्क वाला।

भव. तीसरा भेद –

गा. 81 कुछ काय योग का निरोध करने वाले और अल्प शरीर योग वाले केवली को निर्वाणगमन काल में सूक्ष्मक्रिया-अनिवृत्ति नामक तीसरा शुक्ल ध्यान होता है।

* कुछ काय योग निरोध करने वाले = मन-वचन योग संपूर्ण निरुद्ध और काय योग भी अल्प ही शेष होने पर।
* सूक्ष्म काय योग होने से सूक्ष्मक्रिया। प्रवर्द्धमानपरिणाम होने से वापस निवृत्ति न होने वाला (वापस पीछे न आने वाला) अनिवृत्ति ध्यान।

भव. चौथा भेद –

गा. 82 शैलेशी को प्राप्त और मेरु की तरह निष्कंप उन्हीं केवली को समुच्छिन्नक्रिया-अप्रतिपाति नामक अंतिम शुक्ल ध्यान होता है।

Notes Date :

* शैलेशी अवस्था को प्राप्त = योग का संपूर्ण निरोध होने से।

अत. चार शु. का ध्यान कहकर इस ध्यान संबंधी अन्य वक्तव्य कहते हैं -

गा. 83 योग अथवा योगों में प्रथम, 1 योग में द्वितीय, काययोग में तृतीय और अयोग में चौथा शुक्ल ध्यान होता है।

अत. प्र. शुक्लध्यान के अंतिम दो भेद में मन नहीं होता क्योंकि केवली मन रहित होते हैं और ध्यान तो मन का ही एक भेद है क्योंकि 'ध्यं चिन्ता-याम्' पाठ है। तो केवली को ध्यान कैसे? -

गा. 84 जैसे छद्मस्थ का ध्यान सुनिश्चल मन कहलाता है, वैसे केवली की सुनिश्चल काया ध्यान कही जाती है।

अत. प्र. चौथे ध्यान में तो काययोग का निरोध होने से यह भी नहीं होता। यदि ऐसा कहो कि निरुद्ध होने पर भी काययोग होता है तो सभी योग निरुद्ध होने पर भी होने की आपत्ति होगी? अतः यह ध्यान कैसे घटेगा? उ. -

गा. 85 पूर्व प्रयोग से, कर्म निर्जरा का हेतु होने से, शब्द के बहुत अर्थ होने से, जिनेश्वर के आगम से

गा. 86 चित्त का अभाव होने पर भी हमेशा जीव के उपयोग का सद्भाव होने से सूक्ष्मक्रिया-व्युपरत क्रिया अवस्थ केवली के ध्यान हैं।

* जैसे पूर्व प्रयोग से कुम्हार का चक्र दंड की क्रिया न होने पर भी घूमता है, वैसे यहाँ मन की क्रिया न होने पर भी जीव के उपयोग के सद्भाव से ध्यान है। जीव के उपयोग रूप भाव मन होता है।
* जैसे क्षपकश्रेणि में घातीकर्म का क्षय होने से प्रथम दो भेद वाले ध्यान हैं, वैसे यहाँ अघातीकर्म का क्षय होने से ये दो भेद भी ध्यान हैं।
* ध्यान शब्द के अनेक अर्थ होने से कायनिरोध-अयोगित्व भी ध्यान है।
* आगम में इन्हें ध्यान कहने से ये ध्यान हैं।

अव. III. ध्यातव्य द्वार पूर्ण। IIII. ध्याता तो धर्मध्यान में कहे (गा. 64)।

IX. अनुप्रेक्षा द्वार -

गा. 87 चारित्र से संपन्न और शुक्लध्यान से भावित चित्त वाले मुनि ध्यान का विराम होने पर भी हमेशा 4 अनुप्रेक्षा करते हैं -

गा. 88 1. आश्रवद्वार के अपाय 2. संसार के अशुभ अनुभाव 3. भव की अनंत परंपरा 4. वस्तु के विपरिणाम।

* विपरिणाम = अनित्यादि।

* ये 4 अनुप्रेक्षा पहले 2 शुक्लध्यान में ही जानना, अंतिम दो में मन नहीं होने से अनुप्रेक्षा नहीं घटती।

अव. IX. अनुप्रेक्षा द्वार पूर्ण। X. लेश्या द्वार -

गा. 89 प्रथम दो भेद शुक्ल लेश्या में। तृतीय भेद परमशुक्ललेश्या में। स्थिरता से मेरु को भी जीतने वाला चौथा भेद लेश्यातीत है।

अव. X. लेश्या द्वार पूर्ण। XI. लिंग द्वार

गा. 90 अवध - असंमोह - विवेक - व्युत्सर्ग उसके लिंग होते हैं जिनके द्वारा शुक्लध्यान को प्राप्त मन वाले मुनि पहचाने जाते हैं।

गा. 91 परीषह - उपसर्गों द्वारा चलित नहीं होवे, घबराते नहीं ऐसे ये धीर हैं। सूक्ष्म भावों में या देवमाया में संमोहित नहीं होते।

* अवध = ध्यान से चलित नहीं होते अथवा परीषहोपसर्गों से डरते नहीं।

असंमोह = सूक्ष्म पदार्थों या देवमाया में सम्मोहित नहीं होते।

गा. 92 स्वयं को देह और सर्वसंयोगों से भिन्न देखते हैं। तथा देह-उपधि का व्युत्सर्ग निःसंग मुनि सर्वथा करते हैं।

* ये क्रमशः विवेक और व्युत्सर्ग लिंग हैं।

अव. XI. लिंग द्वार पूर्ण। XII. फल द्वार - लाघव के लिए पहले धर्मध्यान का फल

Notes   Date :

कहकर शुक्ल ध्यान का फल कहेंगे (देखें अव. क्र.75)। धर्मध्यान के फल ही कुछ शुद्धतर शुक्ल ध्यान के प्रथम दो भेद के फल हैं। धर्मध्यान के फल –

गा.93 विपुल और शुभ अनुबंधी ऐसे शुभास्रव, संवर, निर्जरा और देवसुख श्रेष्ठ धर्मध्यान के फल हैं।

अव. शुक्ल ध्यान के फल –

गा.94 दो शुक्लध्यान के शुभास्रवादि विशेष से और अनुत्तर विमान के सुख तथा अंतिम दो शुक्ल ध्यान का निर्वाण फल है।

गा.95 आस्रव द्वार संसार के हेतु हैं। वे धर्म शुक्ल ध्यान में नहीं होते अत: धर्म-शुक्ल ध्यान निश्चित ही संसार के कारण नहीं हैं।

गा.96 संवर और निर्जरा मोक्ष के पथ हैं तथा तप संवर-निर्जरा का पथ है। और ध्यान तप का प्रधान अंग है अत: ध्यान मोक्ष का हेतु है।

अव. इसी अर्थ को दृष्टांत से कहते हैं –

गा.97 वस्त्र-लोह-पृथ्वी के क्रमश: मल-कलंक-पंक को जैसे जल-अग्नि-सूर्य शुद्धि-दूरीकरण-शोष करते हैं।

* वस्त्र के मल की शुद्धि जल करता है।
लोह के कलंक को अग्नि दूर करती है।
पृथ्वी के पंक को सूर्य सूखाता है।

गा.98 वैसे जीव रूपी वस्त्र-लोह-पृथ्वी पर रहे कर्म रूप मल-कलंक-पंक की शुद्धि आदि में समर्थ ध्यान रूपी जल-अग्नि-सूर्य है।

गा.99 जैसे ध्यान से ~~ताप-~~ योगों का ताप-शोष-भेद निश्चित है, वैसे ध्यानी के कर्म का भी ताप-शोष-भेद निश्चित होता है।

गा. 100 जैसे रोग के निदान (कारण) का शमन (चिकित्सा) विशोषण (अभोजन)- विरेचक और औषध विधियों से होता है वैसे कर्म रोग की चिकित्सा ध्यान- अनशनादि योगों से होती है।

गा. 101 जैसे चिरसंचित इंधन को पवनसहित अग्नि जल्दी जलाता है वैसे अमित (अनंत) कर्म रूपी इंधन को ध्यान रूप अग्नि क्षण में जला देता है।

गा. 102 जैसे हवा से आहत बादल के समूह क्षण में नष्ट होते हैं, वैसे ध्यान रूप हवा से आहत कर्म रूप बादल नष्ट होते हैं।
* जीव स्वभाव को ढँकने से कर्म बादल रूप हैं।

अब. पारलौकिक फल कहे। इहलौकिक फल -
गा. 103 ध्यान को प्राप्त चित्त वाला जीव कषाय से उत्पन्न ऐसे ईर्ष्या-विषाद-शोकादि मानसिक दुःखों से पीड़ित नहीं होता।
* आदि शब्द से हर्ष वि.

गा. 104 ध्यान में निश्चल चित्त वाला और निर्जरापेक्षी जीव बहुत प्रकार के शीत-आतपादि शारीरिक दुःखों से दुःखी नहीं होता।

अब. XII. फल द्वार पूर्ण। द्वार गा. 28-29 (Pg 57) पूर्ण। शुक्लध्यान पूर्ण। अब उपसंहार —

गा. 105 इस प्रकार सर्व गुणों का स्थान, दृष्ट-अदृष्ट सुखों का साधन, सुप्रशस्त ध्यान श्रद्धा करने योग्य है, जानने योग्य है और हमेशा ध्याने योग्य है।
* तीर्थंकर-गणधरों से सेवित होने से प्रशस्त है।

Notes — Date:

प्र. ऐसे तो सर्व क्रिया का लोप ही होगा?
उ. नहीं; क्योंकि क्रिया का आसेवन भी तत्त्व से ध्यान है। कोई भी क्रिया ऐसी नहीं है जो आगमानुसार करने पर साधुओं का ध्यान नहीं बनती।

ध्यानशतकं समाप्तम् ॥
(ग्रंथाग्र 15696)

सूत्र पडिक्कमामि पंचहिं किरियाहिं काइयाए अहिगरणियाए पाउसियाए पारित्ता पारितावणियाए पाणाइवायकिरियाए।

★ 5 क्रिया से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ

1. कायिकी क्रिया- 3प्र.
   (a) अविरतकायिकी- मिथ्यादृष्टि और अविरतसम्यग्दृष्टि की उत्क्षेपणादि क्रिया।
   (b) दुष्प्रणिहितकायिकी - 2प्र. (i) इंद्रिय- इष्ट-अनिष्ट विषय की प्राप्ति में राग-द्वेष से दुर्व्यवस्थित मुनि की क्रिया। (ii) नोइंद्रिय- अशुभ संकल्प से दुर्व्यवस्थित की क्रिया।
   (c) उपरतकायिकी - अप्रमत्त संयत की क्रिया।

2. आधिकरणिकी क्रिया - आत्मा को नरकादि का अधिकारी बनाने वाले अधिकरण से हुई क्रिया या बाह्य वस्तु चक्रादि। यह क्रिया 2प्र. अधिकरणप्रवर्तिनी- चक्रादि ~~बनाने~~ का प्रवर्तन कराने वाली eg. चक्रमहोत्सवादि, निवर्तनी- चक्रादि बनाने वाली।
   अन्य उदाहरण यहाँ नहीं दिए क्योंकि वे इनके अंदर ही आ जाते हैं।

3. प्राद्वेषिकी - 2प्र. जीव में प्रद्वेष, अजीव में (पत्थर वि. से टकराने से वि.) प्रद्वेष।

4. पारितापनिकी- ताड़नादि परिताप करना। 2प्र.-

(a) स्वदेह में परितापन - अन्य पर गुस्सा आने से स्वदेह में माथा कूटना वि.
(b) परदेह में परिताप करना।

अथवा

(a) स्वहस्तपारितापनिकी - स्वहस्त से परिताप करते हुए को।
(b) परहस्तपारितापनिकी - दूसरे से परिताप कराते हुए को।

5. प्राणातिपात क्रिया - 2 प्र.
(a) स्वप्राणातिपात - निर्वेद से या स्वर्गादि के लिए पर्वत से गिरकर वि. से आत्म हत्या करना।
(b) परप्राणातिपात - क्रोध से रुष्ट होकर मारे, मान से हीलना करने वाले को मारे, माया से अपकारी को विश्वास में लेकर मारे, लोभ से शिकारी की तरह, मोह (अज्ञान) से संसारमोचक मत अथवा स्मृति में कहे यज्ञ।

* क्रिया का अधिकार होने से शिष्य के हित के लिए अन्य 20 क्रिया भी बताते हैं -

1. आरंभिकी - 2 प्र. जीव में आरंभ करे, अजीव में आरंभ करे।

2. पारिग्रहिकी - 2 प्र. जीव का परिग्रह, अजीव का परिग्रह करे।

3. माया प्रत्ययिकी - 2 प्र.
(a) आत्मभाववंचना - स्वयं के भाव छुपाते हुए बाहर सरलभाव दिखाए या संयमादि में शिथिल बाहर से क्रिया का आडंबर करे।
(b) परभाववंचना - कूटलेखादि से दूसरे को ठगना।

4. मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी - 2 प्र.
(a) अनभिग्रहिक - असंज्ञी जीवों को और संज्ञी में जिन्होंने कोई धर्म न स्वीकारा हो।

Notes Date :

(b) आभिग्रहिक २ प्र. (i) हीनातिरिक्त दर्शन में – हीन मत eg. आत्मा अंगूठे के पर्व जितना या जौ जितना या श्यामाग चावल जितना या बाल के अग्रभाग जितना या ~~परमाणु~~ परमाणु जितना या हृदय में जाज्वल्यमान या ललाट के बीच में है (Actual में आत्मा शरीर व्यापी है) अतिरिक्त मत eg. आत्मा 500 धनुष प्रमाण है, सर्वव्यापी, अकर्ता, अचेतन है।

(ii) तद्व्यतिरिक्त दर्शन में – आत्मा नहीं है, परलोक नहीं है, सर्वपदार्थ असत् है इत्यादि।

5. अप्रत्याख्यान क्रिया – यह अविरत जीवों को ही होती है। २ प्र. – जीव में प्रत्याख्यान न करे तो जीवाप्रत्याख्यान क्रिया, अजीव में प्रत्याख्यान न करे तो अजीवाप्रत्याख्यान क्रिया।

6. दृष्टिका क्रिया – २ प्र. अश्वादि जीवों को देखना जीवदृष्टिकी, चित्र वि. अजीवों को देखना अजीवदृष्टिकी।

7. स्पृष्टिका या पृच्छिका – २ प्र. जीव का अधिकार पूछना जीवपृच्छिका, अजीवाधिकार पूछना अजीवपृच्छिका। अथवा स्त्री, पुरुष या नपुंसक जीव को स्पर्शे जीवस्पृष्टिका, सुख के लिए हिरण के लोम से बने वस्त्र या रत्न जैसी अजीव वस्तु को स्पर्शे अजीवस्पृष्टिका।

8. प्रातीत्यिकी – २ प्र. जीव निमित्त कर्मबंध करे तो जीव प्रातीत्यिकी। अजीव निमित्त कर्मबंध करे तो अजीव प्रातीत्यिकी।

9. सामंतोपनिपातिकी – समन्तादनुपतति – चारों तरफ से आने पर जीव हर्ष-शोक से जो कर्म बंध करे। २ प्र.

(a) जीव – eg. स्वयं बैल वि. को लोग जैसे-जैसे देखने आते हैं और प्रशंसा करते हैं, वैसे-वैसे हर्ष करे।

(b) अजीव- स्वयं के रथकमादि को लोग देखें और प्रशंसा करें तो हर्ष करे वि.।

अथवा

सामंतोपनिपातिकी - 2 प्र. (a) देश से - एक ही देश से लोग आते हों।
(b) सर्व से - चारों तरफ से " " ।

अथवा

प्रमत्त साधुओं के नहीं ढँके हुए अन्न-पान में संपातिम जीव गिर और मरे वह सामंतोपनिपातिकी क्रिया।

10. नैसृष्टिकी क्रिया - 2 प्र. (a) जीवनैसृष्टिकी - जीव से या जीव के कारण पानी वि. वस्तु निकाले eg. राजा के आदेश से या राजा के लिए पानी कूएँ से निकाले। (b) अजीवनैसृष्टिकी - अजीव से या अजीव के लिए धनुष वि. से बाण वि. छोड़े। (दीपक)

अथवा

(a) जीव - गुरु को (जीव में) शिष्य या पुत्र (जीव) अविधि से दे।
(b) अजीव - अनाभोगादि कारण से लिए हुए अनेषणीय वस्त्र या पात्र (अजीव) अविधि से अचित्त स्थंडिलादि (अजीव में) परठे। (टीप्पणक)

11. स्वाहस्तिकी - 2 प्र. जीव (जीव से (हाथ)) जीव को मारे वह जीवस्वाहस्तिकी और जीव तलवारादि अजीव से जीव को मारे वह अजीवस्वाहस्तिकी। अथवा जीव को स्वहस्त से मारे जीवस्वाहस्तिकी, अजीव को स्वहस्त से मारे अजीव स्वाहस्तिकी।

12. आज्ञापनिकी - 2 प्र. जीव - दूसरे से जीव को आज्ञा कराए, अजीव - मंत्रादि से अजीव को कोई कार्य करने आज्ञा देना।

13. वैदारणिकी - 2 प्र. जीव को फाड़े, अजीव को फाड़े। अथवा

Notes Date :

जीव या अजीव को बेचने के लिए दिखाने को भी विदारण कहते हैं अथवा ठगने के लिए जीव या अजीव के असद्गुण कहने को भी विदारण कहते हैं।

14. अनाभोगप्रत्ययिकी - २ प्र. अनाभोगादानजा - अनाभोग से कोई वस्तु को अप्रमार्जितादि अविधि से ग्रहण करना। अनाभोगनिक्षेपजा - अनाभोग से कोई वस्तु को अप्रमार्जितादि अविधि से रखना।
अथवा
२ प्र. अनाभोगादाननिक्षेपक्रिया - अनाभोग से स्व अविधि से पात्र-वस्त्र रखना या लेना। अनाभोगोत्क्रमणक्रिया - अनाभोग से लंघन-कूदना, दौड़ना वि.)

15. अनवकांक्षाप्रत्ययिकी - २ प्र. ऐहलौकिक - लोकविरुद्ध चोरी वि. करे जिससे वध-बंधन प्राप्त हो। पारलौकिक - परलोक से निरपेक्ष हिंसादि करे।

16. प्रयोग क्रिया - ३ प्र. मनप्रयोग - इंद्रिय प्रचार में अनियमित मन वाला आर्त-रौद्र ध्यान करे। वाक्प्रयोग - स्वेच्छा से सावद्यादि बोले। कायप्रयोग - प्रमत्त की संकोच-प्रसारणादि चेष्टा।

17. समुदान क्रिया - चारों ओर से कर्म का ग्रहण करना। २ प्र.
देशोपघातसमुदान - देश के उपघात से कर्मग्रहण e.g. कोई किसी की इंद्रिय का देश से उपघात करे।
सर्वोपघात समुदान - सर्व प्रकार से इंद्रिय का नाश करे।

18. रागप्रत्ययिकी - २ प्र. माया से और लोभ से राग करना। e.g. ऐसे वचन बोले कि दूसरे को राग हो।

19. द्वेषप्रत्ययिकी - २ प्र. क्रोध और मान से द्वेष करना, कहना।

ऐर्यापथिकी क्रिया - २५. बध्यमान और वेद्यमान। उपयुक्त चलते हुए, खड़े हुए, बैठते हुए, सोते हुए, भोजन करते हुए, बोलते हुए, वस्त्र-पात्रादि ग्रहण या निक्षेप करते हुए यावत् आँख की पलक झपकाते हुए वीतरागछद्मस्थ या केवली को पहले समय बध्यमान, दूसरे समय वेदन कराती हुई वेद्यमान, तीसरे समय में निर्जरा करती हुई क्रिया।

ये २५ क्रिया पूर्ण हुई।

सूत्र पडिक्कमामि पंचहिं कामगुणेहिं - सद्देणं रूवेणं रसेणं गंधेणं फासेणं।
पडिक्कमामि पंचहिं महव्वएहिं - पाणाइवायाओ वेरमणं मुसावायाओ वेरमणं अदिण्णादाणाओ वेरमणं मेहुणाओ वेरमणं परिग्गहाओ वेरमणं।
पडिक्कमामि पंचहिं समिईहिं - ईरियासमिइए भासासमिइए एसणासमिइए आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिइए उच्चारपासवणखेलजल्लसिंघाण-पारिट्ठावणियासमिइए।

* ५ कामगुणों से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।
काम्यन्ते इति कामाः जिनकी इच्छा की जाए। ~~वे काम से~~ इनका जो स्वरूप है वही गुण (दोरी), जिससे प्राणियों को बंध होता है। अतः ये कामगुण कहे जाते हैं। (टीप्पणक)

* ५ महाव्रतों से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।
प्र. अतिचार के प्रति महाव्रत करण कैसे है?
उ. प्रतिषिद्ध करना वि. से।

* ५ समितियों से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।
समिति= सुंदर (शुभ) एकाग्र परिणाम वाले की चेष्टा।

Notes Date :

1. ईर्यासमिति – रथ-शकट-यान-वाहन से आक्रांत और सूर्य की किरणों से तप्त सचित्त वनस्पति वि. से रहित मार्गों में युगमात्र दृष्टि वाले मुनि द्वारा गमनागमन करना।

ईर्यासमिति में उदाहरण – एक साधु ईर्यासमिति में उपयुक्त × शक्र ने सभा में प्रशंसा करी × एक देव ने मक्खी की size वाली मेंढकी विकुर्वी और पीछे मत्त हाथी × मुनि मेंढकी को बचाने दौड़े नहीं × हाथी ने सूँड से उछाला × मुनि ने सोचा – अहो! मैंने जीवों का मारा किंतु स्वयं का विचार नहीं किया। (Same as कायगुप्ति का उदाहरण Pg. 40)।

अथवा अर्हन्नक मुनि का पैर ईर्यासमिति का पालन न करने से मिथ्यादृष्टि देव ने पैर छेदा, सम्यग्दृष्टि ने जोड़ा।(देखें भाग 3 Pg 58)

2. भाषा समिति – हित-मित-असंदिग्ध अर्थ कहना वि.।

उदाहरण – एक नगर शत्रुसेना ने घेरा × कोई मुनि बाहर शत्रु सेना के पड़ाव में भिक्षा के लिए गए × कोई सैनिक ने पूछा – नगर के राजा के पास कितने हाथी-घोड़े-रथ-सैनिक हैं, दारुगोले-धान्यादि का कितना संचय है, नगरजन निर्विण्ण हैं या नहीं? × मुनि – हम स्वाध्याय-ध्यानादि में व्याक्षिप्त होने से नहीं जानते × सैनिक – गोचरी जाते हुए कुछ देखते या सुनते नहीं? × मुनि – बहुं सुणेइ कण्णेहिं बहुं अच्छीहिं पिच्छइ। न य दिट्ठं सुयं सव्वं भिक्खू अक्खाउ मरिहइ

3. एषणा समिति – गोचरी गए हुए सम्यग् उपयुक्त मुनि द्वारा नौ कोटी से शुद्ध आहार लेना चाहिए (पचन-क्रयन-हनन, मन-वचन-काया, करण-करावण-अनुमोदन)।

उदाहरण – वसुदेव का पूर्वभव नंदिषेण मुनि →

मगध देश × नंदिग्राम × गौतम नामक ब्राह्मण × धारिणी पत्नी गर्भवती हुई × गर्भ 6 मास का होने पर ब्राह्मण मरा, पुत्र जन्म होने पर पत्नी मरी × मामा के पास रहा × बड़ा होकर खेती वि. करता है × लोग कहते – तेरे इतना करने पर भी इसमें तेरा कुछ नहीं है × मामा कहते – तू लोगों की मत सुन, मेरी 3 पुत्री में से

बड़ी पुत्री तुझे दूँगा x बड़ी पुत्री ने मना किया x तीनों ने मना किया x तब खिन्न होकर नंदिषेण ने नंदिवर्द्धन आचार्य के पास दीक्षा ली x छट्ठ के पारणे छट्ठ और बाल, ग्लान की वैयावच्च का अभिग्रह लिया x वैयावच्चकर रूप में प्रसिद्ध हुए x शक्र ने सभा में प्रशंसा करी x एक देव ने दो साधु के रूप किए x एक साधु ग्लान जंगल में रहे x दूसरे उपाश्रय में जाकर बोले-बाहर जंगल में एक साधु ग्लान है, जो वैयावच्च में रुचिवाला हो वह उठो x नंदिषेण मुनि छट्ठ के पारणे में गोचरी लाकर बैठे थे x तुरंत खड़े होकर पूछा- किस वस्तु की जरूर है? x देव-पानी की x नंदिषेण मुनि पानी लेने निकले x जहाँ-जहाँ गए वहाँ देव ने अनेषणा की x दो बार पूरे गाँव में गए पानी नहीं मिला x अशुद्ध पानी ग्रहण नहीं करते x तीसरी बार में शुद्ध पानी मिला x लेकर जंगल में पहुँचे x ग्लान गुस्से से कठोर वचन बोले- तू बस नाम का ही वैयावच्चकर है, इतनी देर कहाँ गया था? वापरे बिना नहीं आया वि. x कठोर वाणी को अमृत मानते मुनि पैर में पड़कर मिच्छामि दुक्कडं देकर पानी से उनकी शुद्धि कर बोले- उठो, उपाश्रय चलो, आप जल्दी नीरोग हो जाओगे x ग्लान- मैं चल नहीं सकता x नंदिषेण मुनि ने पीठ पर बैठाया x देव ने पीठ पर अत्यंत दुर्गंधी मल-मूत्र किए और कहा- तूने मेरे वेग (मल-मूत्र) का विघात किया, धिक्कार है x वे मुनि कर्कश वचन पर ध्यान नहीं देते x मल-मूत्र को चंदन के लेप की तरह मानते हैं x देव बहुत उपायों से भी मुनि को क्षुब्ध करने समर्थ नहीं हुआ तब प्रशंसा कर गया x मुनि ने घटना गुरु को कही x गुरु ने कहा- तू धन्य है x जैसे नंदिषेण मुनि ने एषणा भंग न किया, वैसे एषणा समिति का पालन करना चाहिए।

अथवा

दृष्टिवाद में बताया हुआ अन्य उदाहरण- कोई ५ मुनि क्षुधा-तृषा से पीड़ित लंबा विहार कर सकाल में एक गाँव में पहुँचे x पानी की गवेषणा करते हैं किंतु शुद्ध पानी नहीं मिलता x दूषित पानी ग्रहण नहीं करते x प्यासे ही कालधर्म को प्राप्त हुए।

Notes Date :

4. आदानभंडमत्तनिक्षेपणासमिति– उपकरण के ग्रहण-निक्षेप विषयक सुंदरचेष्टा।
इसमें 7 भांगे– पात्रादि का प्रतिलेखन प्रमार्जन

(i)	×	×
(ii)	✓	×
(iii)	×	✓
	✓	✓

इस चौथे भांगे में पुनः 4 भांगे –
प्रतिलेखन-प्रमार्जन दोनों किए परंतु दुष्प्रतिलेखन दुष्प्रमार्जन

(iv)	✓	✓
(v)	×	✓
(vi)	✓	×
(vii)	×	×

प्रथम 6 अशुद्ध, 7वां भांगा शुद्ध। सुप्रतिलेखन किया सुप्रमार्जन किया

उदाहरण – एक आचार्य ने साधुओं को कहा-कल हम गाँव जाएँगे× तैयार हुए साधु किसी कारण से रुके× एक साधु 'सभी ही पडिलेहन किया है' ऐसा सोचकर उपधि सीधे ही रखने लगा× साधुओं द्वारा प्रेरणा कराते हुए बोला-क्या यहाँ साँप है?× आस-पास रहे देवता ने साँप विकुर्वा× यह जघन्य असमित×
अन्य एक साधु वैसे ही पडिलेहन कर रखता है, यह उत्कृष्ट समित×

एक आचार्य के 500 शिष्य× उनमें एक श्रेष्ठिपुत्र था× वह साधु सभी मुनि के दांडे लेकर पडिलेहन-प्रमार्जन कर रखता है× एक साधु आते हैं, एक जाते हैं तो भी वह जल्दी किए बिना, चपलता रहित ऊपर से नीचे तक प्रमार्जना कर दांडे रखता है× ऐसे बहुत समय में भी खिन्न नहीं होता।

5. उच्चार-प्रश्रवण-खेल-सिंघाण-जल्लपारिस्थापनिका समिति–
खेल = कफ, सिंघान = नाक का कफ, जल्ल = मैल (शरीर का)। यहाँ भी 7 भांगे

जानना।

उदाहरण – धर्मरुचि अणगार →

धर्मरुचि मुनि ने मात्रु के पाले परठने का अभिग्रह लिया x शक्र ने सभा में प्रशंसा करी x देव ने कीड़ियाँ विकुर्वी x रात को धर्मरुचि मुनि ने मात्रु जोर से लगने पर पाले में मात्रु गए x तभी दूसरे मुनि उठे, कहा- मुझे भी गाढ़ मात्रु की पीड़ा है x धर्मरुचि- खड़े रहो, मैं परठकर आऊँ फिर मात्रु करना x परठने गए x परठने की जगह बहुत कीड़ियाँ थी x इधर साधु पीड़ा से पीड़ित होता है x वे मात्रु पीने लगते हैं तभी देव रोकता है - सामायिक में निषिद्ध है x देव तुष्ट होकर गया।

* सामायिक में जैसे दूसरे को पीड़ा नहीं देना चाहिए, वैसे स्वयं को भी पीड़ा नहीं देना चाहिए क्योंकि जीव को स्व-पर दोनों पर समभाव होता है। कहा गया है- 'भावियजिणवयणाणं ममत्तरहियाण नत्थि हु विसेसो।
अप्पाणम्मि परम्मि य तो वज्जे पीडमुभओऽवि ॥'
इसलिए उन्हें रोकता है कि मात्रु मत पीओ। (टिप्पणक)

अथवा दृष्टिवाद में दूसरा उदाहरण- एक नूतन मुनि लोभ से मात्रु परठने की जगह देखते नहीं x रात को मात्रु लगने पर भी स्थंडिल भूमि न देखने से परठते नहीं है x एक देव ने प्रकाश किया अतः स्थंडिल भूमि देखकर उन्होंने मात्रु परठा xx यह समित का उदाहरण कहा।

असमित का उदाहरण- एक साधु 3-3 स्थंडिल भूमि की जगह 1-1 ही देखते हैं और कहते हैं- यहाँ कोई ऊँट बैठने वाला है क्या? x देव देखे हुए स्थान में ऊँट का रूप लेकर बैठा x रात में मात्रु करने वे साधु उठे x वहाँ ऊँट देखा x दूसरी सब जगह पर भी ऊँट देखा x उन्होंने दूसरे साधु को उठाया x उन साधु ने भी सभी जगह ऊँट देखा x अंत में देव ने कहा- आपने 27 भूमि क्यों नहीं देखी? x साधु ने देव की बात स्वीकारी xx

Notes Date :

[27 भूमि = 12 प्रात्र की + 12 स्थंडिल की + 3 कालग्रहण की।]
(उच्चार)

अव. प्र. क्या इतना ही पढ़ने योग्य है?
उ. नहीं।
प्र. दूसरा क्या पढ़ने योग्य है? उ. –

श्री पारिस्थापनिका निर्युक्तिः

गा.1 धीरपुरुषों द्वारा प्रज्ञप्त पारिस्थापनिका विधि कहूँगा, जिसे जानकर सुविहित पुरुष प्रवचन के सार को प्राप्त करते हैं।

★ परि-सर्वप्रकारैः स्थापनं परिस्थापनं अर्थात् पुनःग्रहण न करने पूर्वक रखना। उससे बनी क्रिया पारिस्थापनिकी। इसकी विधि पारिस्थापनिकी विधि।

★ धीरपुरुष - एकांत से वीर्यान्तराय का क्षय होने तीर्थंकर
- धिया बुद्धया राजते इति धीरः गणधर।

★ प्र. यदि यह विधि धीर पुरुषों द्वारा प्रज्ञप्त है तो पुनः क्यों कहते हो?
उ. संक्षेप रुचि वाले जीवों के अनुग्रह के लिए, यहाँ संक्षेप में कहते हैं।

अव. परिस्थाप्य वस्तु के भेद से पारिस्थापनिका के भेद-
गा.2 एकेंद्रियपारिस्थापनिका, नोएकेंद्रियपारिस्थापनिका संक्षेप में 2 प्र.। इन पदों में प्रत्येक की प्ररूपणा मैं कहता हूँ।

अव. एकेंद्रियपारि. का स्वरूप –
गा.3 एकेंद्रिय 5 प्र. के पृथ्वी, अप्, तेउ, वाउ, वनस्पति। इनकी पारिस्थापनिका 2 प्र. की - तज्जात, अतज्जात।

अव. ग्रहण करने पर अतिरिक्त वस्तु की पारिस्थापनिका होती है। अतः पृथ्वी

वि. एकेंद्रियों का ग्रहण कैसे होता है? यह बताते हैं –

गा.५ ग्रहण २प्र. आत्म समुत्थ, परसमुत्थ। प्रत्येक २प्र. का आभोग से, अनाभोग से।

* पृथ्वादि एकेंद्रियों का ग्रहण २प्र. (a) आत्मसमुत्थ = स्वयं लेना।
(b) पर समुत्थ = दूसरे से लेना।

दोनों २-२ प्र. के – (i) आभोग = उपयोग से लेना।
(ii) अनाभोग = अनुपयोग से लेना।

* पृथ्वीकाय का ग्रहण –

(a) आत्म समुत्थ – (i) आभोग से – साधु को सर्प डँसे या विष खाए या विषफुंसी हो तो अचित्त पृथ्वीकाय कोई लाया हो तो वह माँगे, न लाया हो तो स्वयं ग्रहण करे। उसमें भी यदि अचित्त न हो तो मिश्र ग्रहण करे, न हो तो हल वि. से खोदकर लाए, वो भी न हो तो जंगल से या रास्ते से या अग्नि से जले हुए प्रदेश से लाए। यह भी न हो तो सचित्त भी ग्रहण करे।
अथवा एकदम जल्दी जरूर हो तो जो मिले वह ले ले।
यह मिट्टी के ग्रहण की बात करी। ऐसे लवण का ग्रहण भी जाने।

(ii) अनाभोग से – अचित्त समझकर मिश्र या सचित्त लवण लाए अथवा शक्कर माँगने पर दात्री ने लवण को शक्कर समझकर दे दिया।
ऐसा होने पर जिस भाजन से दात्री ने दिया, उसी में पुनः रखे। यदि दात्री न रखने दे तो स्वयं परठे। (टीप्पणक)

(b) परसमुत्थ – (i) आभोग से – कार्य के लिए मिट्टी माँगने पर दाता सचित्त मिट्टी दे।

(ii) अनाभोग से – लवण को शक्कर समझकर दे।

ऐसा होने पर पुनः दाता को ही वापस दे। यदि वह न ले तो पूछे – तू कहाँ से लाया? जहाँ कहे वहाँ जाकर परठे। यदि न कहे या 'नहीं जानता' कहे तो

Notes Date:

वर्ण-गंध-रस-स्पर्श से पहचान कर वहाँ परठे। यदि आकर न हो या रास्ते में हो या शाम हो गई हो तो सूखा मिट्टी का भाजन (टूटा हुआ) ढूंढे (दूर) उसमें वस्तु डालकर वृक्ष के नीचे रखे जिससे धूप या पानी (ओस) नहीं लगे। यदि मिट्टी का भाजन न हो तो वटवृक्ष या पीपल के पत्ते में रखकर परठे।

* आउकाय का ग्रहण –

ⓐ आत्मसमुत्थ – (i) आभोग से – विषकुंभ का हनन करने या विषफुंसी का सिंचन करने या विष खाने पर या मूर्च्छा से गिरने पर या ग्लान होने पर वि. कार्यों में पानी ग्रहण करे। [विषकुंभ = वातादि विकार से उत्पन्न महाफुंसी] पहले अचित्त, न हो तो अभी धोए हुए चावल का पानी वि. (टीपणक) मिश्र ले। आतुर कार्य होने पर सचित्त भी ले। कार्य होने पर शेष वहीं परठे। यदि वहीं न परठने दे तो पूछे- कहाँ से लाए? । जहाँ कहे वहाँ परठे। न कहे या न जानता हो तो वर्णादि से पहचानकर वहाँ परठे।

(ii) अनाभोग से – कोंकण देश में पानी और चावल का मांड एक वेदिका (परंडे) पर रखा जाता है। साधु स्त्री ~~से~~ मांड मांगे। स्त्री-इसमें से स्वयं ले लो। अनाभोग से साधु सचित्त पानी मांड समझकर ले ले तो यदि दात्री हाँ कहे तो पानी पुनः उसमें ही छोड़े। यदि हाँ न करे तो आकर में परठे।

ⓑ परसमुत्थ – (i) आभोग से – 'इन मुनि को सचित्त पानी चखने मिले' ऐसी अनुकंपा या 'इनका व्रत भंग हो' ऐसी कुबुद्धि से ग्रहस्थ का सचित्त पानी दे। अथवा इन्हीं कारणों से मिश्र पानी दे।

(ii) अनाभोग से – दाता अनाभोग से सचित्त या मिश्र पानी दे। अथवा साधु पहले अचित्त पानी वाले पात्र में अनाभोग से सचित्त या मिश्र पानी ले।

सचित्त पानी परठने की विधि – सचित्त पानी जानकर उसी जगह परठे। ~~यदि~~
- यदि दाता अनुज्ञा न दे ~~या स्थान न जाने~~ तो स्थान पूछकर वहाँ परठे।
- यदि स्थान न बताए या जानता न हो तो वर्णादि से पहचान कर वहाँ परठे।
- नदी का पानी नदी में परठे। ऐसे ही कुआँ, तालाब, बावड़ी वि.।

नदी में पानी परठने की विधि – यदि नदी के तट सूखे हो तो वटवृक्ष या पीपल के पत्ते को पानी की सपाटी के एकदम पास रखकर धीरे-धीरे उससे पानी ऐसे नीचे डाले, जिससे पानी की आवाज न हो (अन्य मत- पत्ते पर से पानी एक धार से गिरे, अनेक धार से नहीं)।
- यदि पत्ते न हो तो भाजन का मुख पानी की सतह के एकदम पास में रखकर धीरे से पानी नदी में परठे। (टीप्पणक द्रष्टव्य है)
- यदि नदी के तट सूखे न हों तो तट पर ही पानी धीरे से डाले, जिससे पानी बहकर नदी में मिल जाए। (टीप्पणक)

तालाबादि में परठने की यही विधि जानना।

कूएँ में पानी परठने की विधि – यदि अरघट्टादि से झरते पानी से कूएँ का तट गीला हो तो स्वयं नीचे न गिरे, ऐसी जगह स्थिर खड़े होकर धीरे से पानी गीले तट पर ऐसे डाले जिससे पानी नीचे कूएँ में उतर जाए।
- यदि कूएँ के तट गीले न हो या आसपास एक भी जगह ~~सूखी~~ गीली न हो तो पानी गृहस्थ के भाजन में लें। भाजन के ऊपर और नीचे एक-एक दोरी बांधे। ऊपरवाली दोरी से भाजन सीधा नीचे उतारे। पानी की सपाटी के एकदम पास में ले जाए। फिर नीचे वाली दोरी को धीरे-धीरे खींचे, जिससे भाजन उल्टा हो और पानी कूएँ के पानी में मिल जाए। (टीप्पणक द्रष्टव्य है)
- यदि कुआँ दूर हो या रास्ते चोर-पशु का भय हो तो वृक्ष के नीचे या छाया में पात्रे सहित पानी को रख दे।
- यदि पात्र Extra न हो तो गीली जमीन में धीरे से पानी परठे।
- यदि गीली जमीन न मिले तो पहले स्वयं के पास रहे अचित्त पानी

Notes Date :

से जमीन गीली कर परठे।
अथवा जहाँ कोई पशु का गमनागमन न हो ऐसे कीचड़ को खोदकर वृक्ष के पत्ते से परठे और ऊपर छाया करे (अर्थात् बड़े पत्थर या वृक्ष की शाखा वि. से उसे ढाँक दे)।

दाता यदि मिश्र पानी वोराए और उस पात्र में पहले कुछ वोरा न हो तो ऐसा मिश्र पानी परठे। कूएँ वि. में न डाले (टीप्पणक द्रष्टव्य है)।

साधु के अचित्त जल वाले पात्र में सचित्त या मिश्र पानी वोरे तो यदि वह पानी स्थंडिल भूमि तक पहुँचने में अचित्त हो जाए तो वापरे, नहीं तो परठे। यदि वहाँ ओस की बूँदें हों तो वे बूँद सूख जाए तब परठे। (टीप्पणक द्रष्टव्य है)

★ तेउकाय का ग्रहण—

(a) आत्मसमुत्थ-(i) आभोग से - सर्पदंश अथवा फुंसी, वात ग्रंथि, आँत की वृद्धि में जलन हो अथवा उदरशूल में सेक करना इत्यादि कार्य होने पर साधु अग्नि (राख) ग्रहण करे। कार्य होने पर पुनः वहीं डाले। यदि मालिक पुनः डालने न दे तो उन काष्ठों के समान जात वाले अग्निकाय में डाले। यदि यह भी न हो तो तज्जातीय राख से ढाँके। भक्तपत्याख्यानादि में पात्रे में राख रखकर रहे। कार्य होने पर वैसे ही विवेक (त्याग) करे।

(ii) अनाभोग से - कफ की कुंडी या लोच की राख में भूल से अग्नि के कण भी आ जाएँ।

(b) परसमुत्थ-(i) आभोग - कोई जानबूझकर राख में अंगारे मिश्र कर दे अथवा शत्रुता या अनुकंपा से वसति में अग्नि जलाकर प्रकाश करे। इसमें भी वैसे ही विवेक करे।

(ii) अनाभोग से - शेरी वि. भूल से अंगार सहित है। वैसे ही विवेक करे।

अग्नि - सचित्त - अचित्त - मिश्रभेद से 3 प्र. का -
अचित्त - जो पाषाणादि अग्नि के वर्ण को प्राप्त न हो, मात्र गर्म हो।
सचित्त - अंगारादि।
मिश्र - पाषाणादि कहीं वह्निरूपता को प्राप्त, कहीं नहीं। (टीप्पणक)

★ वाउकाय का ग्रहण -
(a) आत्मसमुत्थ - (i) आभोग से - यहाँ बस्ति या दृति का कार्य हो सकता है। वह बस्ति या दृति की हवा सचित्त - अचित्त - मिश्र हो सकती है। (विशेष विधि और सचित्तादि ↓* वायु का काल वि. पिंडनिर्युक्ति में देखना)। यहाँ पहले अचित्त, न होने पर मिश्र, न होने पर सचित्त भी लो।

(ii) अनाभोग से - 'यह अचित्त है' ऐसा समझकर मिश्र या सचित्त लो।

(b) परसमुत्थ - (i)(ii) आभोग - अनाभोग से - दूसरा भी जानते या अजानते सचित्त या मिश्र बस्ति - दृति दे।
मिश्र या सचित्त जानने पर उस दाता को ही वापस दे। यदि वह न माने तो Pack Room में दरवाजा बंद कर धीरे से वायु निकाल दे। Room न हो तो शाला में। न हो तो वननिकुंज में। न हो तो बड़ा कपड़ा (संघाटी) चारों ओर ओढ़ लें, उसमें जयणा से वायु निकालें। (टीप्पणक)
यह विधि बस्ति और दृति दोनों के लिए है। सचित्त - अचित्त - मिश्र कोई भी वायु ऐसे ही परठे जिससे अन्य हवा की विराधना न हो।

~~★ वनस्पतिकाय का ग्रहण -~~
~~(a) आत्मसमुत्थ - (i) आभोग से -~~
~~* बस्ति या दृति के अचित्त में से सचित्त या मिश्र होने का काल -~~

Notes Date:

काल २५ - स्निग्ध और रूक्ष। दोनों ३-३ प्रकार के - उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य।

स्निग्धकाल →	उत्कृष्ट	मध्यम	जघन्य
अचित्त	प्रथम पोरसी	द्वितीय पोरसी	तृतीय पोरसी
मिश्र	द्वितीय "	तृतीय "	चतुर्थ "
सचित्त	तृतीय "	चतुर्थ "	पंचमी "

रूक्ष काल →	जघन्य	मध्यम	उत्कृष्ट
अचित्त	३ दिन	४ दिन	५ दिन
मिश्र	४ "	5 "	6 "
सचित्त	5 "	6 "	7 "

यदि दृति से पानी में तैरना हो तो १०० हाथ में ~~मिश्र~~ अचित्त, दूसरे १०० हाथ में मिश्र, तीसरे १०० हाथ में सचित्त। इसमें काल का नियम नहीं है क्योंकि पानी स्वभाव से ही शीतल है। (विशेष पिंडनिर्युक्ति में)

★ वनस्पति का ग्रहण –

(a) आत्मसमुत्थ – (i) आभोग से – ग्लानादि का कार्य होने पर मूलादि का ग्रहण करे।
सचित्त भी मूलादि ~~मात्र~~ वि. (घाव) पर घिसकर उपयोग करे (टीप्पणक)

(ii) अनाभोग से – ग्रहण किए भक्त में गेहूँ वि. धान्य का आटा या धूली ग्रहण किया हो। वह सचित्त-अचित्त-मिश्र हो सकता है।
यहाँ आटे के सचित्त-अचित्त-मिश्र का काल वायु जैसे जानना।

टीप्पणक → यहाँ वायुकाय जैसे ही काल विभाग जानना। विशेष यह कि वायुकाय में अचित्त से मिश्र और सचित्त होने का काल कहा था, यहाँ

सचित्त आटे से मिश्र और अचित्त होने का काल जानना। तथा पहले स्निग्ध काल में पोरसी और रूक्षकाल में दिन कहे थे, यहाँ व्यत्यय करना।

[

स्निग्धकाल →	उत्कृष्ट	मध्यम	जघन्य
सचित्त	3 दिन	4 दिन	5 दिन
मिश्र	4 "	5 "	6 "
अचित्त	5 "	6 "	7 "

रूक्षकाल →	जघन्य	मध्यम	उत्कृष्ट
सचित्त	1 पोरसी	2 पोरसी	3 पोरसी
मिश्र	2 "	3 "	4 "
अचित्त	3 "	4 "	5 "

]

यदि आटा बि. मूल्य से कोर ले तो दात्री को पूछे कि आटा पीसाए हुए कितना समय हुआ, यदि दात्री 1 प्रहर कहे (रूक्ष काल में) तो सचित्त, 2 प्रहर कहे तो मिश्र, 3 प्रहर कहे तो अचित्त जानना। अचित्त होने पर परठने की जरूर नहीं है।

यह स्थूलता से कहा है। यदि कोई आटा बहुत बारीक पीसा हो तो जल्दी और स्थूल पीसा हो (धूली बि.) तो बहुत काल तक भी सचित्त हो सकता है।

अभी आटा बि. पीसने के बाद 2 घड़ी का वर्जन ही देखा जाता है। तत्त्वं तु केवलिनो वदन्ति।

(b) परसमुत्थ - (xii) आभोग-अनाभोग से - कोई आलू Mix कर खाद्य वस्तु दे या चवले के साथ पीलु (?) Mix करे या चावल के मांड के साथ कोई सचित्त वस्तु Mix कर दे या कांजी में करमदे डालकर दे (करमदे कांजी में खटास के लिए कहीं,

Notes Date :

डाले जाते हैं) या कांजी में अन्य बीज वि. गिरा हो, वह अनाभोग से दे अथवा तिल का अनाभोग से ग्रहण हो

चैत्रमास में कहीं पर नीम के पत्ते तिल के साथ पीसकर हृदय की शुद्धि के लिए 'निंबतिल' बनाए जाते हैं, उसमें कभी अनाभोग से सचित्त तिल का ग्रहण हो।

इनमें ग्लानादिकार्य के लिए लौटे हुए भूत्यादि सचित्त का प्रयोजन सिद्ध होने पर शेष पूर्वोक्त और आगे कही जाने वाली विधि से परठे।

जो आटा वि. अनाभोग से लौटे उसमें- यदि वे अलग करना शक्य हो तो अलग कर दायक की अनुज्ञा लेकर जिस भाजन से उसने दिया, उसी में डाले।

- यदि अनुज्ञा न दे तो अलग निकालकर शीतल और अचित्त प्रदेश में परठे।
- यदि सलेपवस्तु में गिरे हुए अलग करना शक्य न हो तो उस पूरी वस्तु को जयणा से परठे।

प्र. संथारे या दंड पर पनक संमूर्च्छिम हो जाए तो क्या विधि?

उ. विहार में न हो तो जब तक पनक सूखे नहीं तब तक उपकरण का उपयोग न करे।

- यदि विहार में हो तो पूरे उपकरण को परठे।
- यदि उस उपकरण बिना न चले तो यदि वह पनक उष्ण देश में उत्पन्न हुई हो तो उष्ण प्रकृति वाली जानकर उष्ण प्रदेश में परठे।

शीतल प्रदेश में उत्पन्न हुई हो तो शीतल प्रकृति वाली जानकर शीतल प्रदेश में उतना भाग परठे।

प्र. वनस्पति के अधिकार में पनक का विचार क्यों?

उ. क्योंकि वह वनस्पति ही है। यह सबसे सूक्ष्म वनस्पति है, व्यवहार में आने वाली वनस्पतियों में इससे सूक्ष्म वनस्पति नहीं है।

हरिभद्रीय वृत्ति अव. यहाँ तज्जात-अतज्जात पारिस्थापनिका पृथ्व्यादि की कही किंतु लक्षण नहीं कहा। अत: उसका लक्षण —

भा. 206 तज्जातपारिस्थापनिका आकरादि में जानना। अतज्जातपारिस्थापनिका कर्परादि में जानना।

★ कर्पर = कपाल वि.।

अव. एकेंद्रिय पारिस्थापनिका कही। अब नोएकेंद्रियपारिस्थापनिका (देखें गा.2 Pg. 92) —

गा. 5 सुविहित शिष्य। नोएकेंद्रियों की पारिस्थापनिका क्रमश: 2 प्र. की है। — त्रसप्राणों की और नोत्रस की।

★ सुविहित शिष्य। आमंत्रण से कुशिष्य का व्यवच्छेद।

★ त्रसप्राण = त्रस जीव। नोत्रस = आहारादि।

गा. 6 त्रसप्राणों की पारिस्थापनिका क्रमश: 2 प्र. — विकलेंद्रिय त्रस और पंचेंद्रिय की।

गा. 7 विकलेंद्रियों की पारिस्थापनिक 3 प्र. — द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिंद्रिय। यह प्रत्येक 2 प्र. — तज्जात, अतज्जात।

★ बेइंद्रिय जीवों का ग्रहण —

ⓐ आत्मसमुत्थ → जलो वि. (जीवविशेष - खराब खून चूसने वाले) घाव वि. के लिए ग्रहण किए हों तो कार्य होने पर वहीं परठे।

टीप्पणक → घाव वि. पर लगाने के लिए सक्तु ग्रहण किया हो, वह यदि लट वि. से संसक्त हो तो लट वि. को निकालकर दायक के भाजन में डाले। यदि दायक ना को तो कुछ सक्तु के साथ निर्व्याघात प्रदेश में परठे।

Notes Date:

→ संसक्त देश में संसक्त सक्तु का ग्रहण हो तो क्या करे ?
उ.-जिस देश में भक्तपान संसक्त होते हैं वह साधु को जाना ही नहीं चाहिए।
- यदि अशिवादि कारणों से जाना पड़े तो जहाँ सत्तु संसक्त होता हो वह चावल की याचना करे।
- यदि चावल न मिले तो उसी दिन बनाया हुआ सत्तु ले।
- यदि न हो तो दूसरे दिन का, न हो तो तीसरे दिन का सक्तु ले।
- न हो तो गृहस्थ भाजन में ही देख-देख कर ले।
- यदि ऐसे खोजने में वेला का अतिक्रम हो या वे साधु मार्ग में हों तो वे शंकित सत्तु अलग मात्रक में ग्रहण करे। फिर उद्यान-देवकुल या उपाश्रय के बहिर्देश में रत्नांजला बिछाकर उसके ऊपर एक घन और कोमल पल्ला रखे। फिर अलग ग्रहण किए हुए सत्तु उस पर डाले। फिर 3 बार प्रत्युपेक्षणा करे- एक साधु देखे, फिर दूसरा, फिर तीसरा। यदि 3 साधु न हो तो एक ही साधु 3 बार देखे।
पहली बार में त्रस वि. न दिखे तो दूसरी बार, न दिखे तो भी तीसरी बार करे।
पहली बार में त्रस वि. दिखे तो तब तक प्रत्युपेक्षणा करे जब तक लगातार 3 बार एक भी जीव न दिखे।
3 बार लगातार एक भी जीव न दिखने के बाद सक्तु के बीच में से 3 मुट्ठी लेकर प्रत्युपेक्षणा करे। यदि शुद्ध हो तो वापरे। यदि जीव दिखे तो पुनः शुरु से प्रत्युपेक्षणा करे।
यहाँ पाठान्तर बहुत हैं। मेरे द्वारा तो यह आवश्यक चूर्णि के अनुसार व्याख्या की गई। शेष पाठ भी प्रायः अर्थ से अविसंवादी ही हैं।

→ सत्तु में जो प्राणी निकले उन्हें परठने की विधि-
- उन जीवों को कुछ सत्तु के साथ अलग मात्रक में रखे फिर उसी गृहस्थ के भाजन में परठे वि.।

→ प्र. यह तो भक्त की विधि कही। जिस क्षेत्र में पानी भी संसक्त होता हो वहाँ

क्या विधि?

3. द्वितीय पात्र में संशोधन कर अन्य शुद्ध पानी वाले पात्र में डाले।

- यदि रसज जीवों से संसक्त हो तो पात्र सहित पानी परठे।
- यदि पात्र Extra न हो तो गीला अंबिली नामक भाजन की याचना करे।
- गीला न हो तो सूखा भी मांगे। उसे अम्ल से गीलाकर संसक्त अम्ल पानी उसमें डाले।
- यदि सूखा भी न हो तो अन्य भाजन में ~~खटास~~ खटास करने के लिए अंबिली के बीज (जिनमें ~~से~~ चावल वि. से खट्टा पानी कांजी बनती है) धोवन पानी वि. से मिश्र कर डाले। फिर संसक्त पानी परठे।
- यदि अंबिली बीज न मिले तो खाली में भी संसक्त पानी डाले।
- यह भाजन पुनः गृहस्थ को दे। यदि गृहस्थ न ले तो पानी सहित कोई निर्व्याघात स्थान में परठे। (पातिहारिक भाजन)
- यदि कोई गृहस्थ भाजन वापस देने की शर्त पर दे तो भाजन में संसक्त पानी डालकर उपाश्रय में रखे और रोज तीन Time देखे। जब जीव च्यव जाएँ तब पानी परठे।
- यदि जीव न च्यवे और पानी सूखने लगे तो और पानी डालकर तब तक रखे जब तक जीव च्यवे नहीं। जीव च्यवे तब पानी परठकर भाजन गृहस्थ को दे।
- यदि भाजन न मिले तो निर्व्याघात स्थान में वृक्षादि की छाया में गड्ढा खोदे। उसे बीच में लीपकर छिद्र रहित करे। मधुर वृक्ष के पत्ते से धीरे-धीरे पानी परठे। संसक्त पानी से खरड़ा हुआ भाजन असंसक्त पानी से 3 बार धोकर पानी वहीं परठे।

फिर पात्र प्रक्षालन करे। सूक्ष्म लकड़ियों से वह गड्ढा अंतर रहित ढाँके। ऊपर कीचड़ से छिद्र रहित लीपे। ऊपर काँटे वाली झाड़ी रखे।

यहाँ जो भी विशेष मैंने कहा है वह आवश्यक चूर्णि अनुसार कहा है, स्वबुद्धि से नहीं।

Notes Date:

जिस भाजन में संसक्त पानी ग्रहण किया हो उसमें ठंडा पानी न ले क्योंकि वह भी संसक्त हो सकता है। एक-दो या ३ दिन तक ओसामण या चावल (गर्म) ले।

संसक्त-असंसक्त पानी एक ही साथ न रखे क्योंकि असंसक्त पानी भी संसक्त की गंध मात्र से संसक्त हो जाता है।

संसक्त पानी लेकर गोचरी वि. नहीं जा सकते अथवा गोचरी वापर नहीं सकते। क्योंकि उससे जीवों की विराधना होती है।

यदि विहारादि से थका हो तो जो साधु गोचरी न गए हों उन्हें दे दे।

यदि अंदर मरे हुए जीव दिखे तो संसक्त पानी का ३ साधु पडिलेहन करे, यदि शुद्ध हो तो वापरे।

पानी की विधि कही। तक्र की विधि पानी की तरह जानना।

→ संसक्त दहीं और मक्खन की विधि —

- धाने हुए दहीं और मक्खन से एक भाग लेकर तक्र में डाले। यदि दहीं में जीव होंगे तो उसमें दिखेंगे।

- यदि तक्र न हो तो दहीं वि. से खरड़ी थाली के धोवन में डाले, यह भी न हो तो ठंडे पानी में, न हो तो चावल के पानी में डाले।

शुद्ध हो तो वापरे। संसक्त हो तो उक्त विधि से परठे।

प्र. यदि धाना हुआ दहीं भी संसक्त होता है तो धाने बिना का दहीं संसक्त है या नहीं कैसे जाने?

उ. दहीं के भाजन को ऊपर-नीचे, आगे-पीछे हिलाए। यदि जीव होंगे तो किनारों पर दिखेंगे।

→ कक्कब = गन्ने से शक्कर बनने में बीच की एक stage। इसमें संसक्त कि की यही विधि है।

⑥ परसमुत्थ – पर भी आभोग-अनाभोग से संसक्त भक्त-पान-दही वि. है तो उपर्युक्त विधि जानना।

★ त्रीन्द्रिय ग्रहण –

- सक्तु वि. में जीव का ग्रहण और परठने की विधि पूर्ववत् जानना।
- तिल के कीड़े, दही में रल्ल (तेइंद्रिय जीव विशेष), कंडे के कृमि, संथारे में घुण वि. जानने पर उसी प्रकार के काष्ठ में संक्रमण करे।
- यदि वस्त्र में दीमक हो जाए तो वस्त्र ही परठे। यदि न परठ सके तो वस्त्र को दीमक के बिल के पास रखे जिससे दीमक बिल में घुस जाए।
- लोच के बाद बाल में 7 दिन तक जू देखे। यदि विहार वि. हो तो एक बार देखकर निर्व्याघात शीतल प्रदेश में परठे।
- कीड़ों से व्याप्त पानी छोरे तो पानी छाने।
- यदि शुद्ध पानी में जीव अचानक गिरे तो भक्त से खरड़े हुए हाथ से भी उन्हें निकाले।

प्र. खरड़े हुए हाथ से निकाले तो पानी भक्त अवयवों से सलेप होगा और वह पानी वापरने से पच्चक्खाण भंग होगा?

उ. जीवदया में प्रवृत्त होने से और बहुत गुण होने से पानी सलेप नहीं होता। यह जब अकेला साधु छोरने गया हो तबकी बात है। यदि दो साधु छोरने गए हों तो एक साधु गोचरी छोरे, दूसरा पानी। गोचरी छोरने वाले के हाथ खरड़े होंगे, वह पानी में न डाले। दूसरा साधु पानी में हाथ डाले।

- यदि चावल के पानी वि. में पोरे दिखें तो उस पानी विस्तीर्ण मुख वाले पात्रे में डाले। ऊपर गरणा बांधे। फिर पानी मिट्टी के वासण से या कटोरी वि. से ऊपर से निकाले (गरणा ढीला बांधे)। थोड़े पानी सहित पोरे को सुरक्षित स्थान में परठे। थोड़ा पानी लकड़ी में लेकर उसके पास रखे जिससे वे जीव स्वयं उस पानी में चढ़ जाए। (हरिभद्रीय वृत्ति)
- यदि पानी में कीड़ी मरी हो तो भी पानी छाने क्योंकि कीड़ी पेट में जाने से बुद्धि का नाश और मक्खी जाने से उल्टी होती है।

Notes

Date:

- पुड़ले-चावल वि. में कीड़ी हो तो पोले स्थान में रखे जिससे कीड़ी अंदर चली ~~जाए~~ जाए। एक मुहूर्त तक ध्यान रखे जब तक कीड़ी चली जाए।

ऐसे तेइंद्रिय जीव बहुत प्रकार के होने से किसी जीव का ग्रहण हो तो इनके स्थान पर या निर्व्याघात जगह परठे।

★ चउरिंद्रिय का ग्रहण – चउरिंद्रिय मखमक्षिका आँख से पुष्पिका निकालती है अतः ग्रहण की जाती है।

- दाता के हाथ में रहे घी वि. में मक्खी गिरे, तो वह अग्राह्य।
- यदि साधु के वहोरने के बाद गिरे तो तुरंत बाहर निकाले और यदि चिकनी वस्तु (घी वि.) में गिरी हो तो निकालकर राख में रखे।
- मधुमक्खी यदि वस्त्र-पात्र में घर बनाए तो पूरा परठे। Extra न होने पर उतना भाग अलगकर परठे। अथवा अन्य घर में संक्रमण करे।
- संथारे ग्रहण करने के पहले मकोड़े हों तो अग्राह्य। ग्रहण करने के बाद हो तो पादलुंछन से रोज 3 बार प्रमार्जे। प्रमार्जना के बाद भी यदि संसक्त हो तो अन्य काष्ठ वि. में संक्रमण करे।
- पोरे वि. को पूर्वोक्त विधि से परठे।

(टीप्पणक द्रष्टव्य है)

अव. विकलेंद्रिय त्रस की पारिस्थापनिका कही। पंचेंद्रिय पारिस्थापनिका – (देखें गा. 6-7 Pg 101) –

गा. 8 पंचेंद्रियों की पारिस्थापनिका 2 प्र. – मनुष्यों की, नोमनुष्यों की (तिर्यंच की)

गा. 9 मनुष्यों में 2 प्र. – संयत मनुष्यों की, असंयत मनुष्यों की।

गा. 10 संयत मनुष्यों में 2 प्र. – सचित्त और अचित्त।

अव. सचित्त संयतों का ग्रहण और पारिस्थापनिका का संभव –

गा. 11 अनाभोग से, या कारण से नपुंसकादि विषयक सचित्त पारिस्थापनिका। नपुंसक

को त्याग। शेष का काल की प्रतीक्षा करना।

★ नपुंसकादि को अनाभोग से या कारण से दीक्षा दे-देने पर सचित्त संयत मनुष्य पारिस्थापनिका होती है।
आदि शब्द से बहुत मोटे वि. लेना।

★ यदि अनाभोग से दीक्षित किया हो तो परठे। कारण से दीक्षित किया हो तो कारण पूरा होने तक प्रतीक्षा करे।

अब. दीक्षा देने के कारण –

गा.12 अशिव दुर्भिक्ष राजद्विष्ट-भय ग्लानत्व उत्तमार्थ ज्ञान दर्शन ~~तप~~ चारित्र, ये सब आगाढ़ होने पर दीक्षा दे।

★ इन आगाढ़ अशिवादि होने पर जो नपुंसकादि उपकार करे, उसे दीक्षा दे।

टिप्पणक → राजद्विष्ट-भय → राजा और शत्रु से भय होने पर राजवल्लभादि नपुंसक को रक्षा के लिए दीक्षा दे।
ग्लान → नपुंसक स्वयं वैद्य हो या उसका कोई संबंधी, तो उसे दीक्षा देने से ग्लान का उपकार करे।
ज्ञान-दर्शन → गुरु से ज्ञान और दर्शन प्रभावक शास्त्र पढ़ते हुए यह भक्त-पान वि. से उपकार करे।
चरण → जहाँ चारित्र पालना शक्य न हो, वैसे देश से गण निकलने पर मार्गादि में स्वजनादि के बल से भक्तपानादि और तस्करादि रक्षण द्वारा उपकार करे।
अशिव-दुर्भिक्ष → भक्त-पानादि लाए।
उत्तमार्थ → सुगम। (काल होने वाला हो तुरंत तो दीक्षा दे?)

हरिभद्रीय वृत्ति
★ जो नपुंसक अशिवादि कारणों से दीक्षित किया जाए, वह 2 प्र. - ज्ञायक या अज्ञायक।
ज्ञायक - वह जानता हो कि साधु को नपुंसक को दीक्षा देना अकल्प्य है।
अज्ञायक - नहीं जानता।

Notes Date:

इसमें यदि ज्ञायक हो तो समझाए कि तुझे प्रव्रज्या योग्य नहीं है, मार्ग की विराधना होगी अतः घर में रहकर साधु की भक्ति कर तो विपुल निर्जरा होगी। यदि वह मान जाए तो ठीक।

यदि अज्ञायक हो और दीक्षा के लिए उपस्थित हो तो ~~ठी~~ कारण होने पर दीक्षा देते हुए यह यतना करे -

भा.13 करिपट्ट, शिखा-मुंडन, पाठ, धर्मकथा, संज्ञी ~~को~~, राजकुल में व्यवहार हो तब त्याग करे।

★ दीक्षा देते हुए चोलपट्ट न पहनाए, करिपट्टक करे और कहे - दीक्षा लेते हुए हमें भी ऐसा ही किया था।

★ शिखा का लोच न करे, कैंची से काटे।

यदि लोग जानते हों कि यह नपुंसक है तो लोच भी करे। यदि लोग न जानते हो तो लोच न करे, जिससे लोग जाने की यह गृहस्थ ही है।

★ पाठ = 2 प्र. शिक्षा।

ग्रहण शिक्षा में उसे भिक्षुकादि के मत सीखाए, न माने तो हमारे शास्त्र में रहे परतीर्थिक के मत सीखाए, न माने तो हमारे शास्त्र भी गलत अर्थ से पढ़ाए अथवा आलापक उत्क्रम से दे।

आसेवन शिक्षा में चरण-करण उसे न सीखाए किंतु विचारगोचर में स्थविर से युक्त रहे, रात में तरूणों से दूर रहे (?)। यदि कहे कि मुझे भी सीखाओ तो स्थविर यत्न से उसे सीखाए - वैराग्य कथा, विषयों की निंदा। उठने-बैठने में गुप्त ऐसे तरुण भूल करने पर गुस्से की तरह तर्जना करे। (?)

★ उसे विपरिणाम होने पर धर्म कथा करे। कार्य होने पर साधु उसे कहे कि तुझे दीक्षा ठीक नहीं है, तू परलोक में भी अनुव्रत मत छोड़ना।

★ संज्ञी = श्रावक। यदि वह नपुंसक समझाने पर भी दीक्षा छोड़ने न माने कोई खरकर्मी (गुंडे जैसा) श्रावक या पूर्व में शिक्षित भद्रक श्रावक उसे डराए - तुम्हारे बीच में ये नपुंसक कहाँ से? जल्दी भाग नहीं तो मारूँगा। साधु भी उसे कहे - जल्दी भाग जा नहीं तो यह अनार्य मार डालेगा। यदि भाग जाए तो अच्छा।

कभी वह 'ये मुझे दीक्षा देखकर निकाल रहे हैं' ऐसी राजकुल में फरियाद करे और राजकुल के लिए वह अज्ञात हो, अन्य कोई भी दीक्षा का साक्षी न हो तो साधु कहे - यह साधु नहीं है, देखो इसकी वेशभूषा। यदि उसने साधु की तरह ही चोलपट्टा पहना हो तो कहे - इसने स्वयं वेश पहना है।

तब वह कहेगा -

गा.14 इनके द्वारा ही मुझे सीखाया गया है। तब साधु पूछे - तू क्या पढ़ा है?। वह छलितकथादि बोलेगा। साधु कहे - कहाँ यति, कहाँ छलितादिकथा?

गा.15 सूत्र तो पूर्वापरसंयुक्त, वैराग्यकर, स्वतंत्र, अविरुद्ध, पुराना, अर्धमागध भाषा में होता है।

गा.16 (इस कारण से) जो सूत्रगुण कहे गए हैं, उनसे विपरीत सीखाए। कारण पूर्ण होने पर त्याग में यही यतना है।

अव. कभी वह बहुत स्वजन वाला या राजवल्लभ होने से त्याग करना शक्य न हो तो यह यतना करे -

गा.17 एक गीतार्थ उसके साथ कापालिक या सरजस्क या रक्तपट लिंग में रहे। राजा वि. विशिष्ट कुल के पुत्र की दीक्षा होने पर उसे छोड़ दिया।

गा.18 तरुण गीतार्थ उसे भिन्न कथा (?)

गा.19 तेरे साथ आता हूं, कहकर भिक्षा वि. में ले जाए और रास्ते में छोड़कर भाग जाए।

टिप्पणक

अ → अन्य आचार्य - यदि यह इस देश में छोड़ना शक्य नहीं हो तो अन्य देश में छोड़े। अन्य देश में न जा सके तो राजा को श्रीगृह का दृष्टांत कहे - राजन! यदि आपके भंडार से कोई रत्न चुराए तो आप क्या करोगे? x राजा - राज्य से निकाल दूंगा x साधु - यह नपुंसक भी हमारे ज्ञानादि रत्न का नाश करता है अतः हम इसे छोड़ते हैं।

Notes Date:

हरिभद्रीय

वृत्ति अव. नपुंसक की विधि कही। अब 'बहुत मोटे' की विधि-

गा.20 जाड़ा उप.- भाषा जड्डु, शरीर जड्डु, करण जड्डु। भाषा जड्डु उप.- जलमूक, एलकमूक, मम्मण।

★ जलमूक= पानी में डूबे हुए की तरह बुड़बुड़ करे, कुछ समझ न आए ऐसे शब्द वाला।

एलकमूक = भेड़ की तरह बे-बे करने वाला।

मम्मण = जिसकी वाणी स्खलित हो (तोतला)।

★ मम्मण को कभी मेधावी समझकर दीक्षा दे। किंतु जलमूक और एलकमूक को दीक्षा देना कल्पता नहीं है।

अव. जलमूक-एलकमूक (भाषा जड्डु) को दीक्षा न देने के कारण-

गा.21 दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप-समिति-करण-योग में उपदिष्ट को भी ये मूक ग्रहण नहीं कर सकते।

गा.22 दीक्षा ज्ञान के लिए होती है। भाषाजड्डु ज्ञान के लिए असमर्थ है। मूक हमेशा बधिरा होता है। अतः जोर से उसे पढ़ाने पर प्रवचन का उड्डाह। जोर से बोलने पर भी न समझे तो पढ़ाने वाले को गुस्सा आने से अधिकरण।

अव. शरीर जड्डु -

गा.23 शरीर जड्डु उप.- पंथ में, भिक्षा में और वंदन में। इन कारणों से दीक्षा नहीं कल्पती।

गा.24 मार्ग में, भिक्षा में, ~~वंदन में~~ पलिमंथ। वंदन में असमर्थ। शरीर जड्डु में ये दोष होते हैं। गच्छ में शरीर जड्डु अनुज्ञात है।

★ मार्ग में शरीर जड्डु धीरे चलने से पीछे हो जाए तो खड़े रहने में अन्य साधुओं को पलिमंथ। गोचरी जाने में भी असमर्थ। ~~होने से~~ वंदन में असमर्थ।

★ ज्ञानादि रूप कारण होने से गच्छ में उसकी अनुज्ञा है। दीक्षा पहले दुबला हो, बाद में शरीर जड़ हो तो भी अनुज्ञा है।

अव. शरीर जड़ की दीक्षा में अन्य दोष –

गा.25 (टीप्पणक –) जाड़ा चलने में थक जाता है, श्वास चढ़ जाता है। ग्लान होने पर करवट बदलने वि. में असमर्थ होता है। उठने-बैठने में या अग्नि-सर्प-पानी के उपद्रव में जल्दी नहीं कर सकता। मोटे को बीमारी बहुत होती है अतः असमाधि मरण हो सकता है।

गा.26 (टीप्पणक –) गर्मी में उसे वात वि. में बहुत पसीना होने से fungus होती है। अतः पानी से धोना पड़े, पानी से धोने में नीचे रहे जीव मरे। तथा ये साधु गत्ते तक खाने वाले हैं, चोर नहीं है (क्योंकि भाग नहीं सकते), कुछ तत्त्व वि. नहीं जानते मात्र खाते हैं" वि. बाद लोगों में चले।

अव. कारण जड़ –

गा.27 ईसमिति, ३गुप्ति, चरण-करण की क्रियाओं में कर्मोदय से स्थिर न हो वह कारण जड़।

गा.28 उत्सर्ग से इसे भी दीक्षा न दे। यदि कारण से दीक्षा दे तो विधि बाद में कहता हूँ।

अव. मेधावी ब्राह्मण को दीक्षा दे किंतु मेधारहित को न दे। यदि मेधारहित को कारण से दीक्षा दे तो विधि – (टीप्पणक)

गा.29 ग्लानकार्य सिवाय प्रत्येक में ६ मास तक संभाले, जिसे देखकर जड़त्व दूर हो उसका शिष्य अथवा त्याग।

★ कुल में, गण में, संघ में क्रमशः 6-6 मास पढ़ाए। ~~की~~ जिसके पास जड़त्व दूर हो तो उसका शिष्य। 18 मास में जड़त्व दूर न हो तो उसका त्याग करे।

★ ~~अनाभोग~~ कारण से शरीर जड़ को दीक्षा दी हो तो यावज्जीव संभाले।

Notes Date :

गा. 30 करण में जड्ड को 6 मास तक संभाले, ठीक न हो तो कुल-गण-संघ को इकट्ठा कर निवेदन करे ('जिसकी इच्छा हो इसे ले जाओ)।

अव. सचित्त मनुष्य संयत पारिष्ठापनिका कही। अचित्त संयतमनुष्य पारिष्ठापनिका- (गा. 8-10 Pg. 106) –

गा. 31 आशुकार, ग्लान अथवा क्रमशः प्रत्याख्यान में अचित्त हुए संयतों का विधि से व्युत्सर्जन करूँगा।

* आशुकार = जल्दी अचित्त करने वाले सर्पविष, विसूचिकादि।
ग्लान = बिमार
प्रत्याख्यान = शरीर परिकर्म के क्रम से भक्तप्रत्याख्यान करने पर जो अचित्त हुआ हो।

गा. 32 ऐसे कालधर्म होने पर सूत्रार्थ का सार ग्रहण करने वाले मुनि द्वारा विषाद करने योग्य नहीं है, विधि से व्युत्सृजन करे।

अव. मृतक परठने की विधि –
गा. 1273 1. प्रतिलेखना 2. दिशा 3. वस्त्र 4. दिन या रात काल 5. घास के पुतले 6. पानी 7. निवर्तन 8. तृण 9. सिर 10. उपकरण
गा. 1274 11. उत्थान 12. नामग्रहण 13. प्रदक्षिणा 14. काउसग्ग 15. क्षपण-असज्झाय
(द्वार गा.) 16. अवलोकन।

अव. 1. प्रतिलेखना द्वार-
गा. (प्रक्षिप्त) जहाँ साधु मासकल्प या चातुर्मास रहे वहाँ गीतार्थ पहले ही 3 महास्थंडिल भूमि का पडिलेहन करे।

अव. 2. दिशा द्वार –
गा. 33 पश्चिम दक्षिण, दक्षिण, पश्चिम, दक्षिणपूर्व, पश्चिमोत्तर, पूर्व, उत्तरपूर्व, उत्तर।

गा. 34 प्रथम दिशा में प्रचुर अन्नपान, दूसरी में भक्तपान प्राप्त नहीं होते। तृतीय में उपाधि वि., चौथी में सज्झाय नहीं है।

गा. 35 पाँचवी में झघड़ा, 6ठी में गणभेद जानना। सातवीं में ग्लानत्व, 8वीं में मरण कहते हैं।

★ पश्चिम-दक्षिण दिशा में महास्थंडिल भूमि पडिलेहन करना चाहिए है- आसन्न, मध्य, दूर।

प्र. 3 भूमि का क्या कारण?

उ. कोई भूमि में विघ्न हो जैसे खेत जोता हो, पानी से भरा हो, वनस्पति हो गई हो, प्राणों से संसक्त है, गाँव बस गया हो, सार्थ ठहरा हो।

इस दिशा में भूमि करने से भक्त-पान-उपकरण प्राप्त होते हैं।

★ यह दिशा होते हुए भी यदि पश्चिम दिशा में भूमि पडिलेहन करे तो यह दोष - भक्तपान प्राप्त नहीं होते, इससे संयम विराधना या एषणा का भंग (दोषित गोचरी वापरना)
- भिक्षा न मिलने से मासकल्प का भंग (मासकल्प छोड़कर विहार करना पड़े)
- जाते हुए मार्ग में विराधना - संयमविराधना, आत्म विराधना।

अतः प्रथम न होने पर दूसरी भूमि दक्षिण दिशा में पडिलेहन करे।

★ दूसरी भूमि होने पर भी तीसरी का पडिलेहन करने में दोष- उपकरण प्राप्त नहीं होते। उपकरण न मिलने से गच्छ को होने वाली दिक्कत का दोष प्रत्युपेक्षकों को लगता है।

★ चौथी भूमि के पडिलेहन में दोष - चौथी दक्षिणपूर्व में परठने से स्वाध्याय नहीं होता।

5वीं पश्चिमोत्तर भूमि में दोष- संयत-गृहस्थ या अन्यतीर्थिकों से झगड़ा होता है जिससे प्रवचन उड्डाह और विराधना।

Notes Date :

छट्ठी पूर्व दिशा के दोष - गण का भेद या चारित्र का भेद।
सातवीं उत्तर दिशा - ग्लानत्व और परितापनादि।
8वीं पूर्वोत्तर दिशा - अन्य की भी मृत्यु हो।

अब 3. वस्त्र द्वार -
वस्त्र की जितनी लंबाई-चौड़ाई कही है, उससे अधिक प्रमाण वाला साफ, शुचि और श्वेत वस्त्र ले। साफ यानि जिसमें मैल या चित्र न हो। शुचि = सुगंधी। श्वेत = सफेद। ऐसे वस्त्र गच्छ में जघन्य से 3 रखे - एक नीचे पाथरे, एक मृतक को पहनाकर दोरी से बांधे, एक ऊपर ओढ़ाए। ये 3 जघन्य से, उत्कृष्ट से गच्छ को जानकर ले।
यदि न ले तो प्रायश्चित्त और आज्ञादि ब दोष। मैले वस्त्र देखकर लोक निंदा करे - इसलोक में भी ये ऐसे हैं तो मरने के बाद भी शोभा प्राप्त नहीं करेंगे। साफ कपड़ों से प्रशंसा करते हैं कि धर्म सुंदर है।
अथवा ऐसा सोचे कि 'साफ वस्त्र नहीं है तो रात में मृतक परठूँगा' तो रात को मृतक रखने से मृतक उठने वि. दोष। यदि मृतक उठकर किसी को पकड़े तो विराधना।
ये वस्त्र गीतार्थ रखते हैं और पाक्खि-चौमासी-संवत्सरी पर पडिलेहन करे। यदि रोज पडिलेहन करने से वस्त्र मैले होते हैं।
क्योंकि

गा. 36 गच्छ में निमित्त बिना ही मरण हो तो पहले से ही द्रव्य, वस्त्र और काष्ठ का ग्रहण करे।
* जहाँ रहना हो वहाँ पहले से ही तृण-डगल-राख वि. द्रव्य, वस्त्र तथा अर्थी बनाने की लकड़ी ले ले।
* वस्त्र की विधि कही अब लकड़ी ग्रहण की विधि -
वसति में रहने जाते हुए ही गृहस्थ के घर में रहे वहनकाष्ठ देखकर रखे। कोई अनिमित्त से ही कालत्व करे और एक साधु उठाने में समर्थ न हो तो काष्ठ न ले। किंतु एक साधु रात में उठाने में समर्थ न हो तो जितने साधुओं से उठे

उतने साधु पूर्व में प्रतिलेखित काष्ठ से ले जाए। यदि रात को साधु गृहस्थ को उठाए तो गृहस्थ सोए नहीं और पानी भरना वि. काम करे तो अधिकरण दोष इसलिए उठाना न पड़े तो पहले से काष्ठ वि. देखकर रखे।
जिस काष्ठ से साधु मृतक ले जाते हैं, उस काष्ठ को यदि वहीं परठ दे तो अन्य द्वारा ग्रहण करने से अधिकरण दोष संभव है। अथवा गृहस्थ स्वयं के घर में रही लकड़ी न देखे तो 'ये साधु ले गए' ऐसे गुस्सा होकर वसति का व्युच्छेद करे या पूरे गच्छ को मारे वि. दोष। अतः काष्ठ वापस लाना चाहिए, वहीं परठना नहीं।
यदि लकड़ी वापस हाथ में लेकर घर में प्रवेश करे तो गृहस्थ मिथ्यात्व पामे कि ये तो कहते थे कि पूछे बिना हम कुछ नहीं लेते किंतु लकड़ी तो पूछे बिना ले गए। अथवा निंदा करे कि प्रलयुक्त लकड़ी ला रहे होने से ये तो भंगी से भी गंदे हैं, ऐसे प्रवचन उड्डाह करे या वसति वि. का व्युच्छेद करे। अतः इन दोषों से बचने के लिए एक साधु लकड़ी लेकर बाहर रहे, बाकी सब घर में प्रवेश करे। यदि गृहस्थ जागा न हो तो लकड़ी जहाँ से ली हो वहीं वापस वैसे ही रख दे। यदि वह जाग गया हो तो उसे पूछे – 'रात होने से आपको उठाया नहीं, यह साधु रात को कालधर्म पा गया इसलिए लकड़ी से हम ले गए थे, अब लकड़ी यहाँ लाए या नहीं?' वह जैसा कहे वैसा करो।
साधु ने रात को लकड़ी वैसे ही रख दी हो और सुबह उठने के बाद गृहस्थ को खबर पड़े कि ये लोग इससे मृतक ले गए थे। वह बहुत गुस्सा हो। तब आचार्य कपट से पूछे- कौन ले गया? शिष्य- इसने किया। आ. उस साधु को डाँटकर बाहर निकाल दे।
यदि गृहस्थ कहे कि 'इसे मत निकालो, अब ऐसा मत करना' तो ठीक। नहीं तो आ. दूसरे साधु को भी निकाले। दूसरा साधु कपट से कहे- 'ये मेरा स्वजन है अतः मैं भी जाऊँगा' अथवा गृहस्थ से झगड़ा करे तो आ. उसे भी निकाल दे। दोनों अलग वसति में रहे।
यदि बाहर इन्हें पशु वि. का भय हो अथवा वसति न हो तो सभी चले जाएँ।

Notes   Date :

अव. ५. कालद्वार – (गा. 1273 Pg. 112)

गा. 37 Same as गा. 32 (Pg 112)।

अव. अचानक काल होने पर –

गा. 38 जिस वेला में काल हो, कारण न होने पर उसी वेला में ले जाए। कारण होने पर रोके। छेदन, बंधन, जागरण। मात्रु का पात्ता। प्रांत या देवता

गा. 39 अन्याविष्ट शरीर में उठे तो उल्टे हाथ मात्रु छींटे और कहे 'मा उट्ठ बुज्झ गुज्झगा'।

गा. 40 वह वित्रास करे या भयंकर हँसे या अट्टहास न छोड़े तो नहीं डरते साधु द्वारा विधि पूर्वक व्युत्सृजन करना।

★ दिन या रात जब काल हो तो कारण न होने पर उसी समय ले जाए।

★ कारण होने पर रखे। कारण – रात में कोटवाल-चोर-पशु का भय, रात को दरवाजा खोलते न हो, अथवा वह साधु नगरादि में बहुत famous हो या आचार्य हो या तपस्वी होने से प्रसिद्ध हो अथवा उनके स्वजन ने कहा हो कि हमें पूछे बिना मत ले जाना। अथवा उस देश में लोक व्यवस्था हो कि रात को मृतक न ले जाएं।

(रात को न ले जाने के कारण कहे। अब दिन में न ले जाने के कारण –) साफ वस्त्र न हो या नगरद्वार से सैन्य/राजा आ-जा रहा हो वि.।

★ जब मृतक को रखना हो तब छेदन वि. विधि करे। मृतक की उंगली के पर्व के बीच की रेखा में cut लगाए। हाथ-पैर के अंगुठे धागे से बांधे, संथारे पर धागो से बांधे। (दोनों हाथ, दोनों पैर के अंगुठे मिलाकर बांधे - टीप्पणक) शैक्ष-बाल और अपरिणत साधु को वहां से दूर करे। जो गीतार्थ, अभीरु, निद्रा को जीतने वाले, उपाय में कुशल, आशुकारी, महाबल वाले, सत्त्व वाले, दुर्जय, अभ्यास किया हो, अप्रमादी साधु हो वे मृतक के पास जागे।

* वे मात्रु पात्रे में लेकर बैठें। यदि मृतक उठे तो उल्टे हाथ से मात्रु लेकर उस पर छींटें।

यदि साधु छेदे या बांधे नहीं या सो जाए तो आज्ञादि दोष।
आज्ञादि दोष कैसे? – कोई शत्रु देव उस शरीर में प्रवेश कर उठे, नाचे, दौड़े तो दोष अतः मृतक का बंधन-छेदन कर जागना।
साधु के जागने पर भी यदि वह उठे तो उल्टे हाथ से मात्रु छींटे और कहे– मा उट्ठ बुज्झ गुज्झगा मा संथाराओ उट्ठेहि मा पमत्तो भव।

* यदि वह जागते हुए साधु को विकरालरूपादि दिखाए (वित्रास), डराने वाला हँसे (भीम), अट्टहास करे (रोम को खड़ा कर दे ऐसा शब्द) तो नहीं डरते हुए साधु विधि पूर्वक परठे।

* परठने की विधि –
जैसे ही मृत्यु हो वैसे ही हाथ-पैर सीधे कर दे क्योंकि शरीर अकड़ने से बाद में सीधे नहीं होंगे। आँख बंद करे। मुख पर मुहपत्ति बांधे। उंगली के बीच की रेखा काटे। पैर-हाथ के अंगूठे बांधे।
एक-दूसरे को कथा वि. कहे, जिससे नींद न आए।

अव. घास के पुतले –
गा. ५१ सार्द्धक्षेत्र वाले नक्षत्र में घास के 2 पुतले करे। समक्षेत्र में 1 पुतला। अपार्द्ध-अभीचि नक्षत्र में पुतले नहीं करना।
* काल होने पर नक्षत्र देखे, यदि न देखे तो असामाचारी। देखने पर ४५ मुहूर्त वाले नक्षत्र में 2 पुतले करे। यदि न करे तो अन्य 2 साधु काल करेंगे।

अव. ४५ मुहूर्त वाले नक्षत्र –
गा. ५२ 3 उत्तर, पुनर्वसु, रोहिणी और विशाखा ये 6 नक्षत्र ४५ मुहूर्त के योग वाले हैं।

* देखें टिप्पणक Pg.120 पर।

Notes Date:

* 3 उत्तर = उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपदा।

अव. 30 मुहूर्त वाले 15 नक्षत्रों में, पुतला करना। नहीं करने पर, साधु काल करेगा। 30 मुहूर्त वाले नक्षत्र -

गा.43 अश्विनी, कृत्तिका, मृगशीर्ष, पुष्य, मघा, फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, भद्रपदा

गा.44 रेवती, ये 15 नक्षत्र 30 मुहूर्त वाले पारिस्थापनिका विधि में कुशल मुनि द्वारा जानना।

* पूर्वफाल्गुनी, पूर्वभद्रपदा, पूर्वाषाढ़ा।

अव. 15 मुहूर्तवाले और अभीचि नक्षत्र में एक भी पुतला न करें। 15 मुहूर्त वाले नक्षत्र -

गा.45 शतभिषक, भरणी, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति, ज्येष्ठा ये 6 नक्षत्र 15 मुहूर्त के संयोग वाले हैं।

अव. 5. पुतले द्वार पूर्ण (द्वार गा.1273 Pg.112) | 6. पानी -

गा.46 सूत्र-अर्थ - उभय को जानने वाला साधु आगे पानी और घास लेकर चले। यदि श्रावक हो तो परठने के बाद शुद्धि करे।

* जिसने पूर्व में स्थंडिल भूमि देखी हो, वह आगमविधिज्ञ मुनि मात्रक में साफ पानी और घास लेकर आगे चले।

घास, हाथ और 4 अंगुल प्रमाण तथा परस्पर असंबद्ध लेना। यदि तृण न हो तो केशर या चूर्ण ग्रहण करें।

* मृतक परठने के बाद यदि गृहस्थ हो तो जिन साधु ने मृतक उठाया था, वे सब वहीं पर हाथ-पैर की शुद्धि करें। जिससे प्रवचन का उड्डाह न हो, वैसे सब करें।

अत. 7. निवर्तन द्वार –

गा.47 स्थंडिल का व्याघात हो अथवा अनाभोग से स्थंडिल भूमि के आगे निकल गए हो तो घूम-कर वापस आए। उसी पथ से वापस न आए।

* यदि स्थंडिल का व्याघात हो अर्थात् पानी-पशु-वनस्पति से संसक्त हो अथवा अनाभोग से आगे निकल गए हो तो स्थंडिल भूमि की प्रदक्षिणा न करते हुए अलग मार्ग से घूमकर वापस आए। यदि उसी मार्ग से वापस आए तो असमाचारी। क्योंकि –
मृतक जिधर उठता है, उधर ही दौड़ता है। उल्टे आने में उसके पैर गाँव की तरफ होंगे। कभी वह उठेगा तो गाँव की ओर दौड़ेगा।

अत. 8. तृण द्वार –

गा.48 एक कुश मुट्ठी से अव्युच्छिन्न धारा द्वारा संथारा पाथरे। सर्वत्र सम करे।

* स्थंडिल भूमि का पडिलेहन करने के बाद एक मुट्ठी में जितनी घास आए, उससे अव्युच्छिन्न धारा से संथारा पाथरे। वह संथारा सभी ओर से सम होना चाहिए।

अत. विषम संथारे में दोष –

गा.49 यदि तृण ऊपर-मध्य या नीचे से विषम हो तो मौन का मरण या ग्लानत्व कहा गया है।

गा.50 ऊपर आचार्य का, मध्य में वृषभ साधुओं का, नीचे सामान्य साधुओं का। तीनों की रक्षा के लिए सर्वत्र सम करे।

* संथारे के तीन भाग कल्पे है – ऊपर, मध्य, नीचे।

अत. यदि तृण न हो तो यह विधि –

गा.51 यदि तृण न हो तो चूर्ण या नागकेशर से ककार करे और नीचे तकार बांधे।

* चूर्ण या नागकेसर से अव्युच्छिन्न धारा से ककार करे और नीचे

Notes Date :

तकार बांधे। चूर्णादि न होने पर प्रलेपकादि से करे।
('त' आकार बनाना।)

टीप्पणक अभी सामाचारी में उल्टा दिखता है।
→

→*(Pg. 120) पुराने ज्योतिष ग्रंथों में इन नक्षत्रों की ऐसे ही स्थिति थी।
'अभी सभी नक्षत्र एकदिन के भोगी हैं' ऐसी स्थिति नहीं थी।

हरिभद्रीय
वृत्ति अव. 9. शीर्ष द्वार (देखें द्वार गा. 1273 Pg. 112) —
गा. 52 जिस दिशा में गाँव है, उस दिशा में सिर रखे। उठते हुए की रक्षा के
लिए संक्षेप में यह विधि है।
★ उपाश्रय से बाहर निकालते हुए भी पहले पैर बाहर निकालना।

अव. 10. उपकरण द्वार —
गा. 53 चिह्न के लिए उपकरण उसके पास रखे। चिह्न न करने पर दोष। वह
मिथ्यात्व पामे यों राजा गाँव का वधकरने लगे।
★ परठते हुए मृतक के पास यथाजात उपकरण – मुहपत्ति, रजोहरण, चोलपट्ट
रखे। यदि न रखे तो असामाचारी, आज्ञादि विराधना।
★ न रखने में लोग देखे तो राजा को कहे। राजा उपकरण न दिखने पर
सोचे 'इसको इन लोगों ने मार दिया है' अतः वह पूरे गाँव का वध
करे वि. दोष।
★ अथवा वह साधु देव बनकर पूर्वभव देखे तो उपकरण ~~कफन~~ पास में न होने से
वह मिथ्यात्व को पामे। eg. —
एक श्रावक सौराष्ट्र में दुकाल होने से भाता लेकर उज्जयिनी की ओर बौद्ध भिक्षुओं
के साथ चला × रास्ते में भाता खत्म हुआ × भिक्षु - यदि हमारा धर्म माने तो अन्न
दूँ × अन्य उपाय न होने से उसने स्वीकारा × एकदा उसे दस्त हो गए × कपड़े न
होने से दया से भिक्षु ने स्वयं के कपड़े दिए × नमो बुद्धाय: बोलकर बहुत दस्त

खाने से वह मर गया x देव बना x अवधिज्ञान से बौद्धवेश देखकर वह स्वयं आकर बौद्ध भिक्षुओं को स्वयं देने (परोसने) लगा x गाँव में आ. आए x श्रावकों ने बौद्ध धर्म के प्रभाव की बात की x आ.- परोसते हुए देव का हाथ पकड़कर 'नमो ऽर्हद्भ्यः' कहना x वह देव प्रतिबोध पाया xx (बृहत्कल्प उ.4 गा.5537)

अव. 11. उत्थान द्वार -

गा.54 वसति, निवेश, साही, गाँव के मध्य, गाँव का द्वार, गाँव-उद्यान के बीच, उद्यान-स्थंडिलभूमि के बीच, स्थंडिलभूमि में उठे तो

गा.55 (क्रमशः) वसति, निवेश, साही, आधा गाँव, गाँव, मंडल, कंड, देश, राज्य छोड़ना।

* मृतक ले जाते हुए यदि वसति में उठे तो वसति छोड़ना। निवेश में उठे तो निवेश छोड़ना। निवेश= एक दरवाजे वाले अनेक घर (पोल)। साही में उठे तो साही छोड़ना। साही= घरों की पंक्ति। (शेरी) गाँव में " आधा गाँव छोड़ना। गाँव के द्वार पर उठे तो गाँव छोड़ना। गाँव और उद्यान के बीच में उठे तो मंडल छोड़ना। मंडल= गाँवों का समूह। उद्यान में उठे तो कंड छोड़ना। कंड= मंडल से बड़ा क्षेत्र (तहसील या जिला)। उद्यान-स्थंडिल भूमि के बीच में उठे तो देश छोड़े। देश= मंडल से बड़ा क्षेत्र। स्थंडिल भूमि में उठे तो राज्य छोड़े।

* परठने के बाद भी गीतार्थ 1 मुहूर्त तक मृतक के पास खड़े रहे। परठने के बाद मृतक उठे और स्थंडिल भूमि में जहाँ उठे, वहीं गिरे तो उपाश्रय छोड़ना। स्थंडिल भूमि-उद्यान के बीच गिरे तो निवेश छोड़े। उद्यान में गिरे तो साही छोड़े। उद्यान-गाँव के बीच गिरे तो आधा गाँव छोड़े। गाँव के द्वार पर गिरे तो गाँव छोड़े। गाँव के बीच में गिरे तो मंडल छोड़े। साही में गिरे तो कंड छोड़े। निवेश में गिरे तो देश छोड़े। वसति में गिरे तो राज्य छोड़े।

Notes   Date :

Short में –

उठे	छोड़े	गिरे	छोड़े
वसति	वसति	स्थंडिल	वसति
निवेश	निवेश	उद्यान-स्थंडिल	निवेश
साही	साही	उद्यान	साही
गाँव में	आधागाँव	गाँव-उद्यान	आधागाँव
गाँवद्वार	गाँव	गाँव द्वार	गाँव
गाँव-उद्यान	मंडल	गाँव में	मंडल
उद्यान	कंड	साही	कंड
उद्यान-स्थं.	देश	निवेश	देश
स्थंडिल	राज्य	वसति	राज्य

भा.२०७ कलेवर उठने के क्रम से ज्यादा प्रवेश में कम जानना। विशेष गाँव के द्वार में दोनों समान होते हैं, यही ~~स~~ नानात्व है।

* मृतक परठने के बाद वापस उपाश्रय आए तो पुनः परठकर 2 राज्य छोड़ना। ऐसा तीसरीबार हो तो 3 राज्य छोड़ना। तीसरी से ऊपर जितनी बार हो 3 राज्य ही छोड़ना।

गा.८६ आशिवादि कारणों से बाहर न निकले तो जिसका जो तप हो, उससे योग वृद्धि करे।

* ऐसा होने पर राज्य वि. छोड़ना चाहिए किंतु आशिवादि कारणों से बाहर न निकले तो तप में वृद्धि करे। नवकारसी वाला पोरसी, पोरसी वाला पुरिमड्ढ करे। शक्ति होने पर आयंबिल करे, न होने पर एकासना, न होने पर बियासना करे। पुरिमड्ढ वाला उपवास, उपवास वाला छट्ठ करे।

अव. 12. नामग्रहण (द्वार गा. 1273 Pg. 112) –

गा. ५७ यदि मृतक १, २ या सबके नाम ले तो जल्दी लोच करे। गणभेद करे। ५ उपवास करे।

* जिन-जिनका नाम ले, उनका लोच करे।
गण से अलग कर अलग वसति में रहे।
५ उपवास, शक्ति न होने पर ४, ३, २, १ उपवास करे।

अव. १३. प्रदक्षिणा द्वार–
गा. ५८ जो ~~नि~~ जहाँ हो, वह वहाँ से ही वापस आए। प्रदक्षिणा न करे। उत्थानादि दोष। बालवृद्धादि की विराधना।
* परठकर सब प्रदक्षिणा किए बिना वापस आए। प्रदक्षिणा करने पर उठे तो बाल-वृद्धादि की विराधना हो सकती है।

अव. १४. ~~का~~ काउसग्ग द्वार –
गा. ५९ वहीं काउसग्ग करने में उत्थानादि दोष होते हैं। उपाश्रय आकर गुरु के पास विधि पूर्वक काउसग्ग करे।
* वहीं काउसग्ग करने में उत्थानादि दोष होते हैं अत: आकर चैत्यघर जाए। चैत्यवंदन कर शांति के लिए अजित-शांति स्तव बोले अथवा ३ थुई उल्टे क्रम से बोले। फिर गुरु के पास आकर अविधिपारिस्थापनिका के लिए काउसग्ग करे। यह वृद्ध संप्रदाय है।
वर्तमान आचरणा- सबसे छोटे पर्याय वाले मुनि उल्टा रजोहरण पकड़कर गमणागमणे आलोए। फिर इरियावहिया, चैत्यवंदन आदि।
अशिव होने पर यह विधि न करे।

* जो साधु उपाश्रय में रहे हैं, वे मात्र वि. परठकर वसति का प्रमार्जन करे।

अव. १५. ~~क्ष~~ क्षपक- अस्वाध्याय द्वार–

Notes Date :

गा.60 आचार्य या महाजन या स्वजन होने पर उपवास और अस्वाध्याय करे। शेष में नहीं।

* मृतक आचार्य या बहुत प्रसिद्ध होने पर या उसके बहुत सारे स्वजन वहीं हो और अधृति करते हों तो उपवास और अस्वाध्याय करे। शेष साधु के काल में न करे।

* अशिव होने पर उपवास न करे, योगवृद्धि अर्थात् पच्चक्खाण बढ़ाए। अविधि से पारिस्थापनिका का काउसग्ग भी न करे। उपाश्रय में मुहूर्त तक मृतक रखे, जब तक उपयुक्त न हो, वहाँ यथाजात न करे। (स्पष्टता टीप्पणक में)
जिस संथारे से मृतक ले गए थे, उसे टुकड़े-टुकड़े कर (टीप्पणक) परठे। यदि टुकड़े न करे तो असमाचारी। यदि कोई उसे ले तो अधिकरण दोष। देवी (शत्रु) उसे वापस वसति में लाए वि. दोष।

टीप्पणक → अशिव से मरने से अवज्ञा होने से मृतक के समीप में रजोहरण वि. यथाजात न रखे। वह देव बनकर एक मुहूर्त में उपयोग से स्वयं के शरीर को उपाश्रय में देखकर 'मैं साधु था' ऐसा जानेगा। श्मशान में चिह्न न होने से न जाने अतः वहीं यथाजात उपकरण रखे।

हरिभद्रीय
वृत्ति व. 16. अवलोकन द्वार (देखें द्वार गा. 1274 pg. 112) –

गा. 61 सूत्र-अर्थ में विशारद ऐसे स्थिर साधुओं द्वारा शुभाशुभ-गति के लिए दूसरे दिन भी अवलोकन करने योग्य है।

गा. 62 जिस दिशा में शरीर खींचा गया हो अथवा वहीं अक्षत हो, उस दिशा में क्षीर, सूत्र-अर्थ में विशारद मुनि शिव कहते हैं।

* शुभाशुभ जानने के लिए और गति जानने के लिए दूसरे दिन मृतक का अवलोकन करे। किंतु सभी साधुओं का मृतक नहीं देखना, आचार्य, महर्द्धिक, भक्त प्रत्याख्यात अथवा महातपस्वी का मृतक

ही देखना।

★ उनका शरीर जंगली पशु द्वारा जिस दिशा में खींचा गया हो, उस दिशा में भिक्षा सुलभ है और विहार सुखपूर्वक होता है। यदि शरीर वहीं अक्षत पड़ा हो तो उस देश में विहार सुखपूर्वक और भिक्षा सुलभ है। जितने दिन शरीर वहीं अक्षत रहे, उतने ~~दिन~~ वर्ष सुभिक्ष और सुखविहार जानना। यह शुभाशुभ हुआ।

अव. अब व्यवहार से गति—

गा. 63 यदि शरीर खेंचकर ऊँची टेकरी पर ले जाए तो वैमानिक, समभूमि में ज्योतिष्क या वाणव्यंतर, गर्ता में भवनवासी। यह संक्षेप से गति है।

अव. यह पूरी विधि कब करना। कब न करना वह कहते हैं—

गा. 64 यह पूरी विधि, साधु जिस क्षेत्र में हो वहाँ शिव होने पर करे। अशिव होने पर उपवास और कायोत्सर्ग का वर्जन करे।

अव. उपसंहार—

गा. 65 यह दिशा विभाग जानना। २प्र. का द्रव्य ग्रहण, व्युत्सृजन, अवलोकन और शुभाशुभगति के विशेष जानना।

★ दिशा विभाग मूलद्वार गा. 1273 (Pg 112) में रहा दिशा द्वार जानना, इससे शेष द्वारों का उपलक्षण जानना।

★ २प्र. का द्रव्य = पहले ग्रहण किए हुए वस्त्रादि, कालधर्म के बाद ग्रहण किए हुए कुशादि।

अव. अचित्त संयत पारिस्थापनिका कही (देखें गा. 8-10 Pg. 106, गा. 31 Pg. 112)। संयत मनुष्य की पारिस्थापनिका पूर्ण। अब असंयत मनुष्य की पारिस्थापनिका—

Notes हे सुविहित!　　Date :

गा. 66 असंयत मनुष्यों की पारिस्थापनिका क्रमश: २७. की है – सचित्त और अचित्त।

अव. सचित्त असंयत मनुष्यों की पारिस्थापनिका कहते हैं। इसका संभव –
गा. 67 साधुओं की वसति में बालक का व्युत्सृजन। उसे पानी के पथ पर या बहुत लोग वाले स्थान में छोड़े और अवलोकन करें।

★ कोई स्त्री साधुओं की वसति में बालक 3 कारण से छोड़ती है –

1. शत्रुता – इनका उड्डाह हो।
- किसी खंडितशीलवाली और गर्भवती साध्वी का साधु रजोहरणादि लिंग वापस ले ले। 'इन साधुओं ने मेरा वेश छीना' ऐसी शत्रुता से बालक को उपाश्रय में छोड़े।
- कोई परिव्राजिका, बौद्ध भिक्षुणी, दिगंबर साध्वी या भिक्षाचरी स्वयं के अपयश से बचने बालक को उपाश्रय में छोड़े कि इनका उड्डाह हो।

2. अनुकंपा – दुष्काल में कोई स्त्री बालक को छोड़ने की इच्छावाली 'ये साधु जीवों का हित करते हैं, इनकी वसति में छोड़ने से ये इसे भोजन देंगे अथवा शय्यातर या सेठ के घर छोड़ेंगे' ऐसा सोचकर बालक वसति में डाले।

3. भय – कोई विधवा या प्रोषितपतिका स्त्री स्वयं के पाप को छुपाने बालक साधु की वसति में डाले।

★ रोज वृषभ साधुओं द्वारा 5 बार वसति सभी ओर से देखी जानी चाहिए – सुबह, मध्याह्न, शाम, मध्यरात्रि; जिससे ये दोष न हो।

यदि किसी स्त्री को बालक छोड़ते हुए देखे तो जोर से चिल्लाए – यह स्त्री बालक को छोड़कर भाग रही है। तब लोग इकट्ठा होकर जो ठीक लगेगा वह करेंगे।

यदि स्त्री न दिखे, बालक दिखे तो जिस मार्ग से लोग पानी भरने

जाते हो, उस मार्ग पर बालक को रखकर उल्टा मुँह कर खड़े रहे जिससे किसी को पता न चले कि बालक साधु ने रखा है और ऐसा लगे कि साधु किसी को ढूँढ रहा है।
बालक को कोई कुत्ता, कौआ या बिल्ली मारे नहीं, उसका ध्यान रखे। जब कोई व्यक्ति बालक को देखे तब वह वसति में आ जाए।

अव. सचित्त असंयत पारिष्ठापनिका कही। अचित्त असंयत मनुष्य पारिष्ठापनिका –
गा. 68 शत्रु द्वारा शरीर डालने में या वनीपकादि में अचित्त असंयत मनुष्य पारि. होती है। कारण न होने पर काल की राह न देखे, परठे।
★ विग्रहान (विप्पजह) = शरीर का त्याग। विवेक (विगिंचण) = उपकरणों का त्याग।

★ कोई शत्रु उद्वाह करने के लिए मृतक वसति में डाले या कोई वनीपक वहाँ आकर मर जाए या कोई स्त्री-पुरुष वसति के आस-पास फाँसी लगाए। वहाँ वैसे ही पवार वसति देखना। सामने दिखने पर जोर से चिल्लाए जिससे इकट्ठे लोगों को जो ठीक लगे, वह करे।

★ ऐसा कलेवर देखने पर साधु late न करे, कोई कारण न होने पर कोई न देखे ऐसे जहाँ कोई रहता न हो ऐसी जगह परठे।
यदि कोई देखता हो या सुबह लोगों का संचरण चालू हो गया हो तो निःसंचार होने तक राह देखे।
यदि शव किसी अनाथ का लगता हो तो थोड़े लोग होने पर भी परठे।
यदि सुबह बहुत लोग हो तो पूरा दिन पसार कर रात को परठे।

उपर्युक्त पूरी विधि तब करना, जब उस शव को कोई ढूँढता न हो। यदि कोई ढूँढता हो तो उस ढूँढने वाले को ही शव सौंपे। उसे जो

Notes Date :

ठीक लगे, वह करें। यह विप्रजहना हुई।

विवेक (उपकरण का त्याग) –
यदि कोई खून से खरडी हुई तलवार वि. वसति में डाले तो उसे भी परठे।
यदि तलवार से खून के टपके गिरते हो तो न परठे क्योंकि खून के
टपके से राजपुरुष ढूँढते हुए 1-2 दिन में उपाश्रय आ जाएँगे। अतः
यहाँ जोर से चिल्लाना वि. विभाषा पूर्ववत् जानना।

अव. अचित्त-असंयत मनुष्य पारिष्ठापनिका कही। (गा. 66 पूर्ण Pg. 126) | गा. 8 (Pg
106) में मनुष्यों की पारिष्ठापनिका पूर्ण। नोमनुष्यपारिष्ठापनिका –
गा. 69 हे सुविहित! नोमनुष्य ऐसे तिर्यंचों में 2 प्र. की पारिष्ठापनिका – सचित्त, अचित्त।
गा. 70 चावल के पानी वि. में जलचरादि की सचित्त पारि.। जल-स्थल-खेचर मृत होने
पर अचित्त पारि.।

★ ओघनिर्युक्ति में पानी छानने की विधि बताई है। उस पानी में मेंढकी या
छोटी मछली पहले से हो और अनाभोग से ग्रहण हो जाए तब सचित्त
नोमनुष्य पारिष्ठापनिका।
उसे (जलचर जीव को) लेकर थोड़े पानी के साथ परठे। मेंढक के सामने
पानी रखे, पानी को देखकर वह उसमें चला जाएगा। मछली को पकड़कर
स्वयं अन्य पानी में डाले।

★ चावल के पानी वि. में आदि शब्द से भोजन से खरडे हुए भाजन का पानी
या गोरस-तेल वि. से खरडे हुए भाजन का धोवन पानी लेना।

★ कोई शत्रु मछली वि. (जलचर) वसति में डाले या चूहा-छिपकली वि.
(स्थलचर) मर जाए या हंस-कौआ-मोर वि. (खेचर) वसति में मरे हुए
गिरे तब अचित्त नोमनुष्यपारिष्ठापनिका संभव है।
उसमें यदि उड्डाह वि. दोषों का संभव हो तो एकांत में कोई न देखे
तब परठे या जोर से चिल्लाए वि. योग्य करें। यदि दोषों का संभव

न हो तो जब इच्छा हो तब परठे।

अव. सचित्त-अचित्त नोमनुष्य पारिस्थापनिका कही। गा. 8 (Pg. 106) पूर्ण। गा. 6 (Pg. 101) पूर्ण। गा. 5 (Pg. 101) त्रस जीवों का द्वार पूर्ण। अब नोत्रस जीवों की पारिस्थापनिका –

गा. 71 हे सुविहित। नोत्रस जीवों की पारिस्थापनिका क्रमशः 2 प्र. से – आहार में, नोआहार में।

★ नोआहार = उपकरणादि।

गा. 72 हे सुविहित। आहार विषयक पारिस्थापनिका क्रमशः 2 प्र. – जात, अजात।

★ जात = दोष से परित्याग के योग्य आहार विषयक।

अजात = अतिरिक्त निरवद्य आहार के त्याग विषयक।

अव. जात आहार पारिस्थापनिका –

गा. 73 आधाकर्म, लोभ, विष और आभियोगिक आहार ग्रहण करने पर दोषों से जात पारि. होती है। विधि पूर्वक इसका व्युत्सर्जन मैं करूँगा।

★ लोभ = लोभ से आहार ग्रहण किया हो।

विष = विषमिश्रित आहार " " "।

आभियोगिक = वशीकरण के लिए मंत्र से संस्कृत आहार ग्रहण किया हो।

★ उस आहार में कोई मक्खी गिरकर मरी हो या आहार ग्रहण के बाद चित्त स्थिर न रहता हो वि. चिह्नों से जानकर परठे।

गा. 74 एकांत-अनापात-सचित्त-गुरु उपदिष्ट स्थंडिल भूमि में राख से मिश्रित कर 3 बार श्रावण करने पूर्वक परठे।

★ 3 बार जोर से बोले कि 'इस दोष से दुष्ट यह आहार परठ रहा हूँ'।

★ यह विधि विशेष से विष-आभियोगिक ऐसे अपकारक आहार

Notes Date :

के लिए है, आधाकर्मादि के लिए नहीं। आधाकर्मादि की विधि आगे कहूँगा। (गा. 76 में)

अत. अजात पारिस्थापनिका –

गा. 75 आचार्य, ग्लान, प्राघूर्णक और दुर्लभ विशिष्ट द्रव्य का सहसा लाभ होने पर अतिरिक्त ग्रहण संभव है। उसकी यह अजात पारि. होती है। विधि से उसका व्युत्सृजन कहूँगा।

★ आचार्य, ग्लान या प्राघूर्णक के लिए या दुर्लभ विशिष्ट द्रव्य का अचानक प्राप्त होने पर अतिरिक्त ग्रहण हो सकता है।

गा. 76 एकांत, अनापात, अचित्त, गुरु उपरिष्ट स्थंडिल भूमि में प्रकाश में 3 पुंज करे। 3 बार श्रावण पूर्वक परठे।

★ प्रकाश में पानि प्रकार में 3 पुंज करे।

★ निर्दोष आहार परठे तो 3 पुंज करे।

मूलगुण से दुष्ट आहार परठे तो 1 पुंज करे। (प्राणातिपातादि मूलगुण)

उत्तरगुण से दुष्ट आहार परठे तो 2 पुंज करे। (आधाकर्मादि दोष)

गा. 74 में कहे अनुसार आधाकर्मादि की विधि यहाँ कही।

अत. आहारपारि. कही (गा. 71-72 Pg. 129)। नोआहारपारिस्थापनिका –

गा. 77 नोआहार में पारिस्थापनिका क्रमशः 29. – उपकरण में, नोउपकरण में।

★ नोउपकरण = श्लेष्मादि।

गा. 78 उपकरण में पारिस्थापनिका क्रमशः 29. – जात, अजात।

★ उपकरण = वस्त्रादि।

गा. 79 (प्रक्षिप्त) जात उपकरण पारि. वस्त्र और प्राप्त में जानना। वस्त्र के कोने मोड़ना और पात्र तोड़ना। अजात वस्त्र-पात्र में तुच्छ प्राप्त होने से कहूँगा।

में कपड़े के टुकड़े रखकर

Notes (ज्ञात) Date: 131

★ मूलगुणादि से दुष्ट वस्त्र को मोड़कर परठे और पात्र ~~तोड़कर परठे~~ ।
अज्ञात पारि. में वस्त्र निर्दोष होने पर सीधा रखे और पात्र खाली रखे।
यह शिष्य का अभिप्राय है।
~~इसमें से ज्ञात पारि. सही है~~। अज्ञात पारि. में अभिप्राय गलत होने से सिद्धांत आगे कहेंगे। —

गा.79 पारि. 29. - ज्ञात, अज्ञात, आभियोगिक और विष में शुद्ध-अशुद्ध पारि.।
मूल - उत्तर - शुद्ध में 1-2-3 ज्ञान।
★ ज्ञात पारि. - आभियोगिक, विषयुक्त और अशुद्ध वस्त्र पात्र की।
अज्ञात पारि. - शुद्ध वस्त्र पात्र की।

★ पूर्व (गा.78 में) निर्दिष्ट सिद्धांतानुसार
मूलगुण से दुष्ट वस्त्र में 1 गाँठ लगाए, पात्र में 1 रेखा करे।
उत्तरगुण " " 2 " " " 2 " ।
शुद्ध वस्त्र में 3 गाँठ और पात्र में 3 रेखा करे।
★ आभियोगिक और विषाक्त वस्त्र-पात्र टुकड़े-टुकड़े कर परठना चाहिए। 3 बार श्रावणा पूर्ववत्।

★ किसी साधु को काल होने पर या दीक्षा छोड़ने पर या कारण से अतिरिक्त वस्त्र पात्र लिए हो, उनका कार्य पूर्ण होने पर अतिरिक्त वस्त्र-पात्र विधि पूर्वक परठे, जिससे अन्य कोई गच्छ के साधु ढूँढते हो तो वे लेकर उसका उपयोग करे।

★ प्र. उपर्युक्त प्रक्षिप्त गाथा में शिष्य द्वारा कही गई विधि से परठने में क्या दोष है?
उ. मानो कि शुद्ध वस्त्र को सीधा परठा किन्तु ~~ह~~ हवा वि. से उसका Corner मुड़ने पर वह शुद्ध वस्त्र मूलगुण से अशुद्ध बन जाएगा।

Notes Date :

यदि दो corner मुड़ गए तो उत्तरगुण से अशुद्ध बन जाएगा।
ऐसे ही ~~यदि~~ मूलगुण से अशुद्ध वस्त्र का 1 corner मोड़कर परठा, यदि हवा वि. 1 corner सीधा हो गया तो वह शुद्ध और यदि 1 corner मुड़ गया तो उत्तरगुण अशुद्ध बन जाएगा।

ऐसे ही पात्र में 2 टुकड़े में से 1 टुकड़ा निकलजाने पर उत्तरगुण से अशुद्ध पात्र मूलगुण अशुद्ध हो जाएगा। इत्यादि दोषों की संभावना है।
ऐसे अशुद्ध वस्त्र-पात्र को शुद्ध समझकर लेने वाले अन्य साधु को भी दोष लगते हैं। अतः प्रसिद्ध गाथा में कही विधि योग्य नहीं है।

★ अतः वस्त्र में उपर्युक्त रीत्या गाँठ लगाना और पात्र के अंदर तल में सूक्ष्म रेखा करना। पात्रबंधक और रजस्त्राण बांधकर पात्र परठना। यदि पात्रबंधकादि Extra न हो तो ३ पात्र प्रतिलेखिका (पात्रे पडिलेहन करने के लिए पूर्वकाल में वस्त्र रखते थे) को पात्र पर लगाकर मुख धागे से बाँधकर परठे।
एकांत- अनापात स्थान में परठे।
पात्र का मुख ऊपर रखे। पात्र सीधा रहे ऐसी बैठक पात्र के नीचे न हो तो पात्र का मुख हवा की विरुद्ध दिशा में रहे, ऐसे आड़ा पात्र रखे।

★ ऐसे विधिपूर्वक परठने के बाद आहार-वस्त्र-पात्र यदि कोई गृहस्थ ले तो भी साधुओं को अधिकरणादि दोष नहीं लगता।

★ परठे हुए वस्त्र-पात्र जो अन्य साधु ग्रहण करे, यदि शुद्ध हो तो यावज्जीव वापरे। अशुद्ध हो तो शुद्ध वस्त्र-पात्र मिलने पर अशुद्ध वस्त्रादि परठ दे।

अब. जात-अजात उपकरण पारिस्थापनिका कही (देखें गा. 77-78 Pg. 130)।
अब नो उपकरण पारिस्थापनिका —

गा. 80 नो उपकरण पारिस्थापनिका क्रमश: 5 प्र. की है - उच्चार, प्रश्रवण, खेल, सिंघाण विषयक।

अब. परठने की विधि —

गा. 81 उच्चार करता हुआ साधु त्रस जीवों की रक्षा के लिए छाया करे।
2 प्र. के जीव, 2 प्र. के दिशा अभिग्रह।

गा. 82 पृथ्वी वि. स्थावर और त्रस जीवों की रक्षा के लिए यहाँ चतुर्भंगी।
प्रथम भांगा शुद्ध, शेष अप्रशस्त।

★ जिस साधु का उदर संसक्त हो अर्थात् जिस साधु को कृमि हो, वह निरुपभोग छाया में उच्चार का व्युत्सृजन करे। जिस वृक्ष की छाया का लोग उपयोग करते हो, वहाँ न करे। जिस वृक्ष के स्वयं के प्रमाण से छाया निकली हो, उस छाया में वोसिराए।
(क्योंकि वृक्ष के मूल के आस-पास 1-1 हाथ भूमि सचित्त हो सकती है, वृक्ष देवाधिष्ठित होने से देव का उपद्रव भी हो सकता है।)
ऐसे वृक्ष न होने पर स्वयं उच्चार पर छाया कर खड़ा रहे। जब जीव च्यव जाए तब हट जाए।

★ काय/जीव 2 प्र. - त्रस, स्थावर। प्रतिलेखन से स्थावर की रक्षा।
प्रमार्जना से त्रस की रक्षा

चतुर्भंगी —

	प्रतिलेखन	प्रमार्जन	
1.	✓	✓	दोनों की रक्षा
2.	✓	×	स्थावर की रक्षा, सूक्ष्म त्रसों की हिंसा।
3.	×	✓	स्थावर की हिंसा, त्रस की रक्षा।
4	×	×	दोनों की हिंसा।

Notes Date :

प्रतिलेखना-प्रमार्जना दोनों करने पर भी सुप्रतिलेखित-सुप्रमार्जित की चतुर्भंगी-

	सुप्रतिलेखित	सुप्रमार्जित
1.	✓	✓
2.	✓	×
3.	×	✓
4.	×	×

इन चार में भी प्रथम भांगा प्रशस्त। दोनों चतुर्भंगी का प्रथम भांगा आचरने योग्य है।

* दिशा अभिग्रह → मूत्र-पुरीष दोनों दिन में उत्तर दिशा में मुख रखकर करे, रात में दक्षिण दिशा में मुख रखकर करे।

* ज्ञात ग्रहण में भी सुप्रतिलेखित सुप्रमार्जित की चतुर्भंगी समझे। सूर्य-ग्रास को पीठ न करना वि. विधि ओघनिर्युक्ति की तरह जानना।

अब. शिष्य को हितशिक्षा —

गा. 83 गुरु के पास रहते हुए भी जो गुरु के अनुकूल नहीं होते, वे इन पदों से दूर-दूर होते हैं।

* अविनीत होने से उन्हें श्रुत ज्ञान परिणत नहीं होता।

पारिस्थापनिकानिर्युक्तिः समाप्ता॥

दीपणक

* (Pg. No. 69 पर) — Pg. No. 68 पर देखें 2^3 और (Last में) 5^2 किया है किंतु अतः यहाँ कहा है कि $(25)^3$ कर चुके हैं। अतः अन्तधन छोड़कर अन्त्यकृति ... वि. करते हैं।

→ अन्त्यकृतिः त्रिपूर्वगुणिता च स्थानाधिक्यं स्थाप्या ⇒ $(25)^3 \times 3 \times 6$ (पूर्व)

$= 11250$

स्थानाधिक कर स्थापना –

1	2	3	4	5
8				
6	0			
1	5	0		
	1	2	5	
1	1	2	5	0

इतने विस्तार से 'तावेव पूर्ववद्वर्गौ' पद की व्याख्या हुई। जिन पदों का (2, 5 का) पूर्वविधान किया था, उन्हीं का पूर्व की तरह वर्ग कर 3 और पूर्व की संख्या से गुणा वि. विधान किया। (देखें कृत्वा विधानं इत्यादि श्लोक Pg. 67 पर)

→ आद्यकृतिः अन्त्यगुणिता त्रिगुणा च स्थानाधिक्यं स्थाप्या ⇒

$(6)^2 \times 25$ (अन्त्य) $\times 3 = 2700$

स्थानाधिक पूर्वक स्थापना –

1	2	3	4	5	6
8					
6	0				
1	5	0			
	1	2	5		
1	1	2	5	0	
		2	7	0	0

→ घनस्तथाऽऽद्यस्य स्थानाधिक्येन स्थाप्यते – $(6)^3_7 = 216$

स्थापना –

1	2	3	4	5	6
8					
6	0				
1	5	0			
	1	2	5		
1	1	2	5	0	
		2	7	0	0
			2	1	6

Addition ⇒ 167772 16

Notes Date:

इतने विस्तार से 'वर्गघनौ कुर्यातां तृतीयराशेः' पद की व्याख्या हुई।
तृतीयराशि (6) का वर्ग-घन करें।

प्र. तृतीयराशि का वर्ग तो 'कृत्वा पूर्वविधानं' इत्यादि श्लोक में है
किंतु अन्त्य और 3 से गुण इस श्लोक में नहीं है तो कैसे लाए?

उ. 'ततः प्राग्वद्' पद से। जो सब मूलश्लोक में नहीं है वह सब
पूर्ववत् सब करना', ऐसा इस पद का अर्थ है।

यह सब कुछ पुस्तकों में नहीं दिखता है। दुर्गम होने से उन प्रतों
से निकाल दिया लगता है।

हरिभद्रीय वृत्ति-सूत्र पडिक्कमामि छहिं जीवनिकाएहिं - पुढविकाएणं आउकाएणं तेउकाएणं
वाउकाएणं वणस्सइकाएणं तसकाएणं। पडिक्कमामि छहिं लेसाहिं -
किण्हलेसाए नीललेसाए काउलेसाए तेउलेसाए पम्हलेसाए सुक्कलेसाए॥
पडिक्कमामि सत्तहिं भयठाणेहिं। अट्ठहिं मयट्ठाणेहिं। नवहिं बंभचेर-
गुत्तीहिं। दसविहे समणधम्मे। एक्कारसहिं उवासगपडिमाहिं। बारसहिं
भिक्खुपडिमाहिं। तेरसहिं किरियाठाणेहिं।

* छह जीवनिकायों द्वारा हुए अतिचारों से मैं पीछे हटता हूँ।

* छह लेश्याओं से हुए अतिचारों से मैं पीछे हटता हूँ।

कृष्णादि द्रव्यों की सहायता से जो आत्मा का परिणाम होता है, वह
लेश्या। कृष्णादि द्रव्य सभी प्रकृति के झरने स्वरूप हैं।

इन लेश्याओं का स्वरूप जामुन खाने वाले और ग्राम घातकों के
दृष्टांत से कहा जाता है -

जामुन खाने वालों का दृष्टांत → 6 पुरुषों ने पके हुए फल के भार से

झुके हुए एक जामुन के पेड़ को देखकर x उन्होंने कहा - हम जामुन खाते हैं x

कृष्ण लेश्या वाला - ऊपर चढ़ने में जीव का संदेह है अतः पेड़ को मूल से खोदकर खाएँ।

नील लेश्या वाला - पूरे पेड़ को खोदकर क्या काम? बड़ी-बड़ी शाखाएँ खोदो।

कापोत लेश्या वाला - छोटी डालियों को खोदो।

तेजो लेश्या वाला - गुच्छे तोड़ो।

पद्म लेश्या वाला - ऊपर चढ़कर फल ले लो।

शुक्ल लेश्या वाला - नीचे गिरे हुए फल खा लो।

ग्राम का घात करने वाले चोरों का दृष्टांत → चोर गाँव लूटने निकले।

कृष्ण लेश्या वाला - पशु-मनुष्य जो दिखे सबको मारो।

नील " - पशु को नहीं मनुष्य को मारो।

कापोत " - स्त्रियों को नहीं, पुरुषों को मारो।

तेजो " - सभी पुरुष को नहीं, शस्त्रसहित पुरुषों को मारो।

पद्म " - जो हमारे सामने लड़े, उसे मारो।

शुक्ल " - मात्र धन छीन लो।

प्रथम 3 अप्रशस्त, बाद में प्रशस्त। अप्रशस्त लेश्या में वृत्त हुआ, प्रशस्त में नहीं, यह अतिचार है।

★ नौ भयस्थानों से जो अतिचार हुआ हो, उससे मैं पीछे हटता हूँ।

इहलोकभय = मनुष्य को मनुष्य से भय, स्वजातीय से भय।

परलोकभय = विजातीय जैसे तिर्यंचादि से भय।

आदान भय = धन के लिए चोर वि. से भय।

अकस्मात् भय = बाह्य निमित्त बिना घर में रात को डर लगना वि.।

आजीविका भय = जीवन निर्वाह का भय।

Notes Date :

मरण भय

अयश भय - ऐसा करने पर बहुत अपश होगा ' ऐसा सोचकर प्रवृत्त न हो।

* मद = मान, उसके पर्याय, और वे मदस्थान। 8 मदस्थानों से जो अतिचार हुए हो उनसे मैं पीछे हटता हूँ।
जाति-कुल-बल-रूप-तप-ऐश्वर्य-श्रुत-लाभ।

* 9 ब्रह्मचर्यगुप्ति से हुए अतिचार मैं पीछे हटता हूँ।
1. वसति = ब्रह्मचारी को स्त्री-पशु-पंडक से संसक्त वसति का सेवन नहीं करना चाहिए।
2. कथा = अकेली स्त्री से बात नहीं करना चाहिए।
3. निषद्या = स्त्री जिस आसन से उठी हो, उस पर न बैठे।
4. इंद्रिय = स्त्रियों की इंद्रियाँ (अंगोपांग) न देखे।
5. कुड्यन्तर = दीवाल के पीछे रही मैथुन में संसक्त स्त्रियों की मैथुन संबंधी आवाज न सुनना।
6. पूर्वक्रीड़ित = पूर्व में की हुई क्रीड़ा का स्मरण न करे।
7. प्रणीत भोजन न करे। (स्निग्ध भोजन का त्याग)
8. अतिमात्रा = अतिमात्रा में आहार न ले।
9. विभूषा न करे।

* 10 प्र. के श्रमणधर्म में जो अतिचार हुआ हो, उससे मैं पीछे हटता हूँ।
खंती य मद्दवज्जव मुत्ती तव संजमे य बोद्धव्वे।
सच्चं सोयं आकिंचणं च बंभं च जइधम्मो॥
क्षान्ति = क्रोध त्याग। मार्दव = मान के त्याग पूर्वक वर्तन। आर्जव = माया त्याग। मुक्ति = लोभ त्याग। तप = 12 प्र.। संयम = आश्रव से अटकना। सत्य। शौच = संयम प्रति निरुपलेपता (पवित्रता)। आकिञ्चन्य =

* Pg. 140 पर टिप्पणक।

Notes Date: 139

कनकादि से रहितता। ब्रह्मचर्य।

अन्य मत- खंती मुत्ती अज्जव मद्दव तह लाघवे तवे चेव।
संयम चियाग ऽकिंचण बोद्धव्वे बंभचेरे य॥
लाघव= अप्रतिबद्धता। त्याग= अन्य साधुओं को वस्त्रादि का दान।
शेष समान।

* 9. 3 गुप्ति, 4 कषाय, 9 ब्रह्मचर्य गुप्ति, 10 श्रमणधर्म वि. से हुए अतिचारों का प्रतिक्रमण तो 'इच्छामि ठामि' सूत्र (Pg. 29 पर) में ही हो चुका है। तो यहाँ वापस क्यों कहा?
उ. वहाँ सामान्य से कहा था, यहाँ ~~सूक्ष्म~~ विशेष कहा।

* 11 उपासक प्रतिमाओं से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।
दंसणवय सामाइयपोसह पडिमा अबंभसचित्ते।
आरंभपेसउद्दिट्ठ वज्जए समणभूए य॥

1. दर्शन प्रतिमा= सम्यग्दर्शन से युक्त, शंकादि शल्य रहित, शेष (सामायिकादि) गुणों से रहित रहना।
2. व्रत प्रतिमा= व्रतधारी। (बाद की प्रतिमा में पूर्व-पूर्व की प्रतिमा के नियम भी जानना)
3. सामायिक प्रतिमा= सामायिक करना।
4. पौषध प्रतिमा= चौदस-आठम वि. दिनों में चारों प्रकार के पौषध संपूर्ण पाले।
5. प्रतिमा प्रतिमा= पौषध में एकरात्रिकी प्रतिमा यानि एक रात काउसग्ग करे।
*1 स्नान न करे, रात्रिभोजन त्याग करे, कछोटा न बांधे, पौषध में न होने पर दिन में ब्रह्मचर्य पाले और रात्रि में परिमाण करे, पौषध में रात्रि में भी अवश्य ब्रह्मचर्य पाले। ये सब नियम 5 मास तक करे।
6. अब्रह्मवर्जक प्रतिमा= 6 मास तक ब्रह्मचर्य पाले।
7. सचित्त वर्जक प्रतिमा= 7 मास तक सचित्ताहार न वापरे।
8. आरंभ वर्जक प्रतिमा= 8 मास तक स्वयं कोई आरंभ न करे।

Notes Date:

9. द्रव्य प्रयोग वर्जक प्रतिमा = 9 मास तक नौकरों से भी आरंभ न कराए।

10. उद्दिष्ट वर्जक प्रतिमा = 10 मास तक स्वयं के लिए बना हुआ आहार न वापरे। उस्तरे से मुंडन करे या चोटी रखे। कोई भंडारादि के बारे में पूछे तो सच कहे या खबर न हो तो 'मैं नहीं जानता' कहे।

11. श्रमणभूत प्रतिमा = साधु की तरह रजोहरण-पात्रे ले किंतु ममत्व त्याग न किया होने से स्वजन के यहाँ व्होरने जाए और प्रासुक आहार ग्रहण करे।

इन 11 प्रतिमाओं में वितथ प्ररूपणा और अश्रद्धा वि. से अतिचार होता है।

टीप्पणक (* पृ. 139 पर) पहले श्रावकों के लिए रात्रिभोजनत्याग आवश्यक नहीं था इसलिए यहाँ रात्रिभोजन त्याग कहा।

→ यह 5वीं प्रतिमा मतांतर से ~~दिन~~। रात में चारों आहार का त्याग करने वाले श्रावकों को होती है।

हरिभद्रीय वृत्ति ★ 12 भिक्षु प्रतिमा में हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।

भिक्षु = उद्गम-उत्पादन-एषणादि से शुद्ध भिक्षा वापरने वाले।

मासाई सत्तंता पढमाबिति सत्तराइदिणा।
अहराई एगराई भिक्खूपडिमाण बारसगं॥

मासाई से लेकर 7 मास तक 7 प्रतिमा (फिर 7 के बाद) प्रथम-द्वितीय-तृतीय प्रतिमा 7-7 अहोरात्र। 11वीं प्रतिमा 1 अहोरात्र, 12वीं प्रतिमा 1 रात्रिकी।

संघयण और धृति से युक्त, महासत्त्वशाली, गुरु द्वारा अनुज्ञात मुनि जिनमत में प्रतिमा स्वीकारते हैं। जो गच्छ में रहकर ही निर्मत्ति = परिकर्म से तैयार हुए हों।

जघन्य ज्ञान = 9वें पूर्व की 3 वस्तु। उत्कृष्ट = 10 पूर्व में कुछ न्यून।

वे मुनि व्युत्सृष्ट देह वाले यानि देह संबंधी परिकर्म (आँख में से कचरा निकालना वि.) से रहित और त्यक्त देह वाले यानि ममत्व रहित

होते हैं। इसी कारण से वे जिनकल्पी की तरह उपसर्ग सहन करने में समर्थ होते हैं।

उनकी एषणा अभिग्रह वाली होती है और भक्त अलेपकृत होता है। एषणा के 7 प्र. (पृ. 31 पर) में से अंतिम 5 प्र. ही कल्पते हैं।

1. मासिक प्रतिमा = गच्छ से निकलकर 1 मास तक 1 भोजन की 1 दत्ति और पानी की 1 दत्ति ले। प्रतिमा पूरी होने पर गच्छ में आ जाए।

2.-7. द्विमासिकी... सप्त मासिकी प्रतिमा = 1-1 दत्ति बढ़ाना।

8. प्रथम सप्तरात्रिकी प्रतिमा = 7 दिन तक उपवास के पारणे उपवास, पारणे में आयंबिल। उपवास चौविहार करे। गाँव के बाहर रहे। सीधे सोए हुए या करवट से सोए हुए या बैठे हुए निष्प्रकंप होकर दिव्य उपसर्ग सहन करे।

9. द्वितीय सप्तरात्रिकी प्रतिमा = वांदणा की मुद्रा में या मुड़ी हुई लकड़ी की तरह (   ) अथवा दंड की तरह सीधे खड़े होकर उपसर्ग सहन करे।

10. तृतीय सप्तरात्रिकी प्रतिमा = गोदोहिका आसन अथवा वीरासन अथवा आम्र वृक्ष की तरह कुछ झुकी हुई काया वाला रहे।

11. एक अहोरात्रिकी प्रतिमा = चौविहार छट्ठ करे। दूसरे उपवास में गाँव-नगर के बाहर स्थिर खड़े रहे।

12. एक रात्रिकी प्रतिमा = चौविहार अट्ठम करे। तीसरे उपवास में रात को कुछ झुकी हुई काया से, पलक झपकाए बिना और एक पुद्गल पर दृष्टि स्थिर कर दोनों पैर के बीच 4 अंगुल का अंतर रखकर स्थिर रहे।

शेष विस्तार दशाश्रुतस्कंध से जाने।

★ 13 क्रियास्थानों से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूं।
क्रिया = कर्मबंध के कारण रूप चेष्टा। उसके स्थान = भेद, पर्याय।

Notes Date :

अट्ठाणट्ठा हिंसाऽकम्हा दिट्ठी य मोसऽदिण्णे य।
अब्भत्थमाणमेत्ते मायालोहेरियावहिया॥

1. अर्थक्रिया (अर्थ दंड) = अर्थ के लिए, प्रयोजन पूर्वक क्रिया करना। स्वयं या पर के लिए त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा करना।

2. अनर्थक्रिया (अनर्थदंड) = गिरगिट वि. त्रस काय और लता वि. स्थावर काय को निष्प्रयोजन मारना-तोड़ना।

3. हिंसा दंड = 'मुझे मारा था या मारता है या मारेगा' ऐसी बुद्धि सर्पादि या वैरी वि. की हिंसा करे।

4. अकस्मात् क्रिया = बाण किसी को मारने फेंका किंतु अन्य मर गया अथवा धान्य उगाने के लिए Extra उगे हुए घास को छेदना वि.।

5. दृष्टिविपर्यास क्रिया = मित्र को शत्रु मानकर मारे अथवा गाँव वि. लुटाने पर अचोर को चोर समझकर मारे।

6. मृषा क्रिया = स्वयं या पर के लिए मृषावाद करे।

7. अदत्तादान क्रिया = स्व या पर के लिए अदत्त लेना।

8. अध्यात्म क्रिया = किसी ने कुछ न कहा हो तो भी कुविकल्पों से दुष्ट मन वाला होना। (क्रोध-मान-माया-लोभ भी अध्यात्म क्रिया ही है)

9. क्रोध क्रिया = क्रोध करना।

10. मान क्रिया = जात्यादि 8 मदों से मत्त होकर दूसरे की हीलना करना (मन से) निंदा करना (वचन से), पराभव करना (काया से)।

11. ~~माया क्रिया~~ = मित्रदोष क्रिया = अल्प अपराध में भी माता-पितादि स्वजनों को दहन-ताड़न-बंधनादि तीव्र दंड करना।

12. माया क्रिया = मन में अलग, वचन में अलग, काया से अलग वर्तन।

13. लोभ क्रिया = बहुत सावद्य-आरंभ-परिग्रह में आसक्त, स्त्री और विषयों में गृद्ध स्वयं का रक्षण करे और दूसरे का वध-बंधनादि करे।

14. ईर्यापथिकी क्रिया = समिति-गुप्ति से सुगुप्त, सतत अप्रमत्त ऐसे भगवत् अणगार की चक्षु की पलक हिलाना भी सूक्ष्म ईर्यापथिका क्रिया है।

Notes Date: 143

सूत्र- चोद्दसहिं भूयगामेहिं पन्नरसहिं परमाहंमिएहिं सोलसहिं गाहासोलसएहिं सत्तरसविहे संजमे अट्ठारसविहे अबंभे एगूणवीसाए णायज्झयणेहिं वीसाए असमाहिठाणेहिं।

★ १४ जीवों के समूहों से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।

एगिंदियसुहुमियरा सण्णियर पणिंदिया य सबीतिचऊ।
पज्जत्तापज्जत्ता भेएणं चोद्दसग्गामा॥

जीव

एकेंद्रिय — बेइंद्रिय — तेइंद्रिय — चउरिंद्रिय — पंचेंद्रिय

सूक्ष्म, बादर — प. अप. — प. अप. — प. अप. — संज्ञी, असंज्ञी

प. अप. प. अप. — प. अप. प. अप.

अथवा १४ जीवसमूह गुणस्थानक के भेद से-

मिच्छादिट्ठी सासायणे य तह सम्ममिच्छदिट्ठी य।
अविरयसम्मद्दिट्ठी विरयाविरए पमत्ते य॥
तत्तो य अप्पमत्तो नियट्टिअनियट्टिबायरे सुहुमे।
उवसंतखीणमोहे होइ सजोगी अजोगी य॥

1. मिथ्यादृष्टि कोई जीव समूह।
2. सास्वादन= तत्त्वश्रद्धा के रसास्वाद के साथ वर्तता। जैसे घंट बजाने के बाद कुछ देर तक रणकार चलता वैसे ही सम्यक्त्व छोड़ने के बाद भी मिथ्यात्व में जाने के पहले आस्वाद रहता है (घंटालालान्याय) 6 आवलिका तक।
3. ~~सम्यग्दृष्टि~~ सम्यग्मिथ्यादृष्टि = सम्यक्त्व को प्राप्त करते हुए जिसे तत्त्वरुचि उत्पन्न हुई हो।
4. अविरत सम्यग्दृष्टि= देशविरति से रहित सम्यग्दृष्टि।
5. विरताविरति = श्रावक समुदाय।
6. प्रमत्त = प्रमत्त साधु समुदाय।
7. अप्रमत्त = अप्रमत्त साधु समुदाय।

Notes Date :

8. निवृत्तिबादर = श्रेणि की शुरूआत में दर्शनसप्तक क्षय करने वाला जीव समूह।
9. अनिवृत्तिबादर = उससे ऊपर लोभ के अणु के वेदन तक।
10. सूक्ष्म संपराय = लोभ के अणुओं को वेदते हुए जीवों का समूह।
11. 12. उपशांत-क्षीण मोह = श्रेणि की समाप्ति में अंतर्मुहूर्त तक।
13. सयोगी = भवस्थ केवली का समूह।
14. अयोगी = शैलेशी अवस्था को प्राप्त, योग निरोध करने वाले और ५ ह्रस्वाक्षर उच्चार जितने काल तक।
बिस्तार अर्थ प्रज्ञापनासूत्रादि से जानना।

★ १५ परमाधार्मिकों से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।
परम अधार्मिक = संक्लिष्ट परिणाम वाले होने से।

अंबे अंबरिसी चेव सामे अ सबले इय।
रुद्दोवरुद्दकाले य महाकालेत्ति आवरे॥
असिपत्ते धणुकुंभे वालू वेयरणी इय।
खरस्सरे महाघोसे एए पन्नरसाहिया॥

टीप्पणक

1. अंब - ये परमाधामी स्वयं के भवन से नरकावास जाकर क्रीड़ा से रहित बिना के नारकों को कुत्तों की तरह मारते हुए इधर-उधर दौड़ाते हैं। स्वयं की इच्छा से इधर-उधर घूमाते हैं। आकाश में फेंककर नीचे गिरते हुए को मुद्गरादि मारते हैं। शूलादि से बींधते हैं। गर्दन से पकड़कर जमीन पर मुँह की ओर से पटकते हैं और फिर आकाश में फेंकते हैं।
2. अंबर्षि - मुद्गरादि से मारने पर उपहत। पुनः खड्गादि से मारने पर उपहतहत। ऐसे उपहतहत और मूर्च्छित नारकों को करवतों से काटते हैं, दो टुकड़े करते हैं, बहुत सारे टुकड़े करते हैं।
3. श्याम - नारकों के अंगोपांग छेदते हैं, निष्कुट - शिखर से वज्र भूमि पर पटकते हैं, शूलादि से व्यथा करते हैं, सुई वि. से नाक वि. छेदे,

कोई क्रूर कर्म करने वाले को रस्सी वि. से बांधे, थप्पड़ वि. मारे।

4. शबल शबल - कर्मोदय से क्रीड़ा के परिणाम उत्पन्न होने पर ये देव पापी नारकों की आँतों में रहे फिफिस - मांस विशेष, हृदय में - पैर में रहे मांस विशेष को खींचते हैं।

5. रुद्र - तलवार - शक्ति - भाला - शूल - त्रिशूल - सुई वि. में नारकों को पिरोते हैं। (हरिभद्रीय वृत्ति)

6. उपरुद्र - नारकों के शरीर के अंग, जांघ, हाथ - पैर वि. करवत से काटते हैं। (हरिभद्रीय वृत्ति)

7. काल - छोटे - बड़े चूल्हे पर, लंबे बाँस वि. लकड़ी के अग्र भाग पर, कंदु - पचनक - लोही (ये तीनों खाखरे वि. पकाने के लोहे के भाजन विशेष हैं) में, कुंभी में डालकर जिंदा मछली की तरह नारकों को पकाते हैं।

8. महाकाल - मांस के छोटे - छोटे टुकड़े करते हैं, पीठ की चमड़ी छीलते हैं और पूर्वभव में जो मांस खाते थे उन्हें स्वयं के शरीर का मांस खिलाते हैं।

9. असि - हाथ - पैर - जांघ - बाहु - सिर और अंगोपांग बार - बार छेदते हैं। (हरिभद्रीय वृत्ति)

10. पत्रधनु - कान - होठ - नाक - हाथ - पैर - दाँत - स्तन - पृत (पुट्ठे) - जांघ - बाहु को छेदते हैं, भेदते हैं, काटते हैं। बीभत्स असिपत्रवन विकुर्वकर, वहाँ आए हुए छाया के अर्थी नारकों को बहुत प्रकार के प्रहारों से फाड़ते हैं। तलवार इनका प्रधान प्रहार है।

11. कुंभी - कुंभी - पचनक - लोही (लोहे के भाजन) कोष्ठिक आकार वाले भाजनों में मारते हैं और पकाते हैं।

12. बालु - जैसे बालु रेती से भरे हुए भाजन में चने तड़ - तड़ आवाज कर फूटते हैं, वैसे ये देव कदंब पुष्प के आकार वाली बालू रेती पर क्षणरहित नारकों को गिराकर पकाते। भुंजते हैं और आकाश में उछालते हैं।

13. वैतरणी - ये वैतरणी नदी विकुर्वकर उसमें नारकों को बहाते हैं। वह नदी चर्बी - खून - बाल - हड्डी को वहन करने वाली, महाभयानक,

Notes Date:

उकलते हुए लाख वाली, बीभत्स दर्शन वाली और तप्त खार-उष्ण जल वाली है।

14, खरस्वर= ये करवत से स्तंभ की तरह नारकों को फाड़ते हैं। उनके ही हाथ में परसु परशु देकर परस्पर उन्हें ही छीलवाते हैं। कर्कश स्वरों से आवाज करते हुए नारकों को वज्र के काँटों से व्याप्त शाल्मली वृक्ष पर चढ़ाते हैं और चढ़े हुए की बार-बार कदर्थना करते हैं।

15 महाघोष- जैसे पशुवध में डरे हुए पशुओं को भागने से रोककर कोई क्रूर कर्म वाला वहीं रोकता है वैसे ये देव भी पीड़ा उत्पादक स्थान से भागते हुए नारकों को महाघोष कर उसी स्थान में रोकते हैं।

हरिभद्रीय वृत्ति में लिखी ये 15 गाथा सूत्रकृतांग के विवरण में देखी गई है। इनका तात्पर्यार्थ पूर्ण हुआ।

हरिभद्रीय वृत्ति

16 गाथाषोडश अर्थात् गाथा अध्ययन है 16वां जिसमें, ऐसे सूत्रकृतांग के प्रथम श्रुतस्कंध के अध्ययनों से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ। 16 अध्ययन के नाम- समय, वैतालीय, उपसर्गपरिज्ञा, स्त्रीपरिज्ञा, नरक-विभक्ति, वीरस्तव, कुशीलों की परिभाषा, वीर्य, धर्म, समाधि, मार्ग, समवसरण, याथातथ्य, ग्रंथ, जमतीत, गाथा।

★ 17 प्र. के संयम से हुए अतिचारों से मैं पीछे हटता हूँ।

पुढविदग अगणिमारुय वणस्सइ बिति चउपणिंदि अज्जीवो।
पेहुप्पेहपमज्जण परिट्ठवण मणो वई काए ॥

1-9. पृथ्वी- अप- अग्नि- वायु- वनस्पति- द्वि- त्रि- चउ- पंचेंद्रिय विषयक संघट्टनादि का करण- करावण- अनुमोदन न करे।

10. अजीव- पुस्तकपंचक, दूष्यपंचक, तृणपंचक, चर्मपंचक ग्रहण करने में असंयम है।

पुस्तक पंचक- (a) गंडी- जाड़ाई और चौड़ाई में समान, लंबाई ज्यादा।

(b) कच्छपी- दोनों ओर पतला, बीच में चौड़ा।

ⓒ मुष्टि - ४ अंगुल लंबाई, गोल या चोरस।
ⓓ संपुटफलक - जिसमें cover (पुट्ठा) हो।
ⓔ छेदपाटी - लंबी और अल्पप्रमाण वाली, कम Page वाली।

दूष्य (वस्त्र) पंचक - ⓐ जिसका प्रतिलेखन न हो सके और जिसका दुष्प्रतिलेखन हो ऐसे ५ वस्त्र।
अप्रतिलेख्य दूष्य पंचक - ⓐ गादी रुईवाली ⓑ तकिया ⓒ गंडुपधान (गाल के पास रखने का तकिया) ⓓ आलिंगणी (शरीर जितने लंबे गोल तकिये) ⓔ मसूरक (गोल आसन विशेष)
दुष्प्रतिलेख्य वस्त्र पंचक - ⓐ पल्हवि = हाथी की पीठ पर बिछाने वाला वस्त्र (रोम वाला वस्त्र) ⓑ कोयवि = रुई से भरा वस्त्र ⓒ प्रावार = दशी सहित वस्त्र विशेष ⓓ नवतक = जीण वस्त्र विशेष (टीप्पणक) ⓔ दाढिगाली = दशी सहित की धोती।

तृण पंचक - शालि, व्रीहि, कोद्रव, रालका, जंगलीतृण।

चर्मपंचक - बकरी-भेड़-गाय-भैंस-हिरण की चमड़ी। अथवा
ⓐ तलिका - पैर के मोजे। ⓑ खल्लग = पैर की जोड़ी विशेष। ⓒ वर्ध्र - टूटे हुए जोड़ को जोड़ने लिया गया चमड़ा। ⓓ ~~कोस~~ कोशक = नाखून समारने ~~की थैली व~~ के साधन वि. रखने की थैली। ⓔ कृति = विहार में दावानल वि. से बचने गच्छ में जो चमड़ा रखे।

प्रग्र - हिरण्यादि असंयम से बचने के लिए साधु ग्रहण न करे।

11. प्रेक्षा - साधु काउसग्ग वि. करने की जगह चक्षु से देखकर और रजोहरणादि से प्रमार्जना करे।

Notes Date :

12. उपेक्षा – ~~२प्र.~~ उपेक्षा शब्द २प्र. से आता है – 1. व्यापार अर्थ में – eg. यह पुरुष इस गाँव का उपेक्षक है अर्थात् इस गाँव के लोगों को व्यापृत करता है। 2, अव्यापार अर्थ में – विनाश पाती वस्तु की उपेक्षा कर। यहाँ दोनों अर्थों का अधिकार है –

(a) व्यापार अर्थ में – सांभोगिक साधु शिथिल हो तो साधु प्रेरणा करे। यदि शासन हीलना हो रही हो तो असांभोगिक को भी प्रेरणा करे।

(b) अव्यापार अर्थ में – सावद्यकर्म में शिथिल गृहस्थ को प्रेरणा न करे।

13. प्रमार्जनासंयम – सचित्त भूमि से अचित्त में जाने पर पैर पुंजना। यदि गृहस्थ देखते हो तो न पुंजने पर भी संयम। इत्यादि

14. परिष्ठापनसंयम – दोषित भक्त-पान-उपकरण और शुद्ध-अतिरिक्त भक्त-पान-उपकरण को विधिपूर्वक परठना।

15.16. मन-वचन संयम – अशुभ व्यापार रोककर शुभ व्यापार करना।

17. काय संयम – अवश्य करने योग्य कार्य में उपयोग पूर्वक गमनागमन करना। उसके अलावा कछुए की तरह शरीर गुप्त रखना।

★ 18 प्र. के अब्रह्मचर्य में हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।

ओरालियं च दिव्वं मणवइकाएण करणजोएणं।
अणुमोयणकारवणे करणेणऽट्ठारसाबंभं॥

अब्रह्म मूल से २प्र. – तिर्यंच मनुष्यों का औदारिक और भवनपति वि. का दिव्य। इसे मनवचनकाया 3 करण और करणकरावण अनुमोदन 3 योग से गुणणा। eg. मन से औदारिक मैथुन करना नहीं, कराना नहीं, अनुमोदन करना नहीं इत्यादि।

★ 19, ज्ञाताधर्म के अध्ययनों से हुए अतिचारों से मैं पीछे हटता हूँ।
ज्ञाताध्ययन ज्ञाताधर्म की कथा के अन्तर्वर्ति हैं।
19 ज्ञाताध्ययन के नाम- उत्क्षिप्तज्ञात, संघाट, अंड, कूर्म, शैलक, तुंब, रोहिणी, मल्ली, माकंदी, चंद्र, दावद्रव, उदकज्ञात, मंडूक, तेतली, नंदीफल, अपरकंका, आकीर्ण, सुंसुमा, पुंडरीक।

★ 20 असमाधिस्थानों से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।

1. द्रुत-द्रुतचारी (जल्दी जल्दी चलने वाला)- जीव हिंसा से निरपेक्ष चलता हुआ गिरने वि. से स्वयं को असमाधि में डालता है, जहाँ गिरे वहाँ रहे अन्य जीवों को भी असमाधि में डालता है, हिंसा से परलोक में भी स्वयं को असमाधि में डालता है।
2. अप्रमार्जित- ऐसे स्थान में बैठना-सोना वि. से स्वयं को बिच्छू वि. के डंक से और जीवों को संघट्टे वि. से असमाधि में डालता है।
3. ऐसे ही दुष्प्रमार्जित।
4. अतिरिक्त शय्यासन-वसति बहुत बड़ी होने से (उद्यान वि.) वहाँ कोई भी रहने आया हो, उनके साथ झगड़े वि. से स्व-पर को असमाधि।
ऐसे ही आसन-पीठ-फलक में जानना।
5. रत्नाधिक परिभाषी- आचार्य या अन्य जो जाति (उम्र), श्रुत और पर्यायादि में बड़े हो, वे रत्नाधिक। उनका परिभाषी यानि पराभव करने वाला, अशुद्ध चित्तत्व से स्व-पर को असमाधि।
6. स्थविरोपघाती- आचार्य या गुरु को उनके आचार दोष, शील दोष और ज्ञानादि दोष से दुःखी करे। दुःखी करता हुआ दुष्ट चित्त वाला होने से स्व-पर को असमाधि।
7. भूतोपघाती- निष्कारण जीवों को मारता हुआ स्व-पर को असमाधि।
8. संज्वलन- बार-बार, मुहूर्त-मुहूर्त में क्रोध करना। (असमाधि सबमें जोड़ना)
9. क्रोधन- हमेशा अतिक्रुद्ध रहे।
10. पृष्ठमांसाशी- पीठ पीछे अवर्ण करे।

Notes Date :

11. अभीक्ष्ण अवधारी - बार-बार अवधारिणी भाषा बोले eg. तू दास है, तू चोर है इत्यादि अथवा शंकित पदार्थ को भी निःशंकित कहे।
12. अधिकरणकर - झगड़े कर अथवा अधिकरण रूप यंत्रादि चालू करे।
13. उदीरणाकर - शांत हुए झगड़े की पुनः उदीरणा करे।
14. अकालस्वाध्यायकारी - कालिकश्रुत को उद्घाटपोरषी में पढ़े जिससे आस-पास रहे देव असमाधि करे।
15. सरजस्कहाथपैर - सचित्त भूमि से पैर पुंजे बिना अचित्त भूमि में जाना वि। सचित्त रजकण वाले हाथों से भिक्षा का ग्रहण करे वि.।
16. शब्दकर - बिनजरूरी बोले, विकाल (सुबह-शाम की संध्या) में जोर-जोर से स्वाध्याय करे, गृहस्थ की भाषा (आओ, जाओ, बैठो वि.) बोले।
17. कलहकर - स्वयं कलह करे अथवा ऐसा करे जिससे झगड़ा हो।
18. झंझकर - संघ यानि भेद। गण के भेद करे या ऐसा करे जिससे गण का भेद हो।
19. सूर्यप्रमाणभोजी - सूर्य के उदय से लेकर अस्त होने तक खाता रहे, स्वाध्याय न करे। कोई रोके तो गुस्सा करे। अजीर्ण वि. से असमाधि।
20. एषणा में असमित - अनेषणा का परिहार न करे। रोकने पर झगड़ा करे। विराधना से स्वयं को असमाधि।
विस्तार दशा नामक अन्यग्रंथ से जानना।

सूत्र एक्कवीसाए सबलेहिं बावीसाए परीसहेहिं तेवीसाए सूयगडज्झयणेहिं चउवीसाए देवेहिं पंचवीसाए भावणाहिं छव्वीसाए दसाकप्पववहाराणं उद्देसणकालेहिं सत्तावीसविहे अणगारचरित्ते अट्ठावीसविहे आयारकप्पे एगूणतीसाए पावसुयपसंगेहिं तीसाए मोहणियठाणेहिं एगतीसाए सिद्धाइगुणेहिं बत्तीसाए जोगसंगहेहिं।

★ 21 शबल से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।

शबल= काबरचित्र (मलिन) | जिन क्रियाओं से चारित्र शबल रूप मलिन होता है, ~~इसे~~ उन्हें शबल कहते हैं।

1. हस्तकर्म करे या कराए।
2. मैथुन के अतिक्रम-व्यतिक्रम-अतिचार का सेवन करे। अथवा पुष्ट आलंबन से सेवन करे तो भी शबल।
3. रात्रिभोजन करे। यहाँ चतुर्भंगी

	लाए	वापरे
1.	दिन	दिन
2.	दिन	रात
3.	रात	दिन
4.	रात	रात

प्रथम भांगा शुद्ध। 3 भांगे में अतिक्रम-व्यतिक्रम-अतिचार सेवन करे तो शबल। अनाचार करे तब व्रतभंग। यदि पुष्टालंबन होने पर पास में रही संनिधि ~~स~~ में से जयणापूर्वक वापरे तो शबल नहीं।

4. आधाकर्म भोजन करे - इसमें भी अतिक्रमादि 3 में शबल, अनाचार में भंग। पुष्टालंबन होने पर शबल नहीं। (ऐसा हर शबल में समझना।
5. राजपिंड 6. क्रीत 7. प्रामित्य (उधार लिया हुआ) 8. अभ्याहृत 9. आच्छेद्य वापरे।
10. द्रव्यों का पच्चक्खाण लेकर वही द्रव्य वापरे (पच्चक्खाण तोड़े)।
11. ज्ञानादि कोई विशिष्ट कारण न होने पर 6 मास के अंदर गच्छ बदलना।
12. एक मास में 3 बार पानी का लेप करे अर्थात् नाभिप्रमाण पानी में से निकले। (अर्ध जंघा-पैर की पिंडली तक का पानी संघट्ट, नाभि तक लेप, उससे ऊपर लेपोपरी)
13. स्वयं के पाप छुपाना वि. 3 मायास्थान का सेवन करे। (महिने में 3 बार)
14. जानबूझकर पृथ्व्यादि का प्राणातिपात करे।
15. मृषावाद 16. अदत्तादान का सेवन करे।
17. सचित्त पृथ्वी, पानी से गीली पृथ्वी, सचित्त शिला-पत्थर, घुण नामक बेइंद्रिय जीवों से ~~युक्त~~ युक्त लकड़ी, बीज युक्त, मकड़ी के जाले से युक्त,

Notes Date :

स्थान में सोना, बैठना, काउसग्ग करना वि.।

18. जानबूझकर कंद वि. अनंतकाय, पत्ते, पुष्प, फल, बीज वि. वापरे।
19. वर्ष में 10 बार लेप पानी का।
20. वर्ष में 10 बार माया का सेवन करे।
21. दात्री सचित्त पानी को छूकर या पानी नीतरते हुए हाथ-भाजन से भिक्षा दे। उसे ग्रहण करना

* 22 परीषहों से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।
22 परीषहों का स्वरूप (भाग 3 Pg 63)

* 23 सूत्रकृत के अध्ययनों से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।
23 अध्ययन के नाम – पुंडरीक, क्रियास्थान, आहार परिज्ञा, प्रत्याख्यान क्रिया, अनगार, आर्द्रकुमार, नालंदा ये 7 + गाथाषोडश में कहे 16 अध्ययन (Pg. 146)।

* 24 देवों से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।
24 देव = 10 भवनपति + 8 व्यंतर + 5 ज्योतिष + 1 वैमानिक।
अन्य मत 24 देव = 24 तीर्थंकर।

* 25 भावना से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।
प्राणातिपातादि विरमण रूप महाव्रतों के संरक्षण के लिए ये भावनाएँ की जाती हैं।

प्रथम महाव्रत की 5 भावना –

1. ईर्या यानि गमनागमन में समित होना। 3½ हाथ, युगमात्र भूमि देखकर चलना। सर्वकाल उपयोग पूर्वक रहना।
2. पान-भोजन देखकर वापरे।

3. आगम प्रतिषिद्ध ऐसे ग्रहण-निक्षेप (पात्रादि के) की जुगुप्सा करे।
4. संयम में अदुष्ट मन को प्रवर्तना।
5. " " वचन " ।

द्वितीय महाव्रत की ५ भावना -
1. हास्य त्याग क्योंकि हास्य से झूठ भी बोल सकते हैं।
2. विचारकर बोलना।
3. क्रोध त्याग । ४. लोभ त्याग । ५. भय त्याग।

तृतीय व्रत की ५ भावना -
1. (स्वयं को कितनी जगह चाहिए वि.) विचारकर मालिक या मालिक ~~का~~ ने जिसे सौंपा हो, उसे पूछे।
2. उपाश्रय देने वाले के वचन सुनकर तृणादि की अनुज्ञा में बुद्धिमान साधु विचारकर प्रवर्ते।
3. हमेशा स्वच्छ मर्यादा की अनुज्ञा लेकर ही अवग्रह में रहे।
4. गुरु या अन्य की अनुज्ञा लेकर पान-भोजन वापरे।
5. गीतार्थ संविग्न साधुओं के क्षेत्र या वसति में उनकी अनुज्ञा लेकर रहे।

चतुर्थ महाव्रत की ५ भावना -
1. अतिमात्रा में और स्निग्ध आहार न करे।
2. विभूषा न करे।
3. स्त्री या उसके अंगोपांग न देखे।
4. स्त्री वि. से संसक्त वसति में न रहे।
5. स्त्रीकथा न करे।

पंचम महाव्रत की ५ भावना -

Notes Date :

इष्ट और अनिष्ट 1. शब्द 2. रूप 3. रस 4. गंध 5. ~~स्प~~ स्पर्श प्राप्त होने पर क्रमशः गृद्धि, आसक्ति और द्वेष न करे। वह दान्त, विरत और अकिंचन रहे।

★ 26 दशा-कल्प-व्यवहार के उद्देशनकाल (कालग्रहण) वि. जोग की क्रिया) से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।
10 उद्देशनकाल दशा के + 6 कल्प के + 10 व्यवहार के = 26

★ 27 साधु के चारित्र से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।
वयछक्कमिंदियाणं च निग्गहो भावकरणसच्चं च।
खमयाविरागयाविय मणमाईणं निरोहो य॥
कायाण छक्क जोगाण जुत्तया वेयणाऽहियासणया।
तह मारणंतियऽहियासणा य एएऽणगारगुणा॥
1-6. 6 व्रत। 7.-11. 5 इंद्रियों का निग्रह।
12. भाव सत्य = अन्तर्शुद्धि। 13. करण सत्य = बाह्य प्रत्युपेक्षणादि।
14. क्षमा = क्रोध निग्रह। 15. विरागता = लोभ निग्रह।
16-18. मन-वचन-काया का अकुशल और कुशल व्यापार में निरोध।
19-24. 6 काय की सम्यग् रक्षा।
25. संयम के योगों से युक्तता।
26. वेदना सहन करना।
27. मारणांतिक उपसर्ग सहन करना।

★ 28 प्र. के आचारप्रकल्प से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।
आचारांग के 28 अध्ययन के नाम - शस्त्रपरिज्ञा, लोकविजय, शीतोष्णीय, सम्यक्त्व, आवन्ती, धुत, विमोह, उपधानश्रुत, महापरिज्ञा। पिंडैषणा, शय्या, ईर्या, भाषाजात, वस्त्रैषणा, पात्रैषणा, अवग्रह प्रतिमा (ये 7 अध्ययन की पहली चूलिका)। सप्तैकका (7 अध्ययन दूसरी

चूलिका), भावना अध्ययन (तीसरी चूलिका), विमुक्ति अध्ययन (चौथी चूलिका), उद्घात - अनुद्घात - आरोपणा (3 निशीथ अध्ययन की पाँचवी चूलिका)।

★ 29 पापश्रुतों के प्रसंग से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ। पाप को ग्रहण करनेवाले श्रुत पापश्रुत, उनके प्रसंग यानि आसेवन।

8 महांगानिमित्त - 1. दिव्य = व्यंतरादि के अट्टाहासादि विषयक।
2. उत्पात = सहज खून की वर्षा वि. विषयक।
3. अंतरिक्ष = ग्रह के भेदादि विषयक।
4. भौम = भूमि के विकारादि देखकर भविष्य कथन।
5. अंग = शरीर के अंगादि।
6. स्वर = स्वर विषयक।
7. लक्षण = लांछन - चिह्नादि विषयक।
8. व्यंजन = तिल - मसा वि. विषयक।

ये 8 शास्त्र 3 गु. के - सूत्र, वृत्ति, वार्तिक। अंग सिवाय के 7 शास्त्र के सूत्र 1000 श्लोक प्रमाण, वृत्ति लाख श्लोक, वार्तिक करोड़ श्लोक प्रमाण। अंग शास्त्र का सूत्र लाख श्लोक, वृत्ति करोड़ श्लोक, वार्तिक अपरिमित प्रमाण।

~~8×4~~. 8×3 = 24 + 5 नीचे कहे हुए = 29 पापश्रुत।

↓

गांधर्व, नाट्य, वास्तु, वैद्यक, धनुर्वेद शास्त्र।

★ 30 मोहनीय स्थानों से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।
1. तीव्र अशुभ परिणाम से स्त्री वि. त्रस जीवों को पानी में डूबाकर मारना। संक्लिष्ट चित्तता से सैंकड़ों भवों में वेद्य ऐसा मोहनीय कर्म

Notes Date :

बंधता है (यह सभी स्थानों में समझना)।
2. हाथ से मुख-नाक-कान वि. बंधकर अंदर घबराते और गले से रोते जीव पशु को मारना।
3. गीले चमड़े से मस्तक पर लपेटकर मारना।
4. सिर पर मुद्गर वि. शस्त्र से मारकर सिर के टुकड़े कर मारना।
5. जैसे द्वीप समुद्र में डूबते जीवों के लिए सहायक है, वैसे संसार में बहुत जीवों को अन्न-पान-आजीविका देने वाले प्राणिक-नेता वि. को मारना।
6. ग्लान की सेवा सभी को करना चाहिए। ऐसे समय ग्लान की सेवा या औषध बनाने में या सेवा का उपदेश देने में समर्थ होने पर भी तीव्र अशुभ परिणाम से न करे।
7. अन्य साधुओं को जबरजस्ती श्रुत और चारित्र धर्म से भ्रष्ट करे।
8. मोक्षमार्ग पर ले जाने वाले ज्ञानादि के दोष दिखाकर स्व-पर को मोक्षमार्ग से दूर करे।
9. केवली तीर्थंकर की आशातना। निंदा करे eg. केवलज्ञानी नहीं है वि.।
10. प्रसिद्ध आचार्य-उपाध्याय की निंदा करे जात्यादि से अथवा 'येतो अबहुश्रुत हैं', वि.।
11. आचार्य-उपाध्याय द्वारा ही ज्ञानादि गुणों में तैयार हुआ शिष्य उनका ही कार्य होने पर आहार-उपकरणादि से सेवा न करे।
12. ज्योतिष वि. शास्त्र बार-बार बोले। राजा की यात्रा वि. का वर्णन करे। ऐसे ज्ञानादि मार्ग रूप तीर्थ की विराधना करने से महामोह।
13. जानबूझकर अधार्मिक ऐसे वशीकरणादि योगों को बार-बार करे।
14. इच्छा और मदन सुख ऐसे २५ के काम सुख जोड़कर दीक्षा लेने के बाद पुनः इहभविक मनुष्य संबंधी भोगों और परभव संबंधी दिव्य भोगों की इच्छा
15. स्वयं अबहुश्रुत होने पर भी 'बहुश्रुत हूँ' ऐसा बार-बार बोले अथवा अन्य कोई पूछे, 'आप बहुश्रुत हो' तब हाँ कहे या मौन रहे या 'साधु तो बहुश्रुत ही होते हैं' ऐसा कहे।

16. ऐसे ही तपस्वी में समझना।
17. घर वि. में बहुत लोगों को बंदकर अंदर घुसाँ कर सबको मार डाले।
18. प्राणातिपातादि स्वयं करके 'इसने किया है' ऐसा दूसरे पर आरोप करे।
19. निकृति = माया करे। उपधि = माया को छुपाए। प्रणिधि = ऐसा कर सबको बार-बार ठगे।
20. सतत अशुभ मनोयोग से युक्त।
21. सभा में सब मृषावाद बोले।
22. सतत कलह करता रहे।
23. यात्रा में साथ रहे यात्रिकों को विश्वास में लेकर धन-सुवर्णादि छीनकर मार डाले।
24. जीवों के साथ किसी उपाय से मैत्री कर उसकी पत्नी में आसक्त हो।
25. कुँवारा न होने पर भी 'मैं कुँवारा हूँ' बार-बार बोले।
26. ऐसे ही ब्रह्मचारी में समझना।
27. जिसकी सहाय से ऐश्वर्य प्राप्त हुआ हो, उसी को ठगे।
28. उसका प्रभाव बढ़ने पर किसी भी प्रकार से उसे अंतराय करे।
29. सेनापति - राजा द्वारा अनुज्ञात - कलाचार्य वि. - पति - राष्ट्रपति - मुख्य सेठ वि. को मारे।
30. देव नहिं होने पर भी माया से 'मुझे देव दिखता है' या 'मैं देव हूँ' वि. बोले। देव की निंदा करे।

★ 31 सिद्ध के आदि गुणों से हर अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।
आदि गुण = युगपद् होने वाले।
5 संस्थान + 5 वर्ण + 2 गंध + 5 रस + 8 स्पर्श + 3 वेद रहित + अशरीरी + असंग + अजन्म = 31
अथवा
9 दर्शनावरण + 4 आयुष्य + 5 ज्ञानावरण + 5 अंतराय + 2 नाम (शुभ-अशुभ) + 2 गोत्र + 2 मोहनीय + 2 वेदनीय = 31 कर्म रहित।

Notes Date :

★ 32 योग संग्रह से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।

गा.1275 1. आलोचना 2. निरपलाप 3. आपत्तियों में दृढ़धर्मता 4. अनिश्रितोपधान 5. शिक्षा 6. निष्प्रतिकर्मता

गा.1276 7. अज्ञातता 8. अलोभ 9. तितिक्षा 10. आर्जव 11. शुचि 12. सम्यग्दृष्टि 13. समाधि 14. आचारोपगत 15. विनयोपगत 16. धृतिमति 17. संवेग 18. प्रणिधि

गा.1277 19. सुविधि 20. संवर 21. आत्मदोषोपसंहार 22. सर्वकामविरक्तता 23.

गा.1278 23-24. प्रत्याख्यान 25. व्युत्सर्ग 26. अप्रमाद 27. लवालव 28. ध्यानसंवर योग 29. उदय में मारणांतिक

गा.1279 30. संगों की परिज्ञा 31. प्रायश्चित्तकरण 32. मरणांत में आराधना। ये (बारगा.) 32 योग संग्रह हैं।

★ योग = मन-वचन-काया का व्यापार। अशुभ योगों के प्रतिक्रमण का अधिकार होने से प्रशस्त लेना।
ऐसे प्रशस्त योगों के संग्रह का निमित्त होने से आलोचनादि योगसंग्रह कहे जाते हैं। (इनसे जीव में प्रशस्त व्यापार रूप योगों का संग्रह होता है।

यह हर योगसंग्रह में समझना।

★ 1. आलोचना = [प्रशस्त ऐसे मोक्षसाधक योगों के संग्रह के लिए] शिष्य को गुरु के पास सम्यगालोचना करना चाहिए।

2. निरपलाप = आचार्य भी आलोचना में कहे दोष दूसरे को न कहे।

3. दृढ़धर्मता = द्रव्यादि भेद वाली आपत्ति में दृढ़ धर्म वाले हो।

4. अनिश्रितोपधान = उपधान यानि तप। अनिश्रित यानि ऐहिक-पारलौकिक अपेक्षा से रहित। तप अपेक्षा से रहित होकर करे।

5. शिक्षा = ग्रहण - आसेवन शिक्षा का आसेवन करे।

6. निष्प्रतिकर्मता = शरीर में निष्प्रतिकर्म रहे।

7. अज्ञातता = किसी को पता न चले ऐसे तप करे।

8. अलोभ = लोभ न करे अथवा अलोभ में यत्न करे।
9. तितिक्षा = परीषहादि का जय करें।
10. आर्जव = सरलता करे।
11. शुचि = संयम वाला हो।
12. सम्यग्दृष्टि = दृष्टि अविपरीत करे अथवा सम्यग्दर्शन की शुद्धि करें।
13. समाधि = चित्त की स्वस्थता।
14. आचारोपगा = आचार के समीप रहे अर्थात् आचार में माया न करें।
(आर्जव द्वार परिणाम रूप, यह द्वार आचरण रूप जानना।)
15. विनयोपगा = विनय करे अर्थात् मान न करें।
16. धृतिमति = धीरज वाली मति करे, दीनता न करें।
17. संवेग करे।
18. प्रणिधि = माया न करे।
19. सुविधि करे।
20. संवर करें।
21. आत्मदोषोपसंहार = स्वयं के दोषों का उपसंहार करे यानि खत्म करें।
22. सर्वकामविरक्तता = सभी इच्छाओं से विरक्त होने की भावना करें।
23-24. मूल - उत्तरगुण विषयक पच्चक्खाण ले।
25. विविध उत्सर्ग (त्याग) करे। व्युत्सर्ग - द्रव्य और भाव।
26. अप्रमाद करें।
27. लवालव = काल का उपलक्षण है। प्रत्येक क्षण सामाचारी अनुष्ठान करें।
28. ध्यान रूप संवर योग करें।
29. मारणांतिक वेदना के उदय में भी क्षोभ न करें।
30. संगों की ज्ञपरिज्ञा - प्रत्याख्यानपरिज्ञा से परिज्ञा करें।
31. प्रायश्चित्त करें।
32. मरण काल में आराधना करें।

अब. 1. आलोचना द्वार -

Notes Date :

गा.1280 उज्जयिनी x जितशत्रु x सर्वराज्यों में अजेय उसका अट्टन मल्ल x x
समुद्रकिनारे सोपारक नगर x सिंहगिरी राजा x राजा प्रतिवर्ष मल्लयुद्ध में
जीतने वाले को बहुत द्रव्य (धन) देता है x अट्टन वहाँ हरसाल विजयध्वज
लेता है x राजा ने सोचा- दूसरे वाला जीतने में मेरा अपमान है x मल्ल
को ढूँढता है x चर्बी खाते मच्छीमार का बल मापा x बलवान् जानकर
पोषण किया x इधर अट्टन युद्ध के लिए भाता लेकर चला x सोपारक
नगर में माछीमार मल्ल से अट्टन हार गया x
अट्टन ने सोचा- मैं वृद्ध होने से बल घट रहा है, वह युवान् होने से बल
बढ़ रहा है, अतः दूसरा मल्ल ढूँढा x सुना कि सौराष्ट्र में बहुत मल्ल
है x भरूच के पास दुरुल्लकूपिका गाँव में एक किसान एक हाथ से हल
चलाता है, दूसरे हाथ से कपास उठाता है x अट्टन ने सोचा- इसकी
खुराक देखूँ x थोड़ी देर में पत्नी भोजन लाई x घड़ा भरकर चावल खाए x
फिर संज्ञा भूमि गया x वहाँ भी सुदृढ़ विष्ठा देखकर अट्टन को वह बलवान
लगा x शाम को अट्टन ने घर में रहने की जगह माँगी x दी x बातचीत में
कहा- मैं अट्टन तुझे श्रीमंत बना दूँगा x उसकी पत्नी को कपास का मूल्य
देकर आश्वस्त किया x दोनों उज्जयिनी गए x वमन-विरेचन कर पुनः अट्टन
ने पोषण किया x युद्ध सीखाया x युद्ध के लिए पहुँचे x
पहले दिन फलहिमल्ल और मच्छीमल्ल में से कोई न जीता x दूसरे दिन
राजा ने बुलाया x दोनों स्वयं के स्थान में गए x
अट्टन ने फलहिमल्ल को पूछा- कहाँ-कहाँ दुःख रहा है? x उसने बताया x
मालिश और औषधि से ठीक किया x उधर राजा ने मच्छीमल्ल को
पूछवाया- कहाँ दुःखता है? x मच्छीमल्ल- वह बिचारा कौन है? मैं उसके बाप
से भी नहीं डरता x दूसरे दिन भी कोई न जीता x तीसरे दिन प्रहार करने
और सहने में असमर्थ मच्छीमल्ल वैशाख मुद्रा (14 राजलोक) में खड़ा
रहा, तब अट्टन ने फलहिमल्ल को इशारा किया x फलहिमल्ल ने मस्तक
से पकड़कर मच्छीमल्ल का सिर अलग कर दिया x उसका सम्मान हुआ x
वह उज्जयिनी में भोगों को प्राप्त हुआ x मच्छीमल्ल मर गया।

विजय ध्वज= आराधना ध्वज, अट्टन= आचार्य, मल्ल= साधु, प्रहार= अपराध, जो गुरु को आलोचना कहता है, वह शल्य रहित होकर तीन लोक रूप रंग भूमि में निर्वाण ध्वज प्राप्त करता है।

प्रश्न.9 कैसे आचार्य को आलोचना कहना चाहिए? – निरपलाप आचार्य को, यहाँ उदाहरण –

गा.128। दंतपुर x दंतचक्र राजा x सत्यवती रानी x उसे दोहद – हाथीदाँत के महल में रहना xx राजा ने घोषणा कराई – जो मुझे दाँत देगा उसे मैं उचित मूल्य दूंगा किंतु जो दाँत होने पर भी नहीं देगा उसके शरीर का निग्रह करूँगा x
उसी नगर में धनमित्र वणिक् x दो पत्नी – धनश्री, पद्मश्री x पद्मश्री अधिक प्रिय x एकदा दोनों पत्नी में झगड़ा होने पर धनश्री – तू इतना गर्व क्यों करती है? क्या तेरे पास मुझसे कुछ अधिक है? क्या सत्यवती की तरह तुझे भी महल बनाना है? x पद्मश्री – धनमित्र मेरे लिए हाथीदाँत का महल न बनाए तो मैं मर जाऊँगी x वह एक Room में बंद कर बैठ गई x धनमित्र को दासी ने कहा x धनमित्र का दृढ़मित्र नामक मित्र x दृढ़मित्र – महल बनाना पड़ेगा नहीं तो तू मरेगा, तू मरेगा तो मैं भी मरूँगा, राजा से गुप्त रहना पड़ेगा x दृढ़मित्र भीलों के योग्य माल लेकर गया x जंगल में भीलों से दाँत लेकर इकट्ठे किए x घास के पूले के बीच बांधकर बैलगाड़ी में नगर में लाया x नगर के दरवाजे के पास एक बैल ने घास का पूला खींचा x खड़ आवाज कर दाँत गिरा x आरक्षकों ने पकड़ा x राजा ने मृत्युदंड दिया x वधस्थल की ओर ले जाने पर धनमित्र राजा के पैर पड़कर बोला – मैंने ये दाँत मंगवाए थे x राजा के दृढ़मित्र को पूछने पर दृढ़मित्र बोला – ये कौन है? मैं नहीं जानता x दोनों स्वयं के दोष कहते हैं x राजा के अभयवचन देने पर सत्य कहा xx।

जैसे दृढ़मित्र ने धनमित्र का दोष न कहा, वैसे आचार्य को भी शिष्य के दोष नहीं कहने चाहिए।

Notes Date :

अव. 3. आपत्ति में दृढ़धर्मता– आपत्ति ४ प्र. द्रव्यादि। द्रव्य आपत्ति में उदाहरण–
गा.1282 उज्जयिनी x धणवसु वणिक् x चंपा जाने की घोषणा की x धर्मघोष मुनि ने
अनुज्ञा माँगी x जंगल में बहुत दूर पहुँचने पर आदिवासी के आक्रमण से सार्थ
भ्रष्ट हुआ x मुनि कुछ लोगों के साथ जंगल गए x सब लोग कंदमूल खाते हैं
सरोवर का सचित्त जल पीते हैं x लोग उन्हें कहते हैं किंतु वे मना करते हैं x
एक शिला पर अनशन कर दीनता रहित वेदना सहन कर केवलज्ञान प्राप्तकर
सिद्ध हुए x
यह द्रव्यापत्ति में दृढ़धर्मता कही। संयम योग्य क्षेत्र के अभाव में क्षेत्रापत्ति
और काल के अभाव में कालापत्ति होती है।

अव. भावापत्ति में उदाहरण–
गा.1283 मथुरा x यमुन राजा x ~~यमुन~~ पश्चिम दिशा में यमुनावक्र उद्यान x यमुना नदी
के मोड़ के कारण मुड़े हुए हाथ का आकार था x वहाँ दंड अणगार
आतापना लेते हैं x एकदा राजा ने देखा x गुस्से में तलवार से सिर काट
दिया x (अन्य मत – फल से मारा) x सिद्ध हुए x देव आए x पालक विमान से
इंद्र आया x राजा को वज्र से डराया – यदि दीक्षा ले तो छोड़ूँ x राजा ने दीक्षा
ली x अभिग्रह लिया – यदि भिक्षा लेते हुए मुनि हत्या याद आए तो नहीं
वापरूँ, यदि वापरते हुए याद आए तो शेष भोजन त्याग x एक दिन भी
वापर नहीं सके।
दंड अणगार को क्रोध का निमित्त मिला, यह भावापत्ति। उन्होंने क्रोध नहीं
किया वह दृढ़धर्मता। राजा को दीक्षा के बाद द्रव्यापत्ति।

अव. ५. अनिश्रितोपधान में उदाहरण –
गा.1284 आर्य स्थूलभद्र के 2 शिष्य – आर्य महागिरि, आर्य सुहस्ति x महागिरि सुहस्ति
के उपाध्याय थे x महागिरि जिनकल्प विच्छेद होने पर भी अप्रतिबद्धता के
लिए सुहस्ति को गण सौंपकर गच्छ में रहकर जिनकल्प का परिकर्म
करते हैं x एकदा वे पाटलिपुत्र गए x वहाँ वसुभूति सेठ x सुहस्तिसू. म. के

पास धर्म सुनकर श्रावक बने x सेठ- मुझे आपने धर्म दिया, मैंने स्वजन को समझाया किंतु वे न समझे, आप घर पधारकर कहो x सुहस्तिसू. म. ने जाकर कहा x वहाँ महागिरि प्रविष्ट हुए x उन्हें देखकर सुहस्ति सू. म. खड़े हुए x वसुभूति- आपके भी अन्य गुरु हैं? x सुहस्ति सू. म. ने उनकी स्तुति की वि. x वसुभूति ने स्वजनों को कहा- जब ये पधारे तब भोजन फेंकना हो ऐसा वर्तन करना x दूसरे दिन महागिरि पधारे x द्रव्यादि के उपयोग से दोषित जानकर वापस गए और सुहस्ति सू. को कहा- अनैषणा करी x सु.- किसने? x म.- आपने कल अभ्युत्थान किया x दोनों विहारकर उज्जयिनी गए x जीवित स्वामी की प्रतिमा को वंदन कर महागिरि एडकाक्ष नगर में गजाग्रपद पर्वत पर वंदन करने गए x

इस नगर का नाम पहले दशार्णपुर था x वहाँ एक मिथ्यादृष्टि को श्राविका दी गई x श्राविका रोज प्रतिक्रमण में रात्रि भोजन का पच्चक्खाण करती x पति हँसी उड़ाता कि रात को उठकर कोई खाता है क्या? तू व्यर्थ नियम करती है x एकदा पति ने कहा- मैं भी पच्चक्खाण करूँ x पत्नी- आप रहने दो, पच्चक्खाण तोड़ दोगे x पति- मैं कभी रात को उठकर नहीं खाता x उसने पच्चक्खाण लिया x दूसरी ओर देवी ने सोचा- रोज हँसी उड़ाता है, आज सबक सीखाऊँ x उसकी बहन का रूप कर मोदक लाई x श्राविका के मना करने पर भी वह बोला- तेरे पच्चक्खाणों से मुझे क्या? मोदक खाने लगा x देवी ने प्रहार किया x दोनों आँखे निकलकर जमीन पर गिरी x श्राविका ने काउसग्ग किया x आधी रात को देवी ने पूछा- क्या काम है? x श्रा.- इसमें मेरा अपयश होगा x देवी ने मरी भेड़ की सजीव आँख लाकर लगाई x लोग कहने लगे- तेरी आँखें भेड़ जैसी हैं x पति ने वृत्तांत कहा x लोग कुतूहल से आने लगे x पूछने पर कहते कि जहाँ एडकाक्ष रहता है, वहाँ से आया x अतः नगर का नाम एडकाक्ष नगर पड़ा xx|

अन्य मत- वही पुरुष राजा था x इस नगर में गजाग्रपद पर्वत था x इस पर्वत का नाम पहले दशार्णकूट था x गजाग्रपद नाम पड़ने का वृत्तान्त (भाग 3 Pg. 13 दशार्णभद्र राजा का दृष्टांत) |

इस गजाग्रपद पर्वत भक्तप्रत्याख्यान कर आर्य महागिरि देवलोक गए |

Notes Date :

आर्य सुहस्ति सू.म. जीवितस्वामी के दर्शन करने के लिए उज्जयिनी पधारे x उद्यान में रहे x साधु वसति ढूँढने निकले x एक संघारक सुभद्रा श्रेष्ठिपत्नी के यहाँ गए x भिक्षा देकर पूछा - आप किसके शिष्य हो? x साधु - सुहस्ति सू.म. के, हम वसति ढूँढ रहे हैं x उसने यानशाला बताई x सब उसमें रहे x एकदा रात के प्रथम प्रहर में आचार्य नलिनीगुल्म अध्ययन का स्वाध्याय करते हैं x सुभद्रा का पुत्र अवंतीसुकुमाल 32 पत्नी के साथ 7वीं मंजिल पर रहता है x सोकर उठे हुए उसने सुना x सुनते-सुनते नीचे उतरा x महल के बाहर निकला x 'कहीं ऐसा सुना है' सोचते हुए जातिस्मरण ज्ञान हुआ x आ. के पास जाकर कहा - मैं नलिनीगुल्म विमान में देव था, मुझे वहाँ वापस जाना है किंतु मैं लंबे समय तक दीक्षा पालने में समर्थ नहीं हूँ अतः मुझे अनशन करना है x माता की अनुज्ञा न होने से आ. उसे दीक्षा नहीं देते x उसने स्वयं लोच किया x आ. ने साधुवेश दिया (ज्ञान से जाना कि इसमें ही उसका कल्याण है) x श्मशान कंथार वृक्ष का वन था x वहाँ अनशन किया x रास्ते में जाते हुए काँटे वि. से खून निकला था x गंध से सियार बच्चों सहित आई x एक प्रहर में घुटने तक, दूसरे में जांघ, तीसरे में पेट खाया x कालधर्म हुआ x सुगंधी जल-पुष्पों की वृष्टि हुई x दूसरे दिन माता ने आ. को पूछा x आ. ने वृत्तांत कहा x माता पुत्रवधुओं सहित श्मशान गई x फिर आकर दीक्षा ली x एक पुत्रवधू गर्भवती थी x उसने दीक्षा न ली x उसके पुत्र ने वहाँ मंदिर बनवाया x पिता के शरीर प्रमाण प्रतिमा स्थापी x वर्षों बाद (बौद्ध - उपदेश पद, ब्राह्मणों - दीपिका) लोगों ने ग्रहण किया जो अभी महाकाल नाम से प्रसिद्ध है x

उत्तरचूलिका[?] में उज्जयिनी की जगह पाटलिपुत्र कहा है।

महागिरि की तरह अनिश्रित तप करना चाहिए।

भव. 5. शिक्षा 2 प्र. ग्रहण, आसेवन शिक्षा। इसमें उदाहरण -

गा.1285 क्षितिप्रतिष्ठित नगर x जितशत्रु राजा x उस नगर की वस्तु नष्ट होती थी अतः राजा ने वास्तुशास्त्रज्ञों द्वारा दूसरी जगह ढूँढाई x उन्होंने पुष्पों से युक्त चने के खेत की जगह चणकपुर बनाया x थोड़े समय बाद वहाँ भी ऐसा होने लगा x जंगल

में एक बैल था, जिसे कोई बैल हरा नहीं सकता था x वास्तुशास्त्रज्ञों ने वहाँ ऋषभपुर बनाया x वह नगर भी थोड़े समयबाद नष्ट हुआ x एक जगह विशेष आकार और प्रमाण वाला घास का ढगला देखकर वास्तुशास्त्रज्ञों ने वहाँ कुशाग्रपुर बसाया x उस समय प्रसेनजित् राजा था x उस नगर में बार-बार आग लगती थी x अत: राजा ने घोषणा कराई - जिसके घर आग लगेगी उसे नगरबाहर करेंगे x एकदा राजा के रसोइए से प्रमाद के कारण आग लगी x उस समय सब राजा सत्य-प्रतिज्ञावाले थे x 'मैं स्वयं का दंड नहीं करूँगा तो दूसरे पर शासन कैसे करूँगा' ऐसा सोचकर वह नगर के बाहर 1 गाऊ दूर रहने लगा x सैनिक-सेनापति-वणिक् वि. उस तरफ जाते तब एक-दूसरे को पूछते - कहाँ जा रहे हो? x वे कहते - राजगृह (राजा के घर) x ऐसे राजगृह नगर बसा xx

राजा के घर आग लगने राजकुमार अपनी प्रिय वस्तु लेकर निकले x श्रेणिक भंभा लेकर निकला x राजा के पूछने पर कुमार बोले - 'मैं हाथी लाया, मैं घोड़ा लाया' वि. x श्रेणिक - मैं भंभा लाया x राजा को सबमें श्रेणिक प्रिय था x उसका 'भिंभसार' नाम रखा xx

श्रेणिक लक्षण युक्त था x अन्य कुमार उसे मारे नहीं इसलिए राजा सबको थोड़ा-थोड़ा धन देता है किंतु श्रेणिक को नहीं देता x इससे अधृति करता श्रेणिक वहाँ से निकल जाता है x बेन्नातट नगर जाता है...

आगे का वर्णन नमस्कार निर्युक्ति में गा. 940 (भाग 3 Pg. 82) - एक व्यापारी की दुकान पर बैठा x रत्नाकर का स्वप्न x धंधा बहुत चला x नंदा पुत्री विवाह x अभय कुमार का जन्म x अभय राजगृह पहुँचा x मंत्री के लिए परीक्षा x कुएँ में गिरी अंगूठी ऊपर से निकालना x अभय ने निकाली x श्रेणिक-नंदा की भेंट x उज्जयिनी का प्रद्योत युद्ध करने आया x साथी राजा के स्कंधावार में लोहे के घड़े में दीनार गड़ाई x प्रद्योत को कहा - तेरे साथी राजा फूट गए हैं x वह भागा x पीछे से सेना को मारा xx

एकदा प्रद्योत ने राजसभा में कहा - क्या मेरे पास कोई ऐसा नहीं है जो अभय को पकड़ लाए x कुछ देर बाद एक गणिका - मैं लाऊँगी किंतु सहाय करो x प्रद्योत ने इसकी इच्छानुसार 7 मध्यमवयवाली स्त्री - प्रौढ़ आदमी वि. दिए x गणिका ने

Notes   Date :

साध्वी जी के पास श्राविका का आचार सीखा x राजगृह पहुँची x उद्यान में रही x
चैत्यों में वंदन करती हुई क्रमश: अभय के चैत्य में निसीहि बोलकर प्रवेश
किया x आभूषण रहित उन्हें देखकर अभय ने उन्हें सब जगह वंदन कराए x फिर
पूछा - आप कहाँ से आए हो ? x गणिका - उज्जयिनी में अमुक वणिक् के पुत्र
हमारे पति हैं, उनकी मृत्यु हुई अत: दीक्षा की भावना वाली हैं, दीक्षा के बाद
स्वाध्यायादि के कारण चैत्य वंदन करना शक्य नहीं है, इसलिए चैत्यों की
वंदना करने निकले हैं x अभय - आप आज मुझे लाभ दो x गणिका - हमें
उपवास है x दूसरे दिन सुबह अभय अकेला घोड़े पर विनंति करने गया - मुझे
पारणे का लाभ दो x उन्होंने कहा - आप यहीं लाभ दो x अभय - आज मैं आता
हूँ, बाद में तुम आना x वह बैठा x मूर्च्छा करने वाली अनेक वस्तु उसे खिलाई
फिर मदिरा पिलाई x वह वहीं सो गया x अश्वरथ में डालकर ले गए x बीच-
बीच में अन्य अश्वरथ भी तैयार रखे थे x प्रद्योत ने उसे बंधाया, फिर कहा -
तेरी पंडिताई कहाँ गई x अभय - तूने तो धर्म के बहाने ठगा है x पहले आई
हुई ~~उस~~ अभय की पत्नी उसके सामने आई x

उसकी पत्नी वहाँ कैसे आई ? - श्रेणिक राजा का एक मित्र विद्याधर था x
कायम मैत्री करने के लिए श्रेणिक ने सेना नामक बहन उसे दी x विद्याधर
को वह बहुत प्रिय थी x दूसरी पत्नियों ने ईर्ष्या से मार डाली x उसे एक पुत्री
थी x उसे न मारे इस डर से विद्याधर श्रेणिक के पास ले गया x इस कन्या को
युवान होने पर अभय के साथ विवाहित की x अभय को वह बहुत प्रिय हुई x
अभय की अन्य पत्नियों ने ईर्ष्या से एक मैली विद्या वाली चंडालन को बुलाया
x (आगे की कथा नमस्कार निर्युक्ति, चक्षु इंद्रिय के दृष्टांत में भाग 3 Pg 60, 62)
चंडालन - उस पर कलंक लगाओ, जिससे पति उसे छोड़ दे x नगर में मरकी फैलाई x
फिर विद्या से उस कन्या के आस पास माँस-खून बिखेरकर राजा द्वारा उसे
मारने की आज्ञा कराई x आधी रात को उसे मारने चंडालन जंगल में ले गई x
किंतु दया आने से छोड़ दिया x गहन जंगल में तापस मिले x तापस - तू कहाँ
से आई ? x उसने वृतांत कहा x वे तापस श्रेणिक के पूर्वज थे x उसे पौत्री

Notes Date : 167

मानकर रखा x कुछ समय बाद सार्थ के साथ उज्जयिनी लेजाकर शिवादेवी रानी को सौंपी x

प्रद्योत राजा ने अभय की पत्नी उसे दी x अभय पत्नी के साथ रहा x

प्रद्योत के पास 4 रत्न थे - 1. लोहजंघ दूत 2. अग्निभीरु रथ 3. अनलगिरि हाथी 4. शिवादेवी।

एकदा प्रद्योत ने लोहजंघ को भरूच भेजा x वहाँ के राजा ने सोचा - ये एक ही दिन में 25 यो. आ जाता है, इसलिए राजा बार-बार हमें बुलाता है, इसे मार दें तो अन्य दूत बहुत दिन में यहाँ आएगा, तब तक हमें शांति x उन राजाओं ने इसे भाता दिया x किंतु दूत मना करता है x वे आग्रह कर देते हैं, उसके पास रहा भाता ले लेते हैं x भाते में विषाक्त मोदक थे x लोहजंघ कुछ योजन के बाद खाने बैठा तभी पक्षी आवाज करता है x अपशुकन मानकर आगे चला x ऐसा 3 बार हुआ x उज्जयिनी पहुँचकर राजकार्य कहा और भाते की बात भी की x प्रद्योत ने अभय को पूछा x अभय ने भाते को सूँघकर कहा - अमुक द्रव्य संयोग से इसमें दृष्टिविष सर्प उत्पन्न हुआ है, यदि तू खोलता तो मर जाता x प्रद्योत - इसका क्या करें? x अभय - वन की झाड़ी में छोड़ो x आदमियों ने पराङ्मुख छोड़ा x आस-पास का वन जल गया x अंतर्मुहूर्त में साँप भी मर गया x प्रद्योत ने अभय को वरदान दिया x अभय ने उसके पास ही सुरक्षित रखने कहा x x

एकदा अनलगिरि हाथी पागल हुआ x अभय ने पूछने पर कहा - उदायन राजा गाए तो यह हाथी वश में होगा x उदायन राजा प्रद्योत के कब्जे में था x
वह प्रद्योत के कब्जे में कैसे था? - प्रद्योत की वासवदत्ता पुत्री x इसे सब कला सीखाई थी x गंधर्वकला में उदायन राजा कुशल था x प्रद्योत ने उसे पकड़ने का उपाय सोचा x उदायन हाथी को देखकर गाने लगता तो हाथी खींचकर उसके पास आ जाते, उस हाथी को कोई बांधे तो भी हाथी को खबर नहीं पड़ती x इसलिए प्रद्योत ने यंत्रमय हाथी बनवाया x सैनिकों को यंत्र से हाथी चलाना सीखाया x

Notes Date :

उदायन राजा के देश की सीमा पर उसे चराते हैं x हाथी को देखकर उदायन वहाँ गाने लगा x हाथी सुनकर खड़ा रहा x उदायन उसके पास गया x तुरंत हाथी में से निकलकर सैनिकों ने पकड़कर प्रद्योत के सामने लाया x प्रद्योत - मेरी पुत्री काणी है, उसे तू गंधर्व कला सीखा, उसे देखना मत वरना वह शरमाएगी x ऐसे पुत्री को कहा - वह कोढ़ी है अतः तू देखना मत x उदायन के स्वर से वह आकर्षित किंतु सोचा - एक बार उपाध्याय को देखना है x ऐसे विचार में वह उल्टा ही बोलती है x उदायन गुस्से में बोला - हे काणी! तू उल्टा क्यों बोलती है? x वासवदत्ता - हे कोढ़ी! तेरे कोढ़ को देख, मुझे काणी मत कह x उदायन ने सोचा - जैसे मैं कोढ़ी नहीं हूँ वैसे ये काणी नहीं होगी x पर्दा हटाया x परस्पर अनुराग हुआ x यह बात वासवदत्ता की धावमाता कांचनमाला दासी जान गई x (ऐसे उदायन को प्रद्योत ने वश किया)

उदायन को कहा - तू गा x उदायन - भद्रवती हथिनी पर तेरी पुत्री और मैं दोनों गाएँगे x बीच में पर्दा कर बैठे, गाया x हाथी वश में आया x प्रद्योत ने खुश होकर दूसरा वरदान अभय को दिया x अभय ने उसके पास सुरक्षित रखने कहा x इधर उदायन-वासवदत्ता हथिनी पर ही भाग गए x

अन्य प्रत - एकदा प्रद्योत वासवदत्ता को लेकर एक महोत्सव में गया x वहाँ उदायन राजा का योगंधराज मंत्री पागल बनकर जोर-जोर से चिल्लाता है - इसी लंबी आँखवाली स्त्री को मैं राजा के लिए न ले जाऊँ तो मैं योगंधराज नहीं x प्रद्योत ने पागल मानकर कुछ ध्यान नहीं दिया x कांचनमाला और वसंत महावत ने पहले ही मूत्र के घड़े रखे, घोषवाली वीणा ली x हथिनी को बगल से बांधने पर जोर से उसने आवाज किया x तब सक्कुर नामक अंधे मंत्री ने कहा - आवाज सुनकर ऐसा लगता है कि यह हथिनी 100 यो. जाकर मर जाएगी x सभी भागे x अनलगिरि हाथी को तैयार किया तब तक 25 यो. आगे निकल गए x अनलगिरि के पास में आने पर 1 मूत्र का घड़ा फोड़ा x हाथी सूंघने लगा, तब तक 25 यो. निकल गए x ऐसे उदायन स्वयं के नगर पहुँच गया xx।

एकदा उज्जयिनी में आग लगी x नगर जलने लगा x पूछने पर अभय - विष का

औषध्य विष है, ऐसे अग्नि का औषध्य अग्नि है x दूसरा अग्नि जगाकर उसे शांत किया x प्रद्योत ने तीसरा वरदान दिया x अभय ने उसके पास सुरक्षित रखने कहा xx

एकदा उज्जयिनी में रोग उत्पन्न हुआ x उपाय पूछने पर अभय- आप बैठक सभा में सर्व अलंकारों से विभूषित रानियों के साथ दृष्टि युद्ध करो, जो जीते वह कहना x सभी रानी के मुँह नीचे हुए x मात्र शिवादेवी जीती, राजा हारे x अभय को कहा - तेरी मासी से मैं हारा x अभय- शिवादेवी खेदसहित रात को घड़ा भरकर बलि पूजा करे, जो भूत खड़ा हो उसके मुँह में बलि डालना x ऐसे त्रिक - चत्वरादि सभी जगह किया x सभी भूत को जीता x प्रद्योत ने अभय को चौथा वरदान दिया x अभय ने राजगृह जाने के विचार से कहा - चारों वर एक साथ दो x प्रद्योत - ~~कर~~ बोल x अभय - अग्निभीरु रथ की लकड़ी से चिता बनाओ, अनलगिरि हाथी के साथ महावत बनो, मैं शिवादेवी की गोद में बैठकर अग्नि प्रवेश करूँ x राजा ने खिन्न होकर उसे सत्कार छोड़ा x जाते हुए अभय- आपने मुझे छल से पकड़ा, मैं दिन में सूर्य होने पर रोते हुए आपको नगर के बीच से न ले जाऊँ तो अग्नि में प्रवेश करूँगा x पत्नी के साथ अभय निकला xx

राजगृह में एक जैसी ~~सी~~ रूप वाली गणिका की दो पुत्रियाँ ~~कन्~~ लेकर व्यापारी का वेश बनाकर अभय उज्जयिनी गया x ~~x~~ राजमार्ग पर एक स्थान में रहा x प्रद्योत ने कन्याओं को देखकर दासी भेजी x कन्याओं ने बहुत क्रोध किया x दूसरे दिन कम क्रोध किया x तीसरे दिन दासी को कहा - 7वें दिन देवकुल में देवयात्रा होने से घर में एकांत होगा, बाकी हमारा भाई यहाँ रहता है x दूसरी ओर अभय ने प्रद्योत जैसी आकृति वाले आदमी को पागल बनाया x रोज पलंग पर बांधकर ले जाता x वह चिल्लाता - मैं प्रद्योत हूँ, मुझे बचाओ x 7वें दिन कन्याओं ने प्रद्योत को कहलाया - ~~x~~ अकेला मिलने आना x प्रद्योत अकेला आया x पीछे गवाक्ष से चढ़ा वैसे ही पहले से संकेत वाले आदमियों ने पकड़कर पलंग पर बांधा x दूसरे दिन नगर के बीच से अभय ले गया x ऐसे आगे अश्वरथ में डालकर

Notes Date :

राजगृह ले गए x श्रेणिक को कहा x वह तलवार से मारने आया x अभय ने रोका x अभय ने सत्कार कर छोड़ दिया x यह अभयकुमार का उत्थान कहा x

अब चेलणा रानी का उत्थान – राजगृह x प्रसेनजित x नाग सारथी, सुलसा पत्नी x नाग पुत्र के लिए इंद्रादि देवों को पूजता है x सुलसा श्राविका होने से नहीं पूजती x सुलसा – आप दूसरी कन्या से विवाह करे x नाग – तुझसे ही पुत्र होगा x पति ने वैद्य के कहने से लक्षपाक तैल के 3 शीशे बनवाए x

शक्र ने सभा में प्रशंसा की x – सुलसा ऐसी श्राविका है x एक देव परीक्षा करने साधु का रूप लेकर आया x सुलसा ने तुरंत वंदन किया x साधु ने लक्षपाक तैल माँगा x सुलसा से तीनों शीशे नीचे उतारने में फूट गए किंतु साधु को वोहराने वाले होने से उसने खेद नहीं किया x देव ने प्रगट होकर इच्छित वस्तु माँगने कहा x पुत्र माँगने पर देव ने 32 गुटिका दी और कहा – तुझे 32 पुत्र होंगे, 1-1 कर खाना और काम हो तब याद करना x सुलसा ने सोचा – इतने समय तक मैं बालकों की अशुचि वहन करूँ उससे अच्छा 32 गुटिका से एक ही पुत्र हो x 32 ~~गुस~~ गुटिका एक साथ खाई x 32 गर्भ हुए x पेट बहुत बड़ा x तकलीफ होने पर काउसग्ग किया x देव ने आकर कहा – तूने अच्छा नहीं किया, 32 पुत्र होंगे किंतु एक समान आयु वाले होंगे x 32 पुत्र हुए x सभी ~~एक सम~~ श्रेणिक की समान उम्र के थे x भविष्य में वे श्रेणिक के अंगरक्षक बने और देवदत्त रूप में प्रसिद्ध हुए।

वैशाली नगर में हैहय कुल का चेटक राजा था x उसे अलग-अलग रानियों से 7 पुत्री – प्रभावती, पद्मावती, मृगावती, शिवा, ज्येष्ठा, सुज्येष्ठा, चेलणा x चेटक श्रावक था x उसे दूसरे का विवाह कराने का व्रत था अतः पुत्री का विवाह वह नहीं करता है x परिवार के बड़ीलों ने पुत्रियों के लग्न किए → प्रभावती – वीतभय नगर के उदायन राजा, ~~क~~ पद्मावती – चंपा के दधिवाहन राजा, मृगावती – शतानिक राजा, शिवा – उज्जयिनी के चंडप्रद्योत राजा, ज्येष्ठा कुंडग्राम में महावीर स्वामी के बड़े भाई नंदिवर्धन को दी x सुज्येष्ठा और चेलणा के लग्न बाकी थे x

कन्याओं के अंतःपुर में एकदा एक परिव्राजिका आई x उसने स्वयं के धर्म का सही

Notes Date : 171

सिद्ध किया x सुज्येष्ठा ने चर्चा में हराकर निकाल दिया x द्वेष लेकर परिव्राजिका ने सुज्येष्ठा का चित्र राजगृह में श्रेणिक को बताया x श्रेणिक मोहित हुआ x दूत भेजा x चेटक ने वाहिककुल में पुत्री देने का मना किया x श्रेणिक ने अभय को कहा x अभय ने उपाय सोचा x

वह स्वर और शरीर का वर्ण बदलकर वणिक् का वेश बनाकर वैशाली गया x अंतःपुर के पास दुकान खोली x श्रेणिक का चित्र रखा x अंतःपुर की दासियों को सस्ते में सामान देकर आकर्षित किया x एकदा दासी ने पूछा - ये चित्र किसका है ? x अभय - मेरे स्वामी श्रेणिक का x दासी - इतना सुंदर रूप है ? x अभय - उनका चित्र बनाने में कोई समर्थ नहीं है, यह तो जैसा-तैसा बना है x दासी ने अंतःपुर में कहा x कन्या - चित्र यहाँ लाओ x दासी ने अभय से चित्र माँगा x अभय ने बहुत मनाकानी कर चित्र दिया x छुपाकर दासी अंतःपुर में ले गई x सुज्येष्ठा देखकर मोहित हुई x दासी ने अभय को पूछा - श्रेणिक कैसे हमारी राजकुमारी का पति हो ? x अभय - यदि राजकुमारी इच्छे तो श्रेणिक को मैं यहाँ लाऊँ x श्रेणिक वैशाली आया x कन्या अंतःपुर से राजगृह तक सुरंग खोदी x सुज्येष्ठा ने चेलणा को कहा - मैं श्रेणिक के साथ जा रही हूँ x चेलणा - मैं भी आऊँगी x दोनों श्रेणिक के साथ चली x आगे जाने पर सुज्येष्ठा को आभूषण का डब्बा याद आया x वह बोली - आप यहाँ रहो, मैं आभूषण लेकर आती हूँ x सुज्येष्ठा गई x चेलणा - शत्रु के स्थान में रहने से जोखम है अतः हम धीरे-धीरे चलें x दोनों चले x सुज्येष्ठा वापस आई x वहाँ दोनों को न देखकर वापस गई और चिल्लाने लगी - चेलणा को कोई ले गया x चेटक तैयार हुआ किंतु वीरांगद सारथी ने कहा - मैं ले आता हूँ x वीरांगद जल्दी चला x आगे गुफा आई, वहाँ एक ही रथ निकलने की जगह थी x वहाँ सुलसा के 32 पुत्र खड़े थे x वीरांगद ने एक ही बाण से मार दिया x जब तक उनके 32 रथ हराकर वीरांगद निकला, तब तक श्रेणिक भाग गया, जिससे वीरांगद भी वापस आया x

श्रेणिक ने 'सुज्येष्ठा' कह बुलाया तब चेलणा बोली - मैं चेलणा हूँ x श्रेणिक - तू भी सुज्येष्ठा जैसी ही रूपवान् है x श्रेणिक को चेलणा मिलने से आनंद और 32 अंगरक्षक मरने का शोक था x चेलणा को श्रेणिक मिलने का आनंद

Notes Date :

और सुज्येष्ठा रह जाने का शोक था x सुज्येष्ठा ने कामभोगों को धिक्कार कर दीक्षा ली xx

चेल्लणा से कोणिक पुत्र हुआ x

कोणिक का पूर्वभव - एक नगर में जितशत्रु राजा का सुमंगल पुत्र x एक सेनक मंत्रीपुत्र था, जिसके का पैर बहुत बड़ा था x सब उसे चिढ़ाते हैं x परेशान होकर दीक्षा ली x अज्ञानतप किया x सुमंगल राजा बना x एक दा तपस्वी को देखकर पारणे का आमंत्रण दिया x मासक्षमण के पारणे पर आए x राजा बीमार - दखजेबंध x सेनक ने पुनः मासक्षमण किया x ठीक होने पर राजा पुनः आमंत्रण दिया x ऐसे दुबार पारणा दिया x तीसरी बार द्वारपाल ने सोचा - जब ये आता है, तब राजा बीमार होता है x उसे मारा x निदान - मैं इसका वध करूँ x

मरकर वाणव्यंतर हुआ x राजा ने तापसधर्म में दीक्षा ली x मरकर वाणव्यंतर हुआ। सुमंगल राजा - श्रेणिक बना x सेनक का जीव कोणिक बना x चेल्लणा के गर्भ में आने चेल्लणा को श्रेणिक का मुख देखने की इच्छा भी न हुई x अतः गर्भपात के प्रयत्न किए किंतु निष्फल x दोहद हुआ - श्रेणिक के पैर का मांस खाने की x पूर्ण न होने से दुबली हुई x बहुत आग्रह करने पर कहा x श्रेणिक ने अभय को कहा x अभय ने चमड़े के साथ खरगोश का मांस श्रेणिक के पैर पर बांधा x खिड़की में खड़ी चेल्लना के सामने अभय श्रेणिक के पैर पर बंधा मांस चेल्लना को देता है, श्रेणिक बेहोशी का नाटक करता है x चेल्लना जब श्रेणिक को सोचती है तब दुःखी होती है, जब गर्भ को सोचती है तब जल्दी खाने मिले ऐसे विचार आए x दोहद पूर्ण हुआ x 9 मास में पुत्र जन्मा x चेल्लना ने अशोक वन में छोड़ाया x खबर पड़ने पर श्रेणिक चेल्लना को डाँटकर स्वयं अशोकवन में गया x कोणिक के तेज से अशोकवाटिका प्रकाशित होने से अशोकचंद्र नाम रखा x वहाँ मुर्गे के पींछे से उसकी छोटी उंगली बींधाई x वह चिकित्सा से भी ठीक न हुई इसलिए कूणित उंगली से कोणिक नाम रखा x जब उस उंगली में से पस निकलता तब श्रेणिक उस उंगली को मुख में लेता जिससे कोणिक रोना बंद करता x

कोणिक के बाद चेल्लना को दो पुत्र हुए - हल्ल, विहल्ल x अन्य रानियों से श्रेणिक

की अनेक पुत्र थे x जब स्कंधावार के महोत्सव में जाते हैं तब चेलना कोणिक के लिए गुड़ के लड्डू और हल्ल-विहल्ल के लिए शक्कर के लड्डू भेजती है x किंतु श्रेणिक के वैर से कोणिक समझता है कि श्रेणिक ऐसा भेदभाव करता है x अतः उसे पिता पर द्वेष हुआ x थोड़े समय बाद x कन्या से कोणिक का विवाह हुआ x

श्रेणिक को राज्य की जितनी कीमत थी, उतनी ही देवदत्त हार और सेचनक हाथी की कीमत थी x

देवदत्त हार की प्राप्ति → कौशांबी नगरी x एक ब्राह्मण, ब्राह्मणी गर्भवती x ~~ब्राह्मण~~ ब्राह्मणी - घी बिना नहीं चलेगा अतः घी के पैसे लाओ x ब्राह्मण - कैसे ? x ब्राह्मणी - राजा को जैसे पुष्प - फल चाहिए, वैसे पहुँचाओ x वह वैसे करने लगा x एकदा प्रद्योत ने कौशांबी पर चढ़ाई की x शतानिक राजा डरकर यमुना के दक्षिण x किनारे से उत्तर किनारे पर गया और जाने का रास्ता तोड़ दिया, जिससे दक्षिण किनारे पर पड़ाव डालकर प्रद्योत वहीं रहा x घास वि. लेने आने वाले प्रद्योत राजा के आदमियों के कान - नाक शतानिक राजा के आदमी काट देते हैं x ऐसे प्रद्योत राजा के आदमी कम हुए x एक रात को प्रद्योत राजा वापस गया x उसी समय पुष्प लेकर जाते हुए ब्राह्मण ने यह समाचार शतानिक राजा को दिए x शतानीक ने पीछे से आक्रमण कर उसके हाथी वि. ले लिए x प्रद्योत भाग गया x शतानीक ब्राह्मण पर खुश हुआ, वरदान दिया x वरदान उसने पत्नी को पूछने कहा x पत्नी ने रोज क्रमशः सब घर में भोजन और एक सोनामुहर माँगी x राजा ने वर दिया x धीरे - धीरे वह ऋद्धि संपन्न हुआ x

उसे पुत्र हुए x पुत्र के लिए ज्यादा धन चाहिए इसलिए वह ज्यादा घर जाकर जीमता और सोनामुहर लाता x भोजन पचता नहीं है x जीम - जीमकर उल्टी करता है, उसे कोढ़ रोग हो गया x सब घृणा करने लगे x मंत्री वि. कहते - तू मत जा, तेरे पुत्र को भेज x पुत्र जीमने जाता और सोनामुहर लाता x थोड़े समय बाद कुटुंब को पिता से लज्जा होने लगी x पिता का घर अलग किया x पुत्रवधू भी अच्छा व्यवहार नहीं करती x ब्राह्मण ने सोचा - मेरे पैसे से सुखी होकर

Notes Date :

मेरा आदर नहीं करते इसलिए सबक सीखाऊँ x एक दिन पुत्रों को कहा - मेरी जीने की इच्छा नहीं है अतः कुलपरंपरा से पशुवध का आचार कर मैं अनशन करूँगा x पुत्रों ने काला बकरा दिया x ब्राह्मण उसे स्वयं का शरीर चराता है, स्वयं के शरीर का पस अन्न के साथ खिलाता है x जब लगा कि यह बराबर कोढ़ रोग से ग्रस्त है तब उसके रोम निकाल देता है x आवाज सुनकर पुत्र आए x बकरे को मारकर कहा - तुम इसका मांस खाना x उन्होंने मांस खाया x सभी कोढ़ी हुए x ब्राह्मण वहाँ से भागा x

एक जंगल में पर्वत की गुफा के पास नदी में अलग-अलग वृक्ष की छाल-पत्ते वि. गिरे थे x शरद् ऋतु की धूप से वह पानी उकाले जैसा हो गया था x ब्राह्मण थकने से वह पानी पीता है x उसे उल्टी हुई, कोढ़ बाहर निकला x वह निरोगी हुआ वह वापस घर आया x लोगों के पूछने पर कहा - देव ने मेरा रोग दूर किया x घर में सब कोढ़ से सड़ रहे थे x वह बोला - पहले मेरी निंदा करते थे ना, अब सड़ो x उन्होंने पूछा - आपने यह किया है? x वह बोला - हाँ x लोगों ने निंदा की x

वह भागकर राजगृह गया x वहाँ द्वारपाल के साथ रहा x द्वार की यक्षिणी को चढ़ा भोजन वह ब्राह्मण खाता है x एक दिन बहुत उंडेरय (पेय विशेष) पी x उस दिन भ. पधारने से द्वारपाल ब्राह्मण को द्वार पर बैठाकर वंदन करने गया x बहुत प्यास लगने पर भी ब्राह्मण पानी नहीं गया x मरकर बावड़ी में मेंढक बना x जातिस्मरण से पूर्वभव का स्मरण हुआ x बावड़ी से बाहर निकलकर भ. को वंदन करने जाता है x अश्व के पैर नीचे मरकर दर्दुरांक देव बना x

शक्र ने सभा में श्रेणिक की प्रशंसा की x दर्दुरांक परीक्षा करने समवसरण में श्रेणिक के पास कोढ़ी का रूप लेकर बैठा x वह कोढ़ी स्वयं के शरीर की फुंसियों को फोड़कर निकलते पस से भ. की पूजा करता है x तभी भ. को छींक आई x पुरुष - आप जल्दी मरो x श्रेणिक को छींक आई x पुरुष - आप जीओ x अभय को छींक आई x पुरुष - आप जीओ या मरो x कालशौकरिक को छींक आई x पुरुष - तू मर नहीं, जी नहीं x भ. को मरो बोलने से श्रेणिक को गुस्सा आया x श्रेणिक ने सैनिकों को कहा कि ये समवसरण बाहर निकले तब पकड़ लेना x समवसरण के बाहर वह पुरुष गायब हो गया x श्रेणिक समझा कि कोई देव होना चाहिए x दूसरे दिन

पुनः समवसरण में भ. को पूछा - वह कौन था? x भ. ने ब्राह्मण और मेंढक का भव कहा x पूर्वभव सुनकर श्रेणिक ने आश्चर्य से पूछा - भ.! आपको मरो क्यों बोला? x भ. - वह कह रहा था कि आप जल्दी मोक्ष में जाओ; ऐसे ही तू यहाँ है तब तक सुखी है, यहाँ से तू नरक में जाएगा इसलिए तुझे कहा जीओ; अभय यहाँ भी धर्म करता है, परलोक में भी देव बनेगा इसलिए कहा जीओ या मरो; कालसौकरिक रोज 500 पाड़े मारता है, परलोक में नरक में जाएगा इसलिए कहा जी भी नहीं, मर भी नहीं x

श्रेणिक - प्रभु! आपके जैसे स्वामी होने पर भी मैं नरक जाऊँ? कोई उपाय बताओ; भ. - कपिला दासी से भिक्षा दान करा या कालसौकरिक को पशुवध से रोक तो तू नरक नहीं जाएगा x कालसौकरिक अभव्य था और कपिला दासी जिनवचन नहीं मानती x श्रेणिक ने सौम्यता से कपिला को कहा - तू भक्तिपूर्वक साधुओं को वंदन कर x उसने मना किया x श्रे. - मैं तुझे मारूँगा x तो भी न मानी, कालसौकरिक भी न माना और कहने लगा - मेरे पशुवध से नगर के कितने लोग सुखी हैं अतः दोष क्या है x कालसौकरिक के पुत्र सुलस को अभयकुमार ने समझाकर रोका x कालसौकरिक ने रोज 500 पाड़े मारने से 7वीं नरक का आयुष्य बांधा x एकदा पालक ने 500 पाड़ों को भगा दिया तो कालसौकरिक ने विभंग ज्ञान से देखकर मारा x उसे 16 महारोग हुए x धातु विपर्यास हुए x पालक ने अभय को कहा x अभय ने विपरीत शब्दादि देने को कहा x उसे रोज गटर का पानी और दुर्गंधी मांस वि. देने लगे x वह मरकर 7वीं नरक गया x स्वजनों ने पालक को धंधा करने समझाया किंतु नरक के भय से वह नहीं माना x स्वजन - तेरे पाप हम बाँट लेंगे, तू एक पाड़ा मार तो शेष स्वजन मारेंगे x ऐसा कहकर एक स्त्री पाड़ा लाई, एक कुल्हाड़ी लाई x वह कुल्हाड़ी पालक ने पैर पर मारी और कहा - लो मेरा दर्द बाँट लो x स्वजन - हम समर्थ नहीं हैं x पालक - तो पाप बाँटने का कैसे कहोगे x x

इधर दुर्दरांक देव ने परीक्षा की और श्रेणिक पास हुआ x देव ने 18 सेर का हार और 2 गोले दिए x श्रेणिक ने हार प्रिय होने से चेलना को दिया और

Notes Date :

दो गोले नंदा को दिए x नंदा को गुस्सा आया - मैं क्या छोटी बालिका हूँ कि मुझे खेलने के लिए 2 गोले दिए ? x गोले फेंके x थंभे से टकराकर टूटे x एक गोले से कुंडल युगल और एक से वस्त्र युगल निकला x वह नंदा ने लिए x x

सेचनक हाथी की प्राप्ति → वन में एक हाथी का जूथ x जूथ में हाथी उत्पन्न होने वाले बच्चे को मार डालता है, जिससे कोई दूसरा यूथपति न बने x तब एक गर्भवती हाथिनी जूथ से धीरे-धीरे चलकर अलग हुई x मस्तक पर घास के पूले लेकर तापसाश्रम में गई x वहाँ पुत्र को जन्म दिया x हाथी के जूथ के साथ चरती हुई अवसर देखकर स्तनपान कराती x बच्चा बड़ा हुआ x आश्रम में तापस के पुत्र बहुत जातियों के पुष्पों को सींचते हैं x हाथी भी सूँड में पानी भरकर सींचता है x अतः सेचनक नाम पड़ा x बड़ा होकर वह मद झरता हुआ हाथी बना x उसने यूथपति को मारा और स्वयं यूथपति बना x एकदा तापस 'राजा ईनाम देगा' ऐसे लोभ से उसे मोदक से ललचाकर राजगृह ले गए और हस्तिशाला में बांधा x एकदा आश्रम का कुलपति पूर्व के राग से मिलने गया और उसे हाथ दिया, तो हाथी ने उसे मार दिया x

अन्य मत - यूथपति बनने के बाद मेरी माता की तरह दूसरी हाथिनी आश्रम में पुत्र जन्म न दे इसलिए आश्रम तोड़ा x तापसों ने श्रेणिक को कहा तो श्रेणिक ने उसे पकड़वाया x x ।

सेचनक हाथी का पूर्वभव → एक ब्राह्मण यज्ञ करता है x उसने दास को यज्ञ करने के स्थान में रखा x दास - यदि बढ़ा हुआ शेष भोजन मुझे दो तो मैं रहूँ, बाकी मुझे नहीं रहना x वह बढ़ा हुआ भोजन दास को देता x दास वह भोजन साधुओं को वहोराता x दास ने देवायु बांधा x देवलोक गया x च्यवकर श्रेणिक का पुत्र नंदिषेण बना x ब्राह्मण संसार में भटककर सेचनक हाथी बना x

श्रेणिक ने हाथी को हस्तिशाला में बांधा x तापस वहाँ हाथी का तिरस्कार करते हैं तब गुस्से में आलान स्तंभ तोड़कर तापस को मारने दौड़ा x श्रेणिक के

सैनिक वि. भी नहीं पकड़ पाते x तब वह नंदिषेण के वचन सुनकर शांत हुआ x विभंगज्ञान से हाथी ने नंदिषेण के साथ पूर्वभव का संबंध जाना x नंदिषेण ने शांत होने का कारण भ. को पूछा x भ. ने वृत्तांत कहा xx

एकदा श्रेणिक ने अभय को राज्य लेने कहा x अभय ने थोड़ा Time राह देखने कहा x भ. पधारे x अभय ने पूछा - अंतिम राजर्षि कौन ? x भ. - उदायन राजा के बाद मुकुटबद्ध राजा (अभिषेक किए हुए) दीक्षा नहीं लेंगे x अभय ने राज्य नहीं स्वीकारा तो श्रेणिक ने कोणिक को राज्य देने का विचार किया x ऐसा सोचकर हल्ल को सेचनक हाथी और विहल्ल को 18 सेर का हार दिया x नंदा ने कुंडल और वस्त्र हल्ल-विहल्ल को दिए x वैभवपूर्वक अभय ने माता के साथ दीक्षा ली x

एकदा काल वि. 10 भाई के साथ कोणिक ने कहा - श्रेणिक को बांधकर हम राज्य के 11 भाग बाँट लेंगे x सबने हाँ की x श्रेणिक को बांधकर सुबह-शाम रोज 100-100 चाबुक मराता है x चेलना भी कभी भी नहीं जा सकती, Fix Time में ही जा सकती x श्रेणिक का भोजन-पान भी बंद कराया x

चेलना रोज बालों में उड़द बांधकर, दारु से 100 बार बाल धोकर जाती x उड़द खाकर श्रेणिक पानी की जगह दारु पीता जिससे चाबुक की मार कम लगती x

एकदा कोणिक जीमते हुए पद्मावती रानी से उत्पन्न उदायी पुत्र को गोद में लेकर बैठा था x पुत्र ने मात्रु किया तो थाली में गिरा x तो भी कोणिक उठा नहीं और जितने भाग में मात्रु गिरा उतने चावल दूर किए x फिर माता को बोला - क्या किसी दूसरे पिता को पुत्र इतना प्रिय हो सकता है ? x माता - हे दुरात्मन् ! तेरी उंगली में से जब कृमि गिरते थे तब तेरे पिता उंगली मुख में रखते थे, जिससे नहीं तो तू रोने लगता था x को. - तो पिता गुड़ के मोदक क्यों भेजते थे ? x माता - वह मैंने भेजे थे वि. वृत्तान्त कहा x वह पिघल गया x 'पिता की बेड़ी तोड़ दूँ' ऐसे विचार से लोहदंड लेकर दौड़ा x रक्षकों ने श्रेणिक को कहा, -

Notes   Date :

देखो, ये पापी लोहदंड लेकर आ रहा है x श्रेणिक ने सोचा - खबर नहीं अब कैसे मारेगा? तालपुट विष खाया x कोणिक के आने के पहले श्रेणिक मर गया x मरण से कोणिक को बहुत दुःख हुआ x अग्निसंस्कार घर आया x राज्य छोड़कर पूरे दिन पिता के साथ स्वयं के कुवर्तन को सोचने लगा x मंत्रियों ने राज्य की चिंता से ताम्रपत्र में पिंडदान की विधि लिखकर, पत्र जीर्ण बनाकर कोणिक को बताया x तबसे पिंडदान शुरू हुआ x कुछ समय बाद कोणिक का शोक दूर हुआ x परंतु पिता की शय्या वि. को देखकर शोक न हो इसलिए कोणिक ने राजगृह छोड़ने का विचार किया x वास्तुशास्त्र में निपुण पुरुषों को भेजकर योग्य भूमि शोधी x एक जगह चंपक वृक्ष देखकर चंपा नगरी बसाई xx

चंपा में हल्ल-विहल्ल सेचनक हाथी पर आरूढ़ होकर भवन-उद्यान-बावड़ी में क्रीड़ा करते हैं x हाथी भी अंतःपुर की रानियों को खिलाता है x कोणिक की पत्नी पद्मावती ने देखकर ईर्ष्या से हार वि. लेने कोणिक को कहा x कोणिक ने मना किया कि पिता ने उन्हें दिए हैं x पत्नी ने आग्रह किया x कोणिक ने हल्ल विहल्ल को कहा - हम राज्य आधा-आधा ले लें और सेचनक हाथी तुम मुझे दे दो x हल्ल विहल्ल - सोचकर देंगे x भवन में आकर सोचा - हम यहाँ सुरक्षित नहीं हैं अतः नाना चेटक राजा के वैशाली नगर में पहुँचे x
कोणिक ने खबर पड़ने पर दूत भेजा - कुमार को आप रखो, हाथी भेज दो x चेटक - जैसे ~~कुणिक~~ ~~मेरे~~ पौत्र हैं, वैसे कुमार भी पौत्र हैं अतः शरणार्थी से हाथी मैं कैसे छीन लूँ x कोणिक ने पुनः दूत भेजा - हाथी भेजो, नहीं तो युद्ध के लिए तैयार हो जाओ x चेटक ने दूत भेजा - तेरी इच्छानुसार तू कर xx

कोणिक ने कालादि 10 भाईओं को बुलाया x प्रत्येक के पास 3-3 हजार हाथी, 3-3 हजार रथ, 3-3 हजार घोड़े, 3-3 करोड़ सैनिक थे x 11 भाई की कुल मिलाकर 33000 हाथी-रथ-घोड़े, 33 करोड़ सैनिक x
यह सुनकर चेटक ने 18 सामंत राजाओं को बुलाया x उनमें भी प्रत्येक के पास 3-3 हजार हाथी-रथ-घोड़े और 3-3 करोड़ सैनिक थे x कुल मिलाकर

चेटक सहित 19 राजाओं के 57 हजार हाथी-रथ-घोड़े, 57 करोड़ सैनिक x
युद्ध शुरु हुआ x कोणिक का गरुड़ व्यूह और चेटक का सागर व्यूह था x काल
कोणिक का सेनापति था x वह लड़ते हुए चेटक राजा के पास पहुँच गया x
चेटक को रोज एक ही बाण मारने का अभिग्रह था x वह बाण देव के वरदान
से अमोघ था x उससे चेटक ने काल को मारा x ऐसे 10 दिन में 10 भाई
मर गए x 11वें दिन कोणिक ने अट्ठम किया x शक्रेंद्र और चमरेंद्र आए x
कोणिक ने कहा- यदि आप प्रसन्न हो तो चेटक को मारो x शक्र- वह श्रावक
है अत: इसे मैं नहीं मारूँगा किंतु तेरा रक्षण करूँगा x चमरेंद्र ने महाशिला
कंटक (जिससे शत्रु द्वारा फेंकी हुई महाशिला भी कंकर हो जाए और हमारे द्वारा
फेंका गया कंकर भी महाशिला हो जाती है) और रथमुशल (मुशल युक्त रथ
चारों ओर शीघ्रता से घूमता है) विकुर्वे x कोणिक उद्धत होकर युद्ध करने आया x
कोणिक पर चेटक ने बाण छोड़ा x शक्र ने कोणिक के आगे वज्रकवच रखा और
चमरेंद्र ने पीछे लोह कवच रखा x चेटक का बाण वज्रकवच से टकराकर गिरा x
सामंत राजा चेटक का पुण्य कम मानकर पीछे हट गए x चेटक भी वैशाली में
गया x कोणिक ने वैशाली को ~~कस~~ घेरा x 12 साल तक रहा x 12 वर्ष दरम्यान रोज
रात को सेचनक हाथी पर हल्ल-विहल्ल आकर शत्रु सेना को मारते हैं x कोणिक ने
मंत्रिया को पूछा- कैसे इन्हें मारें ? x मंत्री- हाथी को मारना पड़े x कोणिक- मार डालो x
उन्होंने रास्ते में खाई खोदाकर अंगारे भरवाए x रात को हल्ल-विहल्ल निकले x हाथी
विभंग ज्ञान से खाई जानकर आगे नहीं बढ़ता x तब गुस्से में कुमार बोले- तेरे कारण
तो आपत्ति आई है और तू ही पीछे हटता है। x हाथी पीठ से उन्हें नीचे
गिराकर स्वयं खाई में गिरकर मरा और पहली नरक में गया xx
पश्चात्ताप से दोनों कुमार ने भ. का शिष्यत्व स्वीकारा x देवी ने भ. के पास उनका
संहरण किया x दोनों ने दीक्षा ली xx
इनके जाने के बाद भी कोणिक नगर को जीत न सका तब प्रतिज्ञा की-
यदि इस नगर को गधे में जुड़े हुए हल से जोतूं नहीं तो अग्निप्रवेश या
भृगुपात करूँगा x बहुत प्रयत्न करने पर भी नगरी के किले टूटते नहीं हैं x.

Notes Date :

कोणिक को ज्यादा चिंता हुई x तब कूलवालक मुनि पर गुस्सा हुई देवी ने आकाशवाणी करी - यदि कूलवालक मुनि मागधिका वेश्या के वश में हो तो कोणिक वैशाली प्राप्त करेगा x कोणिक सुनकर चंपा नगरी में गया x मागधिका वेश्या को बुलाया x कूलवालक मुनि का परिचय प्राप्त कर उसे काम सौंपा x ~~कपट~~ कपट श्राविका बनकर वह निकली x

कूलवालक मुनि की कथा नमस्कार निर्युक्ति में पारिणामिकी बुद्धि के स्तूप दृष्टांत में कही है (भाग 3 पृ.100) — उज्जयंत पर्वत पर गुरु के साथ जाना, शिला छोड़ना, पैर पसारना, शाप देना, गुरु का वचन मिथ्या करने नदी किनारे तप, तप से नदी का प्रवाह मुड़ गया x वेश्या ने मोदक खिलाए x अतिसार रोग x वेश्या द्वारा सेवा x सेवा से वश हुए मुनि के पास भोग माँगना x कोणिक के पास आए x वैशाली नगरी को हराने का कथन x मुनि नगरी में गए x मुनिसुव्रत स्वामी के स्तूप तोड़ने की प्रेरणा x विश्वास में लेने के लिए धीरे-धीरे सेना पीछे लेना x पूरा स्तूप तोड़ने पर नगरी पर हमला x नगरी को हराकर गधे में हल जोड़कर ~~की~~ जमीन जोती x कोणिक चेटक को मारने जाता है तब माता रोकती है x कोणिक - हे चेटक! आप मेरे पूज्य हो, मैं क्या करूँ! x चेटक ने कहलाया - मैं बावड़ी से बाहर न निकलूँ तब तक तू नगरी में प्रवेश मत करना x

चेटक ने लोहे की प्रतिमा बांधकर बावड़ी में डूबकी लगाई x धरणेंद्र साधर्मिक जानकर स्वयं के भवन में ले गया x वहाँ मरकर चेटक राजा देवलोक गए xx।

वैशाली नगरी के लोगों को महेश्वर विद्या से नीलवंत पर्वत पर ले गया x

महेश्वर की कथा - चेटक राजा की पुत्री सुज्येष्ठा ने दीक्षा ली x वे उपाश्रय में एक जगह आतापना ले रहे थे x इधर पेढाल नामक एक विद्या सिद्ध परिव्राजक स्वयं की विद्याएँ देने के लिए योग्य पुरुष ढूँढता है x उसने सोचा - किसी ब्रह्मचारिणी स्त्री से यदि पुत्र हो तो वह योग्य होगा x उसने आतापना लेती साध्वी को देखकर धूआँ फैलाया और विद्या से भ्रमर का रूप कर साध्वी के साथ अकार्य किया x साध्वी जी को ऋतुकाल में गर्भ रहा x अतिशय ज्ञानी ने कहा - साध्वीजी को काम विकार नहीं है, वे निर्दोष

है x श्रावककुल में पुत्र बड़ा होता है x एकदा साध्वीजी के साथ वह समवसरण में गया x वहाँ कालसंदीप विद्याधर ने भ. को पूछा – मुझे किससे डर है? x भ. – इस सत्यकी से x कालसंदीप ने सत्यकी का तिरस्कार कर जबरजस्ती पैर में पड़ाया xx

सत्यकी बड़ा होने पर पेढाल परिव्राजक साध्वियों से छीनकर ले गया x उसे विद्याएँ दी x उनमें से महारोहिणी विद्या के लिए वह साधना करता है x इस विद्या की साधना वह पहले 6 भवों से कर रहा था x 5 भवों में साधना करते-करते सत्यकी का जीव मर गया x 6ठे भव में 6 मास ही आयु बाकी होने से विद्या सिद्ध होने की इच्छा नहीं करती x यह सत्यकी का 7वां भव था x उसने साधना शुरू की x

इस साधना में चिता के ऊपर अनाथ मृतक रखकर, उस पर गीला चमड़ा बिछाकर उल्टे अंगुठे से ~~वहाँ~~ तब तक चलना जब तक चिता की लकड़ी जलती रहे x कालसंदीप विद्याधर इसे विघ्न करने आया x वह चिता में लकड़िया डालने लगा x 7 दिन निकल गए x विद्यादेवी ने प्रगट होकर कालसंदीप को कहा – तू अब विघ्न मत कर x कालसंदीप भाग गया x सिद्ध हुई विद्या देवी बोली – हे सत्यकी! तू तेरा एक अंग छोड़, जिससे मैं तेरे शरीर में प्रवेश करूँ x सत्यकी ने कपाल बताया x देवी शरीर में घुसी x कपाल में छिद्र हुआ x देवी ने खुश होकर वहाँ तीसरा नेत्र लगाया xx

सत्यकी ने माता साध्वी का शील भंग करने वाले पेढाल परिव्राजक पिता को मारा x इससे उसका रुद्र नाम पड़ा x ~~विघ्न~~ विघ्न करने वाले कालसंदीप विद्याधर को ढूंढा x वह भागने लगा x सत्यकी पीछे दौड़ा x नीचे-ऊपर दौड़े x कालसंदीप 3 विद्या नगर विकुर्वकर प्र. के पास गया x सत्यकी विद्याओं को मारने लगा तब विद्याएँ बोली – हम तो विद्या हैं, कालसंदीप तो भ. के पास गया x सत्यकी भी भ. के पास गया x देशना सुनकर दोनों ने परस्पर क्षमापना की x अन्य मत – सत्यकी से डरकर कालसंदीप लवणसमुद्र के पाताल में गया x वहाँ जाकर सत्यकी ने उसे मारा xx

बाद में प्रतिबोधित होकर विद्याधरों में चक्री समान वह सत्यकी तीनों के काल के सभी तीर्थंकरों को वंदन कर नाचा और फिर भोगों में लीन हुआ x इससे इंद्र ने उसका महेश्वर नाम रखा xx

वह ब्राह्मणों का द्वेषी है x ब्राह्मणों की कन्याओं और अंतःपुरों को भ्रष्ट करता

Notes Date :

है x उसके दो शिष्य- नंदीश्वर और नंदी x वह पुष्पक विमान से सब जगह जाता है x

एकदा उज्जयिनी के चंडप्रद्योत राजा की शिवादेवी सिवाय अन्य सभी रानियों को भ्रष्ट किया x प्रद्योत ने उसके विनाश का उपाय सोचा x उमा नामक रूपवती गणिका को उसे वश करने को कहा x सत्यकी उस (आकाश) मार्ग से जब भी जाता है, तब वह थूक करती है x एकदा सत्यकी नीचे उतरा x उमा ने उसे एक खीला हुआ और एक बंद पुष्प बताकर कहा, जो अच्छा लगे वो ले लो x सत्यकी ने खीला हुआ पुष्प लेने हाथ आगे किया x उमा ने बंद पुष्प देकर कहा- ये आपके योग्य है x स.- क्यों? x उमा- आप जैसी कन्याओं को इच्छते हो वे सब कामरस से अज्ञात होने से बंद पुष्प की तरह है, मेरे जैसी रूपवती और कामकला में कुशल खीले हुए पुष्प जैसी हूँ, इसलिए आप बंद पुष्प छोड़कर खीले हुए पुष्प लो x उमा के कामपुष्ट वचन सुनकर सत्यकी उसके साथ रहा x उमाने उसका मन जीत लिया x एक बार उमा ने पूछा- आप विद्याएँ कब दूर छोड़ते हो? x सत्यकी- जब मैं मैथुन सेवन करता हूँ तब गणिका ने राजा को कहा- जब वह मैथुन सेवन करे तब उसे मारे और मुझे न मारे ऐसा निपुण पुरुष लाओ x ऐसे निपुण पुरुष को बुलाकर उमा को विश्वास दिलाने के लिए एक उपाय किया - उस पुरुष ने एक स्त्री के पेट पर कमल के पत्तों की थप्पी रखकर ऐसे प्रहार किया कि कमल के सभी पत्ते टूटे किंतु स्त्री को कुछ नहीं हुआ x प्रद्योत ने पुरुष को कहा- उमा को बचाने में सत्यकी बच न जाए इसलिए दोनों को मारो x पुरुष रात को गुप्त रीति से उमा के महल में गए x उन्होंने उमा के साथ मैथुन करते समय ही सत्यकी को उमा के साथ ही मार दिया x

मृत्यु के समाचार सुन उसके नंदीश्वर शिष्य ने आकाश में बड़ी शिला विकुर्वकर कहा- राजन्! तू सब मरा x नगर के लोगों सहित राजा गीला उत्तरीय वस्त्र पहन कर उसके पैर में पड़कर क्षमा माँगने लगा x नंदीश्वर- जिस अवस्था में वह मरा उसी अवस्था में उसकी पूजा करो और हर नगर में मंदिर बनवाओ तो मैं छोड़ूँ x राजा ने स्वीकारा x तब से शंकर (महेश्वर) के लिंग की पूजा शुरु हुई x x

इस महेश्वर ने सोचा - मेरी माता सुज्येष्ठा के पिता चेटक हैं, अतः उन्हें मैं कुछ सहाय करूँ x ऐसा सोचकर वह वैशाली नगरी के लोगों को नीलवंत पर्वत पर ले गया (देखो pg. 180 last para.) x शून्य वैशाली नगरी में कोणिक आया x गधे को हल से जोड़कर पूरी नगरी जोताई x

श्रेणिक की अन्य सभी रानियों ने भ. को पूछा - हमारे पुत्र काल वि. युद्ध में से आएँगे या नहीं? x भ. - चेटक के बाण से उनकी मृत्यु हो गई है, अतः तू वापस उसे नहीं देख सकेगी x सभी रानियों ने वैराग्य से दीक्षा ली x (यह वर्णन निरयावलिका में से जानना)

कोणिक वापस चंपा गया x एकदा भ. पधारे x कोणिक ने सोचा - चक्रवर्ती जितने ही मेरे पास हाथी-घोड़े-रथ वि. हैं, तो भ. को जाकर पूछुँ कि मैं चक्रवर्ती बनूँगा या नहीं? x भ. के पास पूरे सेना समुदाय के साथ गया x वंदन कर पूछा - भविष्य में कितने चक्रवर्ती होंगे? x भ. - सभी चक्रवर्ती हो चुके हैं, अब कोई बाकी नहीं है x को. - मैं अगले भव में कहाँ जाऊँगा? x भ. - 6ठी नरक x भ. के वचन को गलत करने के लिए कोणिक ने लोहे के सभी एकेंद्रिय रत्न बनवाए x फिर सर्व सैन्य के साथ तमिस्रा गुफा के पास आकर अट्ठम किया x गुफा का अधिष्ठायक कृतमाल देव - 12 चक्री हो गए हैं, तू वापस जा x कोणिक मानता नहीं है और हाथी पर बैठकर, हाथी के मस्तक पर मणि रखकर गुफा के द्वार पर दंड से ताड़न करता है x गुस्से में आकर कृतमाल देव ने कोणिक को मारा x कोणिक मरकर 6ठी नरक में गया xx।

सामंत राजा कोणिक के पुत्र उदायी को राजा बनाते हैं x उदायी को इस नगर में पिता की मृत्यु का शोक होने से दूसरी जगह नगर बसाने वास्तुविद्या के जानकारों को भेजा x उन्होंने एक जगह पाटल वृक्ष पर खुल्ले मुख वाला चास पक्षी देखा x उस पक्षी के मुख में कीड़े स्वयं ही जा रहे थे x

पाटल वृक्ष वहाँ कैसे आया? - 2 मथुरा - उत्तर मथुरा, दक्षिण मथुरा x उत्तर मथुरा से

Notes Date:

एक व्यापारी का पुत्र दक्षिण मथुरा गया x वहाँ एक वणिक् से उसकी मैत्री हुई x उस वणिक् की अर्णिका बहन थी x वणिक् उसे ऊपर से नीचे तक देखने पर मोहित हुआ x पुत्री माँगी x वणिक् ने कहा - विवाह के बाद एक संतान होने तक यहीं रहना पड़ेगा x उसने स्वीकारा x विवाह हुआ x

एकदा वणिक् पुत्र के माता-पिता ने पत्र भेजा :- हम अंधों को तू जिंदा देखना चाहता है तो जल्दी आ x आँसू गिराते हुए उसने पत्र पढ़ा x अर्णिका ने कारण पूछा x वह कुछ नहीं बोला x अर्णिका ने पत्र लेकर पढ़ा और कहा - मैं मेरे माता-पिता को पूछती हूँ x अर्णिका के माता-पिता ने बात जानकर जाने की अनुज्ञा दी x

वो दोनों दक्षिण मथुरा से उत्तर मथुरा के लिए निकले x अर्णिका ने रास्ते में पुत्र को जन्म दिया x 'माता-पिता नाम रखेंगे' ऐसा सोचकर उसका कोई नाम न रखा x सब उसे मात्र 'अर्णिका का पुत्र' कहकर बुलाते x दोनों घर पहुँचे x माता-पिता ने कहा - लोक प्रसिद्ध होने से 'अर्णिकापुत्र' ही नाम रख दें x युवान् होने पर अर्णिकापुत्र ने दीक्षा ली x स्थविरकल्प में रहे x आचार्य बने x ~~एकदा~~

एकदा विचरते हुए परिवार सहित गंगा किनारे पुष्पभद्र नगर में पधारे x वहाँ पुष्पकेतु राजा, पुष्पवती रानी x पुष्पचूल पुत्र, पुष्पचूला पुत्री x दोनों पुत्र-पुत्री एक दूसरे के अनुरागी थे x राजा ने सोचा - दोनों को अलग करूँगा तो मर जाएँगे अतः दोनों के परस्पर लग्न करूँ x राजा ने नगरजनों को पूछा - राज्य या अंतःपुर में जो रत्न उत्पन्न हो उनका संयोग करने का अधिकार किसे x नगरजन - राजा x ऐसे 3 बार पूछकर लोगों को विश्वास में लेकर माता का निषेध होने पर भी भाई-बहन के लग्न किए x माता पुष्पवती ने दीक्षा ली x कालधर्म होकर देव बनी x अवधिज्ञान से पुत्री को देखा x पुत्री पर ज्यादा स्नेह होने से वह नरक में न जाए इसलिए देव स्वप्न में नरक दिखाता है x वह डरकर पुष्पचूला राजा को कहती है x दो-तीन बार ऐसे स्वप्न आए x तब राजा पाखंडियों को बुलाता है x उन्हें पूछा - नरक कैसी होती है x परंतु स्वप्न में देखे हुए स्वरूप से अलग ~~होने~~ कहने से वह उन पर विश्वास नहीं करता x

अर्णिकापुत्राचार्य ने पूछने पर नरक का वर्णन कहा x पुष्पचूला ने पूछा - आपने भी स्वप्न देखा है क्या? x आ. - हमारे तीर्थंकर का ऐसा उपदेश है x कुछ समय बाद देव देवलोक का स्वरूप दिखाता है x वैसे ही पाखंडियों ने गलत और आ. ने सही वर्णन

किया x पुष्पचूला ने पूछा - कौन-कौन से उपाय द्वारा नरक और देवलोक में जाते हैं? x आ. ने साधुधर्म कहा x पुष्पचूला ने राजा से दीक्षा की अनुमति माँगी x राजा - यदि मेरे घर से भिक्षा लेना हो तो मैं अनुज्ञा दूँ x उसने बात स्वीकार कर दीक्षा ली x आर्यिकापुत्राचार्य जंघाबल क्षीण होने से अन्य साधुओं को विहार कराकर उसी नगर में रहे x पुष्पचूला साध्वी रोज अंतःपुर से भिक्षा लाते हैं x एकदा साध्वीजी को केवलज्ञान हुआ x अज्ञात केवली भी ज्ञात न होने तक विनय छोड़ते नहीं हैं x अतः x वे वैसी ही भिक्षा लाते हैं x एकदा शीतकाल में सर्दी के लिए आ. को जैसी भिक्षा की इच्छा थी, वैसी ही भिक्षा लाए x रोज इच्छा जानकर अनुकूल आहार लाए x आ. - मैं मन से जो सोचता हूँ, वैसा ही आप आहार लाते हो x साध्वीजी - आपके मन के विचार को मैं जानती हूँ x आ. - कैसे? x साध्वीजी - अतिशय ज्ञान से x आ. - किस प्रकार के ज्ञान से? x साध्वीजी - केवलज्ञान से x आ. ने 'केवली की आशातना की' ऐसे क्षमा माँगी x

अन्य मत - एकदा बारिश में वे भिक्षा लाए x आ. - हे आर्या! बारिश में भिक्षा क्यों लाए? x साध्वीजी - जिस मार्ग में सचित्त पानी था, वहाँ से मैं आई हूँ x आ. - कैसे जाना कि यहाँ सचित्त पानी है और यहाँ अचित्त x अतिशय केवलज्ञान से x आ. साध्वीजी को खमाते हैं और स्वयं केवली न होने का खेद करते हैं x केवली साध्वीजी - आप भी चरमशरीरी हो, जब आप गंगा नदी cross करोगे तब केवलज्ञान प्राप्त होगा x

आ. उसी समय गंगा नदी पार करने चले x नाव में बैठे x वे जिस तरफ नाव में बैठे, उस तरफ नाव डूबने लगी x वे बीचोबीच बैठे तो पूरी नाव डूबने लगी x लोगों ने उन्हें पानी में डाल दिया x उसी समय केवलज्ञान हुआ x देवों ने महिमा की x प्रयाग तीर्थ हुआ x आचार्य के मस्तक की खोपड़ी मछली और कछुओं से खाकर एक किनारे गिरी x एक स्थान पर चोंट गई x उसमें पारल वृक्ष का बीज घुसा x सीधी तरफ की दाढ़ को तोड़कर वृक्ष उगा x कुछ समय बाद बड़ा पारल वृक्ष हुआ (Pg.183 Last Para)

वास्तुशास्त्रज्ञों ने सोचा यहाँ नगर बसाने से राजा को सामने से रत्न की प्राप्ति होगी x नगर बसाने के लिए चारों दिशा में रस्सी डालना थी x एक नैमित्तिक

Notes Date :

बोला- प्रत्येक दिशा में वहाँ तक रस्सी ले जाना, जब तक सियारन की आवाज न सुने x चारों में मध्य से लेकर आवाज सुनाने तक रस्सी डालने पर पंखे के आकार की नगरी बनी ⊕ x

नगरी के मध्य में उदायी ने देरासर बनवाया x ऐसे पाटलिपुत्र नगर बसा x वहाँ उदायी राजा आया x वह सामंत राजाओं पर बार-बार आज्ञा करता है, जिससे सामंतों को ऐसा हुआ कि यह मर जाए तो हम छूटे x कोई अपराध होने पर एक सामंत राजा का राज्य उदायी ने छीन लिया x वह राजा भाग गया x उस राजा का पुत्र घूमता हुआ उज्जयिनी पहुँचा x वहाँ राजा की सेवा करने लगा x

इस उज्जयिनी के राजा का उदायी बार-बार पराभव करता है x सेवक बनकर वह राजपुत्र राजा को विनंती करता है कि आप साथ दो तो मैं उदायी को मारने की प्रतिज्ञा करता हूँ x राजा ने हाँ कही x राजपुत्र पाटलिपुत्र गया x उदायी की बाह्य वि. पर्षदा की सेवा करने पर भी अंदर न जा सका x उसी समय साधु महल में जाते हैं x यह देखकर उसने एक आचार्य के पास दीक्षा ली x आचार्य के ~~साथ~~ सभी शिष्य उसकी सेवा से वश में हुए x उदायी राजा हर आठम वि. को पौषध करता है x वहाँ सा. धर्मकथा के लिए जाते हैं x एक शाम को इस राजपुत्र को लेकर आ. राजकुल में गए x वह राजपुत्र उपकरणों के साथ पहले से छुपा रखी कंक जाति के लोहे की छुरी भी ले गया x रात को बहुत लंबे समय तक धर्मकथा के बाद आचार्य और उदायी सो गए x राजपुत्र छुरी राजा के गले में खोंपकर निकल गया x द्वारपाल ने साधु होने से रोका नहीं x खून की धारा आ. के पास आने से जागे x मरे हुए राजा को देखकर जिनशासन की अपभ्राजना न हो इसलिए आलोचना और प्रतिक्रमण कर स्वयं के मस्तक को छेदते हैं xx

इधर एक हजाम की दुकान में रहे दास ने रात के अंत में देखा हुआ स्वप्न एक ब्राह्मण उपाध्याय को कहा- पूरा नगर मेरी आँत से लपेटा x उपाध्याय ने स्वप्न फल जानकर उसे घर लेजाकर स्वयं की पुत्री का विवाह किया और शिबिका में पूरे नगर में घुमाया x

उधर अंतःपुर की शय्यापालिकाओं ने मरे हुए राजा को देखकर चिल्लाई x मंत्रियों

ने राजा को पुत्र बिना मृत्यु होने से पीछे के दरवाजे से ले गए x मंत्रियों ने घोड़े को सजाया और अधिवासित किया x राजकुल के बाहर घोड़े ने हजाम की दास की पीठ को स्पर्श x मंत्री ने अभिषेक किया x दास राजा बना x
सामंत राजा उसका विनय नहीं करते x वह सभा से उठकर बाहर जाकर अंदर आया, फिर भी वे खड़े नहीं हुए x राजा ने सैनिकों को कहा - इन अधमों को पकड़ो x राजा एक-दूसरे के सामने देखकर हँसने लगे x गुस्से में राजा ने सभा मंडप में द्वारपाल की दो प्रतिमाओं को देखा x इन प्रतिमाओं ने तत्क्षण से सामंत राजाओं को मारना शुरु किया x कुछ राजा भाग गए, कुछ इसका विनय करने लगे x x।

इस राजा को कोई मंत्री न था x

कपिल नामक ब्राह्मण नगर के बाहर रहता है x विहार कर शाम को पहुँचे साधु 'नगर में जाने में अभी रिक्तता होगी' ऐसा सोचकर नगर के बाहर ब्राह्मण के घर रुके x ब्राह्मण उनकी परीक्षा करने आया x भा. ने उसके प्रश्नों के उत्तर दिए x वह श्राद्ध बना x
कुछ समय बाद कोई साधु उसके घर चौमासे में रहे x उस समय इस ब्राह्मण के पुत्र में जन्म के बाद अमरावती व्यंतरी ने प्रवेश किया x बालक को माता ने पात्रों के कल्प करते समय साधु के पात्रे के नीचे रखा x वाणव्यंतरी शरीर से निकल गई x बाद में उस स्त्री की संतान परंपरा स्थिर हुई x पात्र के कल्प के प्रभाव से ठीक होने से कल्पक नाम रखा x उसके माता-पिता मृत्यु पामे x वह 14 विद्या में पारंगत होकर पाटलिपुत्र में विख्यात हुआ x संतोषी होने से वह धन या स्त्री ग्रहण नहीं करता x सैंकडों विद्यार्थियों के साथ वह नगर में घूमता है x
उसके रोज के आने-जाने के रास्ते में एक ब्राह्मण रहता था x उसकी पुत्री को जलोदर रोग होने से शरीर फूल गया x वह अत्यंत रूपवती होने पर कोई उससे विवाह नहीं करता x वह ऋतुवंती हुई, रुधिर आने लगा x माता ने पिता को कहा x पिता ने सोचा - नीतिशास्त्र में कहा है कि जिस अपरिणत स्त्री को रुधिर आता है, वह ब्रह्मचर्य का खंडन करने वाली होती है, मेरी यह पुत्री ऐसा न करे इसलिए कल्पक सत्यप्रतिज्ञा वाला है, कोई उपाय कर उसके साथ मेरी पुत्री का विवाह करूँ x उसने घर के दरवाजे

Notes Date :

के पास कूआँ खोदाया x पुत्री को उसमें डाला x जब कल्पक रास्ते से निकला तब चिल्लाने लगा - हे कल्पक! मेरी पुत्री कुएँ में गिर गई है जो उसे निकालेगा उसकी यह होगी x कल्पक ने करुणा से निकाला x ब्राह्मण - तू मेरी शर्त का पालन कर x लोकनिंदा के भय से कल्पक ने स्वीकारा x औषध से उसे ठीक किया x

राजा ने सुना - कल्पक पंडित है x उसे बुलाकर मंत्रीपद ग्रहण करने कहा x कल्पक - मैं खाने और ओढ़ने सिवाय अन्य परिग्रह नहीं करता, तो मंत्री कैसे बनूँ ? x राजा ने सोचा - कोई अपराध में उसे फँसाकर पकड़ना पड़ेगा x उसके आने-जाने के रास्ते पर एक धोबी था x ब उसे राजा ने पूछा - कल्पक के वस्त्र तू धोता है ? x हाँ x जब जब वह वस्त्र दे तो तू वापस मत देना x एकदा इंद्रमहोत्सव में पत्नी ने कल्पक को कहा - मेरे लिए वस्त्र रंगाओ x वह नहीं मानता x पत्नी के आग्रह से वह वस्त्र लेकर धोबी के यहाँ गया x धोबी - मैं फ्री में वस्त्र रंग दूँगा x महोत्सव के दिन भी वस्त्र माँगने पर भी वह नहीं देता x दो, 3-3 ~~वस्त्र~~ वर्ष बाद भी वस्त्र नहीं देता x गुस्से में कल्पक ने कहा - तेरे खून से वस्त्र न रंगूँ तो मैं कल्पक नहीं x एक दिन छुरी लेकर वह गया x धोबी ने पत्नी से वस्त्र मँगवाए x वस्त्र कल्पक को दिए x कल्पक ने धोबी का पेर चीरकर उसके खून से वस्त्र रंगे x धोबी की पत्नी ने कहा - राजा ने मना किया था तो इनकी क्या गलती ? x कल्पक समझा कि मंत्री न बना इसलिए राजा ने फँसाया है, यदि मैंने दीक्षा ले ली होती तो कुछ नहीं होता, मुझे सैनिक पकड़कर ले जाएँ इससे अच्छा मैं खुद जाऊँ x वह राजकुल गया x राजा खड़ा हुआ x कल्पक - आदेश करो, मैं क्या करूँ ? x राजा - मैंने पहले कहा था उसे विचारा x कल्पक - आप जो कहेंगे वह करूँगा x

तभी धोबियों का टोला वहाँ आया x कल्पक को राजा के साथ बातचीत करता देख वापस गए x संपूर्ण राज्य कल्पक के आधीन हुआ x वह मंत्री बना x उसे ब्राह्मण पुत्री और अन्य श्रेष्ठिकन्याओं से भी पुत्र हुए x

एकदा पुत्र विवाह पर उसने सोचा - राजा को अंतःपुर सहित जीमाऊँ x राजा को देने योग्य आभूषण, शस्त्र वि. बनवाता है x उधर नंद राजा द्वारा पदभ्रष्ट किया हुआ मंत्री कल्पक के छिद्र ढूँढता है x पूर्व मंत्री ने कल्पक की दासी

को दान-मान से वश किया x और कहा- तेरे स्वामी के समाचार देना x दासी ने ये समाचार दिए x वह राजा को जाकर बोला- आपने मेरा तिरस्कार किया तो भी मैंने आपका अन्न खाया है इसलिए आपका हित चाहता हूँ अतः कहता हूँ कि कल्पक आपको हराकर स्वयं के पुत्र को राजा बनाने हथियार वि. बनवा रहा है x राजा ने तलवार में सच्चा सही बात जानकर कल्पक को कुटुंब सहित कुएँ में उतारा x पूरे कुटुंब को खाने सेतिका प्रमाण चावल और गला गीला हो उतना पानी देता है x कल्पक ने कुटुंब को कहा- इतने कम भोजन से हम सब मर जाएँगे, अतः जो हमारे कुल का रक्षण और बदला लेने में समर्थ बन हो वह एक ही जीमे x कुटुंब ने अनशन किया x कल्पक भोजन करता है x

इधर आस-पास के राजा ने कल्पक की मृत्यु सुनकर पाटलीपुत्र को घेरा x नंद ने सोचा-यदि कल्पक होता तो ये लोग नहीं आते x उसने द्वारपाल को पूछा - कुएँ में कोई भोजन ग्रहण करता है x द्वारपाल ने हाँ कही x कल्पक को बाहर निकाला x बैद्यों ने उसे पुष्ट किया x फिर किले पर चढ़कर शत्रु को दिखाया x कल्पक को देखकर ही शत्रु राजा डर गए किंतु 'भंडार खाली होने से नंद कैसे जीतेगा' ऐसा सोचकर वहीं रहे x नंद राजा ने एक दूत भेजा कि तुम्हें जो मान्य हो उसे भेजा, जिससे हम बातचीत करें x इधर से कल्पक गया x दोनों नदी के बीच मिले x हाथ के इशारे से कल्पक बोला- गन्ने को ऊपर से नीचे छेदने पर क्या बीच में रहता है अथवा दोनों ओर से भरे कुंड को ऊपर नीचे से छेदने पर नीचे गिरे उसमें क्या बचता है ! x इतना कहकर कल्पक प्रदक्षिणा कर वापस आया x दूत को कुछ समझ नहीं आया x शत्रु राजाओं ने समाचार पूछे तो उसने कल्पक के प्रलाप कहे x कल्पक मंत्री की माया समझकर शत्रु राजा भागे x कल्पक के कहने से नंद राजा ने पीछे से आक्रमण कर उसके हाथी-घोड़े जीते x नंद ने पुनः उसे मंत्री बनाकर पूर्व मंत्री को मार डाला xx।

नंद राजा के साथ कल्पक का वंश आगे चलता है x 9वें नंद राजा के समय शकटाल मंत्री आया x उसे दो पुत्र- स्थूलभद्र और श्रीयक, 7 पुत्री- यक्षा, यक्षदिन्ना, भूता, भूतदिन्ना सेणा वेणा रेणा x वहाँ वररुचि ब्राह्मण 108 श्लोक से नंद राजा की प्रशंसा करता है x खुश हुआ शकटाल की ओर देखता है x मिथ्यात्वी होने से शकटाल उसकी प्रशंसा

Notes Date :

नहीं करता x वररुचि शकरात की पत्नी की सेवा करता है x खुश होकर उसने प्रयोजन पूछा x वररुचि - तेरा पति मेरी प्रशंसा नहीं करता x उसने कहा मैं कराऊँगी x मंत्री को कहने पर मंत्री - मिथ्यात्वी की कैसे प्रशंसा करूँ ? x रोज-रोज कहने से मंत्री ने स्वीकारा x एक दिन मंत्री सभा में बोला - अच्छा काव्य बनाया x राजा ने वररुचि को 108 दीनार दी x ऐसे वररुचि रोज रोज दीनार लेने लगा x भंडार खाली होने की चिंता से शंकरात ने राजा को कहा - आप क्यों दीनार देते हो ? x राजा - आप ही तो प्रशंसा कर रहे थे x शकरात - वह तो नष्ट न हुए लौकिक काव्य बोलता है इसलिए मैं प्रशंसा करता हूँ x राजा - ये काव्य लौकिक हैं ऐसा कैसे कह सकते हो ? x मंत्री - मेरी पुत्रियों को भी ये काव्य आते हैं x ऐसे एक दिन सभा में 7 पुत्रियों को पर्दे की पीछे बैठाता है x यक्षा को 1 बार, यक्षदिन्ना को 2 बार, भूता को 3 बार ... रेणा को 7 बार सुना हुआ याद रह जाता है x 7 पुत्री क्रमशः वररुचि द्वारा बोला हुआ काव्य बोल देती है x राजा समझा कि यह नए काव्य नहीं बोलता अतः दीनार देना बंद किया x

राजा से मिली दीनारें वह रात को यंत्र में गंगानदी में रखता है और दिन में गंगा की स्तुति कर भूमि पर पैर पटकता है, जिससे दीनार की पोटली उछलकर बाहर आती है x लोगों में बात चली कि वररुचि को गंगा दीनार देती है x कुछ समय बाद राजा ने सुना x उसने मंत्री को कहा x शकरात - यदि मेरे सामने दे तो मानूँ x इससे पहले एक विश्वासु व्यक्ति शकरात ने वहाँ गुप्तता से भेजा और कहा शाम को वररुचि जो रखे वह ले आना x दूसरे दिन सुबह नंद राजा वहाँ गया x स्तुति कर वररुचि ने पैर पटका किंतु कुछ न आया x वह पानी में कूदा और हाथ-पैर से यंत्र और पोटली ढूँढता है किंतु न मिली x शकरात पोटली राजा को बताता है x वररुचि अपमानित हुआ x मंत्री के छिद्र ढूँढता x मंत्रीपुत्र श्रीयक के विवाह में राजा के योग्य शस्त्र मंत्री बनवाता है x उसकी दासी से यह समाचार वररुचि को मिले x वररुचि बच्चों को मोदक देकर यह बात फैलाता है कि शकरात राजा को मारकर श्रीयक को राजा बनाएगा x राजा ने सुनकर तलाश कराई x गुस्सा हुआ x जब पैर पड़कर शकरात प्रणाम करता है, तब राजा विमुख हुआ x शकरात घर गया x श्रीयक राजा का अंगरक्षक था x उसे कहा - जब मैं राजा के पैर में गिरूँ तब तू मुझे मार देना नहीं तो राजा पूरे कुटुंब को मारेगा x सुनकर श्रीयक

ने स्वयं के कान बंद किये x शकटाल- मैं पहले ही तालपुट विष से मर जाऊँगा जिससे तुझे पाप नहीं लगेगा x वैसे श्रीयक ने मारा x जैसे मारा वैसे ही राजा ने खड़े होकर कहा- हे श्रीयक तूने अकार्य किया x श्रीयक- जो आपके लिए पापी है, वह हमारे लिए भी पापी है x राजा ने उसे मंत्री बनने कहा x श्रीयक- मेरा एक स्थूलभद्र नामक बड़ा भाई है जो 12 वर्ष से गणिका के घर है x राजा ने उसे बुलाया x स्थूलभद्र- सोच के कहूँगा x राजा- अशोक वनें में जाकर सोच लो x

अशोकवन में उसने सोचा- राज्य कार्य में व्यस्त होने पर भोग भोगने का समय ही नहीं मिलेगा और भोगों से नरक में जाऊँगा x ऐसा सोचकर पंचमुष्टि लोच किया x स्वयं की कामली फाड़कर रजोहरण बनाया और राजा को जाकर कहा- धर्मलाभ! मैंने ऐसा सोचा है x राजा- अच्छा सोचा x स्थूलभद्र निकल गए x राजा ने आदमी भेजे कि देखो वह कपट से वेश्या घर न जाए x स्वयं राजा ने छत पर से देखा कि मृतक के पास से निकलते लोग दूर हो जाते हैं और मुँह ढाँकते हैं, वह मुँह ढाँके बिना पास में से निकले x अतः निश्चित हुआ कि वे कामभोगों से विरक्त हैं x श्रीयक को मंत्री बनाया x स्थूलभद्र ने संभूतिवि. के पास विधि पूर्वक दीक्षा ली x

श्रीयक भाई के स्नेह से कोशा वेश्या के घर गया किंतु स्थूलभद्र सिवाय किसी को नहीं चाहती x उस कोशा की बहन उपकोशा के साथ वररुचि रहता है x श्रीयक वररुचि को मारने का मौका ढूँढता है x वह कोशा को कहता है- इस वररुचि के कारण हमारे पिता का मरण, भाई का वियोग हुआ और तुझे भी तेरे प्रिय का वियोग हुआ अतः तेरी बहन को कहकर इसे दारू पीला x कोशा ने उपकोशा को कहा- तू दारू पीती है, ये दारू नहीं पीता अतः इसे पीला x उपकोशा के प्रयत्न करने पर भी वररुचि दारू नहीं पीता x तब वह बोली- तुझे दारू नहीं पीना है तो मुझे तेरी जरूर नहीं है x वररुचि चंद्रप्रभा नामक सफेद दारू पीता है जिससे लोगों को लगे कि वह खीर पीता है x यह बात कोशा ने श्रीयक को कही x एकदा राजा ने श्रीयक को कहा- तेरे पिता मेरे हितकर थे x श्रीयक- आपकी बात सही है किंतु इस दारू पीने वाले वररुचि ने उन्हें मरवाया x राजा- क्या वह दारू पीता है x श्रीयक- हाँ x कैसे? x श्री.- मैं बताता हूँ x राजकुल से अमुक द्रव्यों से भावित कमल वररुचि के पास एक आदमी से भिजवाया, दूसरे सबको सादा कमल दिया x उसे सूंघने से उसे तुरंत उल्टी हुई x चातुर्वेद्य (ब्राह्मणों के धर्मगुरु) ने उसे

Notes Date :

प्रायश्चित्त में गर्म सीसा पिलाया x वह मरा xx

स्थूलभद्र स्वामी संभूतिविजय के पास घोर तप करते हैं x विचरते हुए पाटलिपुत्र आए x वहाँ 3 साधु ने अभिग्रह किए - एक सिंहगुफा के पास चातुर्मास रहे, उनके प्रभाव से सिंह शांत हुआ x दूसरे साधु सर्पबिल के पास चातुर्मास रहे, उनके प्रभाव से दृष्टिविष सर्प शांत हुआ x तीसरे साधु कुए की पाल पर चातुर्मास रहे x
स्थूलभद्र कोशा के घर गए x उन्हें देखकर कोशा खुश हुई और सोचा - परीषहों से हारकर आया। x पूछा - आपके लिए क्या करूं? x स्थू. - उद्यान वाले घर में रहने की जगह दे x रहे x रात को सर्व अलंकार से विभूषित कोशा वहाँ आई x कामकटाक्ष वि. किए x मेरु जैसे निष्कंप स्थूलभद्र क्षोभित नहीं हुए x उसने धर्म सुना x श्राविका बनी x राजा के आदेश से किसी पुरुष के साथ रहने के सिवाय ब्रह्मचर्य लिया x सिंहगुफा, सर्पबिल और कुएं की पाल पर रहे चार मास के उपवासी मुनि आए तब गुरु कुछ खड़े हुए और बोले - दुष्कर करने वाले का स्वागत है x स्थूलभद्र रोज गणिका के घर ही भिक्षा लेते थे, इनके आने पर गुरु आदर से खड़े हुए और बोले - अतिदुष्कर अतिदुष्कर करने वाले तेरा स्वागत है x 3 साधु - मंत्री पुत्र होने से गुरु उस पर ज्यादा राग करते हैं x दूसरे चौमासे में सिंहगुफावासी मुनि कोशा के घर का अभिग्रह लेते हैं x आ. ने उपयोग देकर मना किया x वह गुरुवचन न मानकर वहाँ गए x
वेश्यागृह में रहने की याचना की x वेश्या विभूषा न करने पर भी सुंदर रूपवाली थी x वेश्या साधु के पास धर्म सुनती है किंतु वे वेश्या में आसक्त होकर भोगों की याचना करते हैं x वेश्या मना करती है x आग्रह करने पर बोली - कुछ दो तो सोचूं x साधु - क्या दूं? x लाख रु. दे x वह लाख रु. ढूंढने लगा x नेपाल देश का राजा श्रावक था x वह पहली बार आने वाले साधु को लाख रू. का कंबल देता है x ये साधु वहाँ से कंबल लाए x एक जगह रास्ते में चोर रास्ता रोककर बैठे थे x तभी पक्षी ने आवाज किया - लाख आ रहे हैं x चोरों का सरदार पक्षी की भाषा समझता है x साधु को आता देखकर सोचा - साधु के पास कहाँ पैसे? अतः वापस आया x साधु वहाँ से आगे निकला x पक्षी फिर बोला - लाख गए x चोर के सरदार ने साधु की तलाशी ली x साधु - लाख रू. की कंबल वेश्या के लिए ले जा रहा हूं x दया से उसने छोड़ दिया x साधु

Notes Date : 193

कंबल कोशा को दिया x कोशा अशुचि में डालने गई x साधु - तू कंबल फेंक मत x कोशा - कंबल की चिंता करता है, आत्मा की नहीं, आत्मा की चिंता कर नहीं तो तू भी फेंका जाएगा x सद्बुद्धि प्राप्त होने व भोगों से शांत हुए x गुरु के पास गए, प्रायश्चित लिया x आ. - ये स्थूलभद्र अतिदुष्कर करने वाला है, पूर्वपरिचित अश्राविका ऐसी वेश्या को भी उसने सहन किया और उसे श्राविका बनाया x ऐसे आ. ने उसे डाँटा x प्रायश्चित्त लेकर संयम में स्थिर हुए xx

नंद राजा एक रथिक को कोशा के पास भेजता है x कोशा बार-बार स्थूलभद्र की प्रशंसा करती है x रथिक की भक्ति नहीं करती x रथिक स्वयं की कला बताने अशोकवन में ले गया x और नीचे रत्नकार आम्र के समूह को बाण की श्रेणि से ग्रहण किया x यह देखकर भी वह खुश न हुई और बोली - अभ्यास करने वाले को कुछ दुष्कर नहीं है x कोशा सरसू के ढेर पर सुई रखकर, उस पर नाची x इससे रथिक आकृष्ट हुआ x कोशा - आम्र के समूह तोड़ना दुष्कर नहीं और ऐसा नृत्य भी दुष्कर नहीं है, दुष्कर तो वह है जो स्थूलभद्र ने किया x कोशा ने रथिक को श्रावक बनाया xx।

उस समय 12 साल का दुष्काल हुआ x सभी साधु समुद्र किनारे के देशों में गए x 12 वर्ष बाद सभी पाटलिपुत्र में मिले x किसी को कोई उद्देशा, किसी को कुछ भाग याद रहा x 11 अंग तो मिल गए किंतु दृष्टिवाद किसी के पास नहीं था x नेपाल में 14 पूर्वी भद्रबाहु स्वामी थे x संघ ने 'हमें दृष्टिवाद पढ़ाओ' ऐसी विनती करने एक साधु युगल (संघाटक) भेजा x संघाटक ने भद्रबाहु स्वामी को संघ कार्य कहा x भद्र. - दुष्काल के कारण मैंने महाप्राणध्यान नहीं किया था, अब मैंने शुरु किया है इसलिए वाचना देने में समर्थ नहीं हूँ x वापस आए संघाटक ने संघ को कहा x संघ ने फिर दूसरा संघाटक भेजा - संघ की आज्ञा उल्लंघन करने वाले को क्या प्रायश्चित्त ? x भद्र - उसे संघबाह्य किया जाता है किंतु आप मुझे बाहर मत करना, मेधावी साधु भेजो, मैं यहाँ 7 वाचना दूँगा - गोचरी आने के बाद, मध्याह्न, संज्ञा भूमि से आने के बाद, शाम को और 7 वाचना प्रतिक्रमण के बाद x

महाप्राणध्यान सिद्ध होने पर अंतर्मुहूर्त में 14 पूर्वों का पूर्वानुपूर्वी या पश्चानुपूर्वी

Notes Date:

से परावर्तन हो सकता है x

स्थूलभद्र वि. 500 साधु वाचना लेने गए x 3 महिने हुए x लगातार पूरे दिन वाचना बिना मात्र 7 वाचना से इसे नहीं पढ़ सकते ऐसा मानकर स्थूलभद्र सिवाय सभी साधु वापस आए x महाप्राणध्यान थोड़ा बाकी रहने पर भद्रबाहु स्वामी ने स्थूलभद्र को पूछा - थका नहीं है ना ? x नहीं x तू थोड़े समय रुके तो मैं पूरे दिन वाचना दूँगा x मैं कितना पढ़ा और कितना बाकी है ? x तू 88 सूत्र पढ़ा है, सरसु जितना पढ़ा मेरु जितना बाकी किंतु तू इससे भी कम समय में पढ़ लेगा, खेद मत कर x महाप्राणध्यान पूर्ण होने तक 9 पूर्व और 10वें पूर्व में 2 वस्तु न्यून जितना श्रुत स्थूलभद्र ने पढ़ा x

विचरते हुए पाटलिपुत्र आए x स्थूलभद्र की 7 बहनों ने दीक्षा ली थी x वे साध्वियाँ आ. और भाई म. को वंदन करने आई x आ. उद्यान में थे x आ. को वंदन कर पूछा - हमारे बड़े भाई कहाँ हैं ? x उस देवकुलिका में पुनरावर्तन करते हैं x स्थूलभद्र ने बहनों को देखकर सोचा - मेरी ऋद्धि बताऊँ x सिंह का रूप विकुर्वा x साध्वी जी सिंह देखकर भागे x आ. को कहा - हमारे भाई को सिंह खा गया x आ. - वह सिंह नहीं स्थूलभद्र है, आप वहाँ जाओ x साध्वी जी वापस गए x स्थूलभद्र को वंदन किए x स्थूलभद्र ने साध्वीजी को क्षेमकुशल पूछे x साध्वीजी - श्रीयक ने दीक्षा ली थी, हमारी प्रेरणा से उपवास करने उसका कालधर्म हुआ, अतः तप से देव को बुलाकर यक्षा साध्वी महाविदेह गई, तीर्थंकर से भावना और विमुक्ति 2 अध्ययन लेकर आई x ऐसे समाचार देकर वंदन कर गई x

दूसरे दिन स्थूलभद्र उद्देश के समय उपस्थित हुए x आ. उद्देश नहीं करते क्योंकि वह अयोग्य था x स्थूलभद्र समझ गए कल की भूल से ऐसा हुआ x वे बोले - मैं पुनः ऐसा नहीं करूँगा x आ. - तू ऐसा नहीं करेगा किंतु दूसरे ऐसा करेंगे x बहुत आग्रह से आ. माने किंतु कहा - ऊपर के 4 पूर्व तू पढ़, अन्य को पढ़ाना मत x तबसे 4 पूर्व और दसवें पूर्व की अंतिम 2 वस्तु नष्ट हुई x 10 पूर्व परंपरा में चले x

ऐसे स्थूलभद्र की तरह शिक्षा में योगों का संग्रह होता है।

अव. 6. निष्प्रतिकर्मता द्वार (देखें द्वार गा. 1275 Pg. 158) | इसमें वैधर्म्य उदाहरण-
गा. 1286 प्रतिष्ठानपुर x नागवसु सेठ x नागश्री पत्नी x दोनों श्राद्ध x पुत्र नागदत्त ने दीक्षा
ली x प्रतिमा स्वीकारने वाले, जिनकल्पी वि. साधु के पूजा-सत्कार (पूजा सत्कार
का वर्णन व्यवहार सूत्र में) देखकर उसने गुरु से जिनकल्प स्वीकारने को
कहा x आ. के मना करने पर भी उसने स्वयं स्वीकारा x गच्छ से निकलकर
एक जगह वाणव्यंतर के मंदिर में प्रतिमा स्वीकारी x एक सम्यग्दृष्टि देव
'यह दुर्गति में न जाए' इसलिए स्त्री का रूप कर पूजा सामग्री लेकर आया x
वाणव्यंतर की पूजा कर वह स्त्री साधु को बोली- हे क्षपक! यह ग्रहण करो x
साधु ने अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थ ग्रहण किए x वापर कर रात्रि को प्रतिमा में
रहे x जिनकल्पिको रात को नहीं सोते, अतः न सोने से पचा नहीं और
दस्त हुई x देव ने आ. को कहा - आपका शिष्य अमुक जगह बीमार हुआ है x
आ. ने साधु भेजे x साधु लेकर आए x देव ने कहा - बीजोरे की वस्तु दो x
बीजोरे से दस्त बंद हुई x उस साधु को हितशिक्षा दी x ऐसा किसी को साधु
को नहीं करना चाहिए।
निष्प्रतिकर्म यानि शरीर की चिकित्सा नहीं करना चाहिए।

अव. 7. अज्ञातता द्वार - परीषह सहन करने में समर्थ साधु को तप गुप्त करना
चाहिए। यदि साधु सामने से तप बताए तो लोग ध्यान नहीं देते। यदि
साधु गुप्त तप रखे तो स्वयं ही ज्ञात होता है। उदाहरण-
गा. 1287 कौशांबी, अजितसेन, धारिणी x धर्मवसु आचार्य, 2 शिष्य - धर्मघोष, धर्मयश x
विगतभया महत्तरिका, विनयवती शिष्या x विनयवती ने अनशन किया x
संघ ने बहुत ऋद्धि सत्कार से आराधना कराई x ये दोनों शिष्य - विशेष
आराधना का अभ्यास करते हैं।
गा. 1288 इधर उज्जयिनी, प्रद्योत राजा, 2 पुत्र - पालक - गोपालक x गोपालक ने
दीक्षा ली x पालक राजा के 2 पुत्र अवंतिवर्धन, राष्ट्रवर्धन x पालक ने
अवंतिवर्धन को राजा और राष्ट्रवर्धन को युवराज बनाकर दीक्षा ली x
राष्ट्रवर्धन की पत्नी धारिणी, पुत्र अवंतिसेन x एकदा राजा ने उद्यान

Notes   Date :

में विश्वस्त (निर्वस्त्र) धारिणी को देखा x अत्यंत आसक्त हुआ x दूती भेजी x धारिणी ने मना किया x बार-बार दूती भेजने पर सहज कहा - आपके छोटे भाई से भी आप नहीं शर्माते x राजा ने भाई को मरवा दिया x धारिणी एक शाम को आभूषण लेकर निकली x कौशांबी जाते सार्थ में एक वृद्ध व्यापारी के पास गई x राजा की यानशाला में रहे साध्वीजी के पास दीक्षा ली x वह गर्भवती थी x महत्तरिका ने सत्य हकीकत पूछी x उसने कहा - मैं राष्ट्रवर्धन की पत्नी हूँ वि. x महत्तरिका ने उसे एकांत मे रखा x एक रात को पुत्र जन्मा x साध्वीजी की अपभ्राजना न हो इसलिए नाममुद्रा और राष्ट्रवर्धन के आभूषणों से पहनाकर राजा के आंगन में छोड़कर छुप गई x महल की छत पर से अनिलसेन राजा ने देखा x मणियों की दिव्य प्रभा देखी x पटरानी को पुत्र न होने से दिया x मणिप्रभ नाम नहीं रखा x अन्य साध्वीयों के पूछने पर कहा - मृतबालक जन्मने से जंगल में छोड़ दिया x वह साध्वीजी रोज अंतःपुर आते-जाते हैं x साध्वीजी की अंतःपुर की स्त्रियों से मैत्री हुई x

कुछ समय बाद राजा मरा x मणिप्रभ राजा बना x वह धारिणी साध्वीजी पर सहज अनुरागी हुआ x

इधर अवंतिवर्धन ने पश्चात्ताप से अवंतिसेन को राजा बनाकर दीक्षा ली x अवंतिसेन मणिप्रभ के पास कल्पक (?) माँगा x उसने मना किया x अवंतिसेन सेना के साथ कौशांबी की ओर चला x

इधर २ साधु का परिकर्म पूर्ण होने पर एक साधु ने कहा - विनयवती की तरह मुझे भी ऋद्धि प्राप्त हो इसलिए कौशांबी में अनशन किया x धर्मयश मुनि ऋद्धि की इच्छा नहीं करते इसलिए कौशांबी और उज्जयिनी के बीच वत्सका किनारे पर रहे पर्वत की गुफा में अनशन किया x

तभी अवंतिसेन ने कौशांबी को घेरा x लोग आकुल-व्याकुल होने से धर्मघोष

मुनि के पास नहीं जाते x उनका ऐसे ही कालधर्म हुआ x नगर घेरा होने से मृतक नगरद्वार से बाहर न लेजा सकने के कारण किले पर से बाहर डाल दिया x

धारिणी साध्वीजी ने सोचा - युद्ध में निर्दोष लोग मरे उससे अच्छा रहस्य खोल दूँ x अंतःपुर में गए x मणिप्रभ को वहाँ से दूर लेजाकर कहा - तू भाई के साथ क्यों युद्ध कर रहा है ? x मणिप्रभ - वह मेरा भाई कैसे ? x साध्वीजी ने वृत्तांत कहा और 'मेरी बात पर विश्वास न हो तो तेरी माता को पूँछ' कहा x मणिप्रभ ने माता को पूछा x माता ने यथावस्थित बात की और राष्ट्रवर्धन के आभूषण और नाममुद्रा बताई x मणिप्रभ - युद्ध में से मैं हटूँ तो अपयश होगा x साध्वीजी - मैं अवंतिसेन को समझाऊँगी x

साध्वीजी अवंतिसेन के पास गए x सैनिक ने अवंतिसेन को कहा - कोई साध्वी आपको मिलना चाहती है x हाँ कहने पर साध्वीजी अंदर आए x साध्वीजी के चरण देखकर दासियाँ जान गई x पैर में गिरकर रोने लगी x दासियों ने अवंतिसेन को कहा - ये तेरी माता है x वह भी रोने लगा x साध्वीजी ने कहा - मणिप्रभ तेरा भाई है x दोनों भेंट पड़े x थोड़े दिन कौशांबी रहकर दोनों उज्जयिनी के लिए निकले x माता साध्वी भी महत्तरिका के साथ निकली x

जब दोनों राजा वत्सका नदी के किनारे पर्वत के पास पहुँचे तब साधु पर्वत पर उतर-चढ़ करते थे x उन्हें साध्वीजी ने पूछा x धर्मयश मुनि की बात कही x साध्वीजी भी गए x दूसरे दिन राजा को साध्वीजी ने कहा - एक मुनि यहाँ अनशन कर रहे हैं अतः हम यहीं रहेंगे x राजा भी वहीं रुके x रोज उनकी पूजा करते हैं x अंत में साधु का कालधर्म हुआ x

ऐसे धर्मयश मुनि की तरह निःस्पृह रहकर तप करना चाहिए।

अव. 8. अलोभ (हारगा. 1276 पृ. 158) | लोभ त्याग से योगों का संग्रह होता है,

Notes Date :

अत: अलोभ करना चाहिए। इसमें उदाहरण –
गा.1289 साकेत नगर x पुंडरिक राजा x कंडरिक युवराजा x युवराज्ञी यशोभद्रा x पुंडरिक देखकर
1290 1291 आसक्त हुआ x यशोभद्रा ने मना किया x युवराज को मारा x वह सार्थ के साथ भागी x
श्रावस्ती पहुँची x गर्भवती x श्रावस्ती में अजितसेन आ. x कीर्तिमती महत्तरिका x
दीक्षा ली x उसे पुत्र गुप्त ~~रीती~~ रीति से हुआ x पुत्र को उसने छोड़ा नहीं x क्षुल्लक
कुमार नाम रखा x दीक्षित हुआ x युवान् हुआ x सोचा - मैं दीक्षा पालन में समर्थ
नहीं हूँ x माता को पूछा - मैं जाऊँ ? x माता के समझाने पर भी न रुका तो कहा -
मेरे लिए तू 12 वर्ष पालन कर x 12 वर्ष बाद पुन: माता को पूछा x माता - महत्तरिका
को पूछ x महत्तरिका ने भी 12 वर्ष रोका x आचार्य - उपाध्याय के लिए भी 12-12
वर्ष रोका x 48 वर्ष होने के बाद भी वह दीक्षा में रहने के लिए तैयार नहीं था x
जाने की अनुमति दी x माता साध्वी ने कहा - जहाँ तहाँ न जाना, तेरे काका पुंडरिक
राजा है, ये तेरे पिता की नाममुद्रा और रत्नकंबल मैं निकलते हुए साथ में लाई
थी, ये तू ले जा x वह गया x 'कल राजा को मिलूँगा' ऐसा सोचकर यानशाला में
रुके x रात को एक नर्तकी का नृत्य था x क्षुल्लक देखने गया x नर्तकी पूरी रात नाची,
सुबह होते होते नींद आने लगी आँख घेराने लगी x तब ~~मा~~ नर्तकी की
माता ने सोचा - पर्षदा खुश हुई है किंतु अंत में थक जाएगी तो फायदा कम
होगा x अत: एक गीत गाया -

सुट्ठु गाइयं सुट्ठु वाइयं सुट्ठु नच्चियं साम सुंदरि!
अणुपालिय दीहराइयओ सुमिणंते मा पमायए॥

गीत सुनकर क्षुल्लक ने रत्न कंबल, यशोभद्र युवराज ने कुंडल, श्रीकांता
सार्थवाहिनी ने हार, जयसंधि मंत्री ने कड़े, कर्णपाल महावत ने अंकुश दान
में दिया x सबकी कीमत लाख - लाख रू. थी x सब भेंट देने वाले के नाम
लिखाए x सुबह सबको राजा ने बुलाया x कारण पूछा x
क्षुल्लक ने पूरा वृत्तांत कहा और बोला - ऐसे मैं आपके पास आया हूँ और राज्य
की इच्छा करता हूँ x राजा - मैं राज्य देने तैयार हूँ x क्षुल्लक - किंतु मुझे अब
नहीं चाहिए, मेरी मृत्यु नजदीक है, यदि राज्य लूँगा तो संयम नष्ट होगा x
युवराज बोला - 'ये बुड्ढा राजा ऐसे ही राज्य नहीं देगा' ऐसा सोचकर मैं आपको

Notes Date : 199

मारने वाला था किंतु अब वैराग्य हुआ है ×
सार्थवाह की पत्नी - मेरे पति को बाहर गए 12 साल हो गए, मैं सोचती थी कि अन्य पुरुष को बुलाऊँ या नहीं ? किंतु गीत से प्रतिबोध हुआ ×
मंत्री - मैं शत्रु राजा के साथ षड्यंत्र रच रहा था किंतु गीत सुनकर सोचा थोड़े साल के लिए क्यों धोखा दूँ ।
महावत - सीमांत राजाओं के कहने से आपका हस्तिरत्न उन्हें देने वाला था या आपको मारनेवाला था किंतु गीत से बोध हुआ ×
राजा - तुमने जैसा सोचा था वैसा करो × किंतु कोई ऐसा नहीं करता और क्षुल्लक कुमार के साथ सबने दीक्षा ली ××।

सबने लोभ छोड़ा, ऐसे लोभ छोड़ना चाहिए।

प्रश्न. 9. तितिक्षा (द्वार गा. 1276 Pg. 158)। तितिक्षा = परीषह - उपसर्ग सहन करना * ?
उदाहरण -
गा. 1292 कथानक भाग 3 Pg. 3 पर सुरेन्द्रदत्त राजकुमार।
1293 (Short में) ईंद्रपुर × इंद्रदत्त राजा × 22 पुत्र × मंत्रीपुत्री से उत्पन्न सुरेंद्रदत्त × मथुरा की निर्वृत्ति राजकुमारी का स्वयंवर × 22 पुत्र उद्दंड होने से कुछ सीखे नहीं × सुरेंद्रदत्त कलाएँ सीखा × सुरेंद्रदत्त के साथ ही 5 दास पुत्र उत्पन्न हुए थे * - अग्नितक, पर्वतक, बकुलिक, सागर × स्वयंवर में राधावेध × 22 पुत्र हारे × मंत्री ने सुरेंद्रदत्त राजा को याद दिलाया × 5 दासपुत्र, 22 कुमार विघ्न करते हैं × अन्य दो पुरुष तलवार लेकर खड़े थे × सुरेंद्रदत्त जीता ××

उपनय - सुरेंद्रदत्त = साधु, 5 दासपुत्र = 5 कषाय, 22 कुमार = 22 परीषह, 2 पुरुष = राग द्वेष, राधावेध करना = आराधना करना, निर्वृति राजकुमारी = मुक्ति ।

ऐसे परीषह सहन करना चाहिए × ।

Notes Date :

प्रव. 10. आर्जव द्वार | उदाहरण-

ग गा.1295 चंपा x कौशिकार्य उपाध्याय x 2 शिष्य - अंगर्षि, रुद्र x अंगर्षि सरल था, रुद्र-चोर था x उपाध्याय ने दोनों को जंगल लकड़ी लेने भेजा x अंगर्षि जंगल से लकड़ी की गठरी लेकर वापस आता है x रुद्र खेलने में लकड़ी लाना भूल जाता है x शाम को इसे देखकर याद आया x जंगल की ओर दौड़ा x रास्ते में ज्योतिर्यशा नामक ग्वालन पंथक पुत्र के लिए भोजन लेकर लकड़ी की गठरी के साथ आ रही थी x उसे गड्ढे में गिराकर मार डाला x उसकी गठरी लेकर रुद्र अन्य रास्ते से गुरु के पास पहले पहुँच गया और कहा - आपके प्रिय शिष्य ने ज्योतियशा को मार डाला वि. x अंगर्षि को गुरु ने निकाल दिया x वन में जाकर वह सोचने लगा x शुभ अध्यवसाय से उसे ~~केवल~~ जातिस्मरण हुआ x दीक्षा ली x केवलज्ञान हुआ x देवों ने उत्सव किया और गुरु को कहा कि रुद्र ने अभ्याख्यान यानि गलत आक्षेप किए थे x लोगों ने रुद्र का तिरस्कार किया x रुद्र को ~~श~~ पश्चात्ताप होने से प्रतिबोध प्राप्तकर प्रत्येकबुद्ध हुआ x उपाध्याय और उनकी पत्नी ने भी दीक्षा ली x चारों सिद्ध हुए x |

अंगर्षि की तरह सरलता रखना चाहिए |

प्रव. 11. शुचि द्वार (द्वार गा. 1276 Pg. 158) / शुचि यानि सत्य | संयम ही सत्य है अतः संयम ही शौच है | उदाहरण-

गा.1295 देश शुचि का दृष्टांत - शौर्यपुर x सुरवर यक्ष x धनंजय सेठ, सुभद्रा सेठानी x पुत्र के लिए दोनों 100 पाड़े की बलि से यज्ञ करने की मानता मानी x पुत्र हुआ भ. पधारे x सेठ प्रतिबोधित हुआ x सेठ - यक्ष अनुज्ञा दे तो अणुव्रत लूँ x भ. ने यक्ष को प्रतिबोध दिया x

अन्य मत - भ. के पास व्रतग्रहण करते सेठ ~~से~~ से यक्ष ने 100 पाड़े माँगे x सेठ जीवदया के परिणाम से पाड़े नहीं देता किंतु स्वयं के शरीर के 100 टुकड़े करने ~~का~~ का सोचता है x

अन्य मत - 100 टुकड़े होने के बाद सेठ सोचता है - मैं धन्य हूँ, जिससे

ऐसी वेदना जीवों को नहीं दी x ऐसे सत्त्व की परीक्षा कर यक्ष स्वयं प्रतिबोधित हुआ x

अन्य मत – आटे के 100 पाड़े दिए x

धनंजय सेठ को देशविरति होने से देशशुचि।

सर्वशुचि में दृष्टांत → भ. के 2 शिष्य धर्मघोष, धर्मयश x दोनों पूर्वाह्न में एक अशोक वृक्ष नीचे स्वाध्याय करते हैं x शाम को भी वृक्ष की छाया हटती नहीं है x दोनों एक-दूसरे का प्रभाव कहने लगे x एक उठकर मात्रु गया तो भी छाया नहीं हटी x दूसरा भी मात्रु गया तो भी छाया न हटी x दोनों समझे कि यह हमारा प्रभाव नहीं है x भ. को पूछा x भ. ने कहा –

गा. 1296 शौर्यपुर x समुद्रविजय x यज्ञयश तापस, सौमित्रा पत्नी x यज्ञदत्त पुत्र, सोमयशा
1297 पुत्रवधू x नारद पौत्र x वे भिक्षा से जीते थे x बालक को अशोकवृक्ष के नीचे रखकर दिन में भिक्षा माँगते थे x

वैताढ्य पर्वत पर रहते वैश्रमण निकाय के जृंभक देव वहाँ से पसार हुए x बालक को देखा x अवधिज्ञान से जाना कि यह बालक वैश्रमण निकाय के देव में से च्यवकर जन्मा है x अनुकंपा से 'धूप में न हो' इसलिए वृक्ष की छाया स्थिर की x वापस वैताढ्य पर्वत जाते हुए बालक को ले गए x उसे प्रज्ञप्ति वि. विद्याएँ दी x

अन्य मत – नारद बड़ा हुआ तब जृंभक देवों ने पूर्वभव की मैत्री से विद्याएँ दी x नारद मणि से युक्त पादुका पहनकर, हाथ में सोने की कुंडी लेकर आकाश में घूमता है x

एकदा द्वारिका में कृष्ण ने पूछा – शौच वस्तु कौन सी है? x जवाब खबर न होने से नारद ने बात बदली x वहाँ से पूर्वमहाविदेह गया x युगबाहु वासुदेव द्वारा यही प्रश्न पूछने पर सीमंधर स्वामी बोले – सत्य x युगबाहु वासुदेव एक पद से सर्वपर्याय समझ गया किंतु नारद नहीं समझा x नारद पश्चिम महाविदेह गया x वहाँ महाबाहु वासुदेव द्वारा पूछने पर युगंधर तीर्थंकर ने यही जवाब दिया x

Notes Date:

नारद मात्र शब्दार्थ ही समझा x नारद द्वारिका आया x कृष्ण को पूछा - तूने मुझे क्या पूछा था? x कृष्ण - शौच क्या है? x नारद - सत्य शौच है x कृष्ण - सत्य क्या है? x यह सुनकर नारद का मुख वापस नीचे हो गया x कृष्ण ने डाँटा - जहाँ तूने शौच पूछा, वहीं सत्य भी पूछा होता तो x नारद सोचने लगा x जातिस्मरण ज्ञान हुआ x नहीं पूछने के लिए अत्यंत शोक करता वह प्रत्येक बुद्ध हुआ x।

अव. 12. सम्यग्दृष्टि द्वार – सम्यग्दर्शन की शुद्धि से योगों का संग्रह। उदाहरण –
गा. 1298 साकेतनगर x महाबल राजा x सभा में दूत को पूछा - मेरे पास ऐसा क्या नहीं है जो दूसरे राजा के पास है? x दूत - चित्रसभा x राजा ने भूमि ग्रहण करवाई x नगर में 2 अद्वितीय चित्रकार प्रसिद्ध थे - विमल, प्रभाकर x दोनों को आधी - आधी भूमि दी x दोनों के बीच पर्दा किया x विमल ने चित्र पूर्ण किया x प्रभाकर ने मात्र भूमि स्वच्छ की x राजा विमल के चित्र देखकर खुश हुआ, उसका सत्कार किया x प्रभाकर - मैंने अभी भूमि स्वच्छ की है, चित्र नहीं बनाया x राजा - कैसी स्वच्छ की है? x पर्दा हटाया x विमल के चित्र का प्रतिबिंब गिरने से अधिक निर्मलतर दिखने लगा x राजा Same चित्र देखकर गुस्सा हुआ x प्रभाकर - यह चित्र नहीं है, विमल के चित्र का प्रतिबिंब है x राजा को विश्वास दिलाने विमल का चित्र ढँका x चित्र की जगह मात्र दीवाल दीखी x खुश होकर राजा ने कहा - चित्र बनाने की जरूर नहीं है, इसे ऐसे ही रहने दे xx

जैसे प्रभाकर ने दीवाल साफ की, ऐसे सम्यक्त्व विशुद्ध करना चाहिए।

अव. 13. समाधि द्वार (द्वार गा. 1276 द्वि 158)। उदाहरण –
गा. 1299 सुदर्शनपुर x शिशुनाग सेठ, सुयशा पत्नी, सुव्रत पुत्र x तीनों श्राद्ध x युवान् होकर पुत्र ने दीक्षा ली x एकलविहारी प्रतिमा स्वीकारी x शक्र ने सभा में प्रशंसा की x दो देवों ने अनुकूल उपसर्ग किए x एक देव ने - 'कुमारावस्था में

ब्रह्मचारी होने से यह धन्य है' ऐसी स्तुति की x दूसरा देव - 'कुल परंपरा का उच्छेद करने से अधन्य है' ऐसी निंदा करता है x तो भी केवल समाधि में रहे x मुनि के माता-पिता के विलाप, सर्वऋतु, दिव्य देवी का आलिंगन वि. बताए किंतु वे अधिक स्थिर हुए x केवलज्ञान हुआ xx।

अव. १५. आचारोपग द्वार - आचार पालन में माया रहितता। उदाहरण -
गा. 1300 पाटलिपुत्र में हुताशन ब्राह्मण, ज्वलनशिखा पत्नी, दोनों श्राद्ध x 2 पुत्र - ज्वलन, दहन x चारों ने दीक्षा ली x ज्वलन सरल था, दहन मायावी था x दहन माया की आलोचना किए बिना मरा x दोनों सौधर्म कल्प में 5 प. स्थिति वाले देव हुए x
आमलकल्पा नगरी x अंबशालवन चैत्य में भ. पधारे x दोनों देव आए x दोनों नाट्य विधि दिखाते हैं x एक देव स्वयं की इच्छानुसार विकुर्वता है x दूसरे की इच्छा से विपरीत ही विकुर्वणा होती है x गौतम स्वामी ने भ. को कारण पूछा x भ. ने माया को कारण बताया।

अव. १६. विनयोपग - अहंकार न करे। उदाहरण -
गा. 1301 उज्जयिनी x संवर्षि ब्राह्मण, मालुका पत्नी, दोनों श्राद्ध x निंबक पुत्र x मालुका मर गई x संवर्षि ने पुत्र के साथ दीक्षा ली x निंबक अविनीत था x साधु की भूमि में काँटे डालता है जिससे जो साधु मात्रु जाए उसका समय बिगड़े और खून निकलने से असज्झाय हो x वह पूरी सामाचारी उल्टी करता है x अन्य साधुओं ने आ. को कहा - या तो यह रहे, या हम रहें x आ. ने उसे निकाल दिया x साथ में पिता भी गच्छ से निकले x ऐसे उज्जयिनी में 500 उपाश्रय थे x सभी जगह से उन्हें निकाल दिया x पिता मुनि संज्ञा भूमि में बैठकर रोते हैं x पुत्रमुनि - क्यों रोते हो? x पितामुनि - मैंने तेरा नाम व्युत्पत्ति से नहीं रखा था किंतु गोत्र से रखा था, तूने तो यह नाम सार्थक कर दिया (टीप्पणक - यहाँ बहुत वृत्ति पुस्तकों में बहुत पाठांतर देखकर मेरे द्वारा यह चूर्णि का पाठ अधिक

Notes Date :

अभिप्राय सहित है' ऐसा मानकर व्याख्यात किया गया है), तेरे कारण मुझे भी स्थान नहीं मिलता और दीक्षा छोड़ना भी योग्य नहीं है x
निबंक को दुःख हुआ x। पिता को कहा – एकबार कहीं स्थान प्राप्त कर लो x
पिता – यदि विनयी बनना हो तो जगह ढूँढ x दोनों साधुओं के पास गए x
दोनों को देखकर साधु घबराए x पिता मुनि – आप घबराओ मत, ये अब ऐसा नहीं करेगा x आ. ने मेहमान समझकर रखा x पुत्रमुनि स्थंडिल भूमि का पडिलेहन वि. सब सामाचारी बराबर करता है x साधु खुश हुए x
ऐसे कुछ-कुछ दिन सभी जगह रहकर 500 उपाश्रयों में संमानित हुए x कोई गच्छ वाले उन्हें जाने नहीं देते x
ऐसे विनयोपगा होना चाहिए।

अव. 16. धृतिमति द्वार (द्वार गा. 1277 पृ 158) | धृति युक्त मति करना | उदाहरण –
गा. 1302 पांडुमथुरा x 5 पांडव x दीक्षा लेने पुत्र को राज्य देकर नेमिनाथ भ. के पास जाने निकले x रास्ते में हस्तिकल्पगाँव में सुना कि प्रभु का निर्वाण हुआ x बोरे हुए भोजन-पानी को परठकर शत्रुंजय पर अनशन कर मोक्ष में गए xx

उनके वंश में पांडुसेन राजा x 2 पुत्री मति सुमति x दोनों उज्जयंत पर्वत पर चैत्यों को वंदन करने वारिवृषभ नामक वाहन से समुद्र मार्ग से आई x बीच में समुद्र में उत्पात हुआ x सब लोग स्कंद और रुद्र देव को नमस्कार करने लगे x दोनों कन्या ने संयम दृढ़ किया x केवलज्ञान प्राप्तकर सिद्ध हुई x दोनों के शरीर उछलकर किनारे पर आए x लवणसमुद्र के अधिष्ठायक सुस्थित देव ने वहाँ प्रकाश किया x प्रभास तीर्थ हुआ xx

ऐसे धृति में मति करना चाहिए।

अव. 17. संवेग द्वार – उदाहरण –
गा. 1303-4 चंपा x मित्रप्रभ राजा, धारिणी देवी x धनमित्र सार्थवाह, धनश्री पत्नी x मानता

मानने से उसे पुत्र हुआ x लोग कहते - पुत्र जन्म अच्छा हुआ x अत: सुजात नाम रखा x सार्थवाह और उसकी पत्नी श्राद्ध थे x

उसी नगर में धर्मघोष मंत्री थी x उसे प्रियंगु पत्नी थी x उसने सुना कि सुजात ऐसा है x दासी को कहा - जब यहाँ से सुजात निकले तब मुझे कहना, मैं देखूँगी x एकदा सुजात मित्रों के साथ निकला x दासी ने कहा x प्रियंगु और दूसरी पत्नीयों ने भी देखा x फिर सभी स्त्रियाँ इकट्ठी हुई x प्रियंगु सुजात का वेश धारण करती है x वह सुजात की Mimicry करती है - चलने बोलने, हाथ हिलाने वि. की Style करती है x तभी मंत्री घर में आया x घर में कोई आवाज न देखकर पत्नियों के Room की ओर धीरे-धीरे चला x छिद्र में से देखकर सोचा - मेरा अंत:पुर भ्रष्ट हुआ किंतु गुप्त रखना ही अच्छा x वह सुजात को मारने के प्रयत्न करने लगा x किंतु डरता है क्योंकि राजा को प्रिय है x इसलिए एक उपाय किया - झूठा लेख लिखा और ऐसा किया कि राजा को लगे कि शत्रु राजा ने सुजात को यह लेख भेजा है x लेख में लिखा - मित्रप्रभ राजा के महल में तू जा सकता है, अत: राजा को मार देना, तुझ पर कोई शंका नहीं करेगा, राज्य हम दोनों आधा-आधा बाँट लेंगे x पुरुष के साथ यह लेख राजा के पास भेजा x राजा के सामने मंत्री ने यह लेख पुरुष के हाथ से लेकर पढ़ा x लेख सुनकर राजा गुस्सा हुआ x लेख लाने वाले को मारने का आदेश दिया तो मंत्री ने उसे गुप्तावास में भेजा x राजा सुजात को मारने का सोचता है किंतु सीधे नहीं मार सकता क्योंकि सुजात लोकप्रिय होने से राजा का अपयश होगा x राजा ने उपाय किया x पत्र में लिखा - सुजात को तू मार देना और पत्र लेकर स्वयं के राज्य की सीमा पर रही अरक्षुरी नगरी में चंद्रध्वज सामंत राजा के पास सुजात को भेजा x

लेख पढ़कर चंद्रध्वज ने सोचा - कुछ दिन में विश्वास में लेकर इसे मारूँगा x कुछ दिन में उसके रूप - शील - आचार देखकर सोचा - इसने राजा की रानी के साथ अकार्य किया होगा, इसीलिए राजा ने मारने भेजा है x चंद्रध्वज ने एकांत में सुजात को कहा x सुजात - आपको योग्य लगे वह करो x चंद्रध्वज ने उसे चंद्रयशा बहन दी और गुप्त रहने को कहा x वह कोढ़ रोगी थी x

Notes Date :

उसके परिभोग से चंद्रयशा सुजात भी कोढ़ी हुआ × सुजात ने चंद्रयशा को श्राविका बनाया × मेरे कारण सुजात को भी कोढ़ हुआ' ऐसे संवेग से अनशन किया × सुजात ने निर्यामणा कराई × मरकर देव बनी × अवधि से देखकर देव सुजात के पास आया × सुजात ने पूछने पर कहा - मुझे माता-पिता के दर्शन कराओ तो मैं दीक्षा लूँ × देव ने चंपा नगर पर बड़ी शिला बिकुर्वी × नगर के लोग पैर में पड़ने पर देव बोला - सुजात को मंत्री ने अकार्य में फँसाया है अतः उसे वापस नगर में लाओ तो छोड़ूँ ! × नगरजन - वह कहाँ है ? × देव - उद्यान में × नगरजन के साथ राजा उद्यान गया × क्षमा प्रणेकर नगर में लाया × माता पिता और राजा को पूछकर उसने दीक्षा ली × माता पिता ने भी दीक्षा ली × सिद्ध हुए ×

धर्मघोष मंत्री को देश से निकाला × कहा है कि -

यथा नेत्रे तथा शीलं, यथा नासा तथाऽऽर्जवम् ।
यथा रूपं तथा वित्तं, यथा शीलं तथा गुणाः ॥

विषमसमैर्विषमसमाः विषमैर्विषमाः समैः समाचाराः ।
करचरणकर्णनासिकादन्तोष्ठनिरीक्षणैः पुरुषाः ॥

बाद में मंत्री को भी पश्चात्ताप हुआ × देश से निकलकर राजगृह में दीक्षा ली × बहुश्रुत होकर विचरते हुए वारत्रपुर गए × वहाँ अभयसेन राजा, वारत्रक मंत्री × मुनि मंत्री के घर भिक्षा के लिए गए × खीर ने के लिए शक्कर - घी युक्त घी की थाली लाए × थाली से एक बूँद नीचे गिरने से मुनि लेते नहीं है × गवाक्ष में खड़ा मंत्री सोचता है - एक बूँद गिरने से भिक्षा क्यों नहीं लेते ? × तभी बूँद पर एक मक्खी × मक्खी → छिपकली → गिरगिट → बिल्ली → कुत्ता आया × बाहर के कुत्ते को देखकर घर का कुत्ता आया × दोनों लड़ने लगे × दोनों कुत्ते के मालिक भी लड़ने लगे × मारपीट करते हुए घर के बाहर गए × दोनों के पक्ष के लोग आए × बड़ा युद्ध हुआ × यह देखकर वारत्रक मंत्री समझा कि इस कारण से मुनि ने भिक्षा ग्रहण नहीं की × मंत्री को शुभ अध्यवसाय से जातिस्मरण हुआ × प्रतिबोध हुआ × देव ने उपकरण दिए ×

वे वारत्रक मुनि विचरते हुए सुंसुमार नगर में आए × वहाँ धुंधुमार राजा ×

अंगारवती पुत्री x एक संन्यासिनी आई x संन्यासिनी को अंगारवती ने बाद में हराया x संन्यासिनी ने सोचा इसे धर्मभ्रष्ट करूँ x उसका चित्र उज्जयिनी के प्रद्योत राजा को बताया x चित्र देखकर दूत भेजा x थुंथुमार ने 'पास हो तो विनय से वरण करना चाहिए' ऐसा कहकर दूत को भगा दिया x प्रद्योत सेना के साथ निकला x थुंथुमार पुर को घेरा x थुंथुमार राजा सेना कम होने से अंदर ही रहा x थुंथुमार राजा ने नैमित्तिक को पूछा x नै. बोला - आप जाओ, मैं निमित्त ग्रहण कर कहूँगा x वारत्रक मुनि यक्ष मंदिर के पास थे x नै. ने बच्चों को डराकर भेजा x वे रोते हुए वारत्रक मुनि के पास आओ x मुनि - तुम डरो मत x राजा को नै. बोला - आप डरो मत, आप ही जीतोगे x मध्याह्न में प्रद्योत की सैन्य तैयार नहीं था तब आक्रमण कर प्रद्योत को पकड़कर नगर में लाए x दरवाजे बंद किए x राजा ने प्रद्योत को पूछा - तेरा भाग्य कैसा है? हवा किधर चल रही है? x प्रद्योत - तुझे जो ठीक लगे वो करे x राजा - तेरे जैसे महाशासन वाले का वध नहीं करना x अंगारवती का विवाह किया x दरवाजे खोल दिए x प्रद्योत थोड़े समय वहीं रहा x

अन्य मत - थुंथुमार राजा ने उपवास से देव को प्रसन्न किया x देव ने बच्चों को विकुर्वकर निमित्त बताया x

प्रद्योत नगर में घूमता है x सैन्य बहुत कम दिखा x अंगारवती को पूछा - तेरे पिता ने मुझे कैसे पकड़ा? x उसने निमित्त की बात की x प्रद्योत ने मुनि के पास जाकर कहा - मैं नैमित्तिक साधु को वंदन करता हूँ x वारत्रक मुनि ने भूतकाल में उपयोग देकर स्वयं की भूल जानी xx

यहाँ चंद्रयशा, सुजात, धर्मघोष और वारत्रक जैसा संवेग होना चाहिए।

भव. 18. प्रणिधि द्वार - माया 29. द्रव्य, भाव। द्रव्य प्रणिधि में उदाहरण -
गा. 1305 भरुच x नभवाहन x प्रतिष्ठान पर शातवाहन राजा ने भरुच को घेरा x नभवाहन राजा भंडार से, शातवाहन राजा सैन्य से समृद्ध था x नभवाहन

Notes Date :

ने घोषणा की - जो हाथ या मस्तक लाएगा, उसे लाख द्रव्य दूंगा x नभवाहन के आदमी रोज-रोज शत्रु सैनिक को मारते हैं x शालवाहन के सैनिक भी मारते हैं किंतु शालवाहन उन्हें कुछ नहीं देता x सेना कम होने से शालवाहन वापस गया x ऐसे हर साल वह आता है और वापस जाता है x

एकदा शालवाहन के मंत्री ने कहा - आप मुझे कुछ अपराध में देश से निकाल दो x राजा ने ऐसा किया x वह मंत्री गुग्गुल (सुगंधी द्रव्य विशेष) लेकर भरुच आया x एक देवकुल में रुका x आस-पास के राजाओं को खबर मिली कि शालवाहन ने मंत्री को निकाल दिया है किंतु भरुच में खबर न पड़ी x किसी के पूछने पर वह कहता - मेरा नाम गुग्गुलभगवान् है x नभवाहन राजा को खबर मिली कि शालवाहन का मंत्री ऐसा बाबा बन गया है x उसने मंत्री बनने बुलाया किंतु वह न आया x राजा खुद लेकर आया और मंत्री बनाया x मंत्री ने विश्वास जीतकर कहा - पुण्य से राज्य मिलता है अत: परभव का भाता बाँधो x राजा ने देवकुल, स्तूप, तालाब, बावड़ी वि. बनवाए x मंत्री ने देखा कि भंडार खाली हुआ है अत: शालवाहन राजा को बुलाया x किंतु शालवाहन को पहले की तरह ही वापस जाना पड़ा x उसने मंत्री को कहा - तूने षड्यंत्र किया है x मंत्री - मैंने नहीं किया, यह तो उसने रानियों के आभूषण देकर आपके सैनिकों को मराया है x

अब रानियों के आभूषण से राज्य चलता है x वह धन भी पूर्ण हुआ तब मंत्री ने शालवाहन को बुलाया x नभवाहन के पास देने के लिए कुछ नहीं था x अत: हारा।

यह शालवाहन के मंत्री की द्रव्य प्रणिधि है।

भाव प्रणिधि का उदाहरण - भरुच x जिनदेव आ. x उसी नगर में भदंतामित्र और कुणाल दो भाई बौद्ध वादी थे x दोनों ने वाद की घोषणा की x चैत्यों

के वंदन के लिए गए आ. ने परह का स्पर्श किया x राजकुल में वाद हुआ x
दोनों भाई हारे x दोनों ने सोचा - इनका सिद्धांत जाने बिना जीत नहीं सकते x
अतः माया से अन्य आ. के पास दीक्षा ~~के~~ लेकर पढ़े (यहाँ वर्णन गोविंद
की तरह जानना) x वापस वाद करने आए, हारे x अन्य आ. के पास वापस
दीक्षा x ऐसे पढ़ते हुए सच्चा ज्ञान हुआ x भाव दीक्षा ली xx।

अव. 19. सुविधि द्वार (देखें गा. 1277 Pg. 158)। जिस अनुष्ठान की जैसी विधि हो,
वैसी करना। उदाहरण -
गा.1306-7 वैतरणी और धन्वंतरी वैद्य का दृष्टांत (भाग Pg)।

अव. 20. संवर द्वार। वैधर्म्य उदाहरण -
गा.1308 राजगृह में श्रेणिक ने भ. को पूछा - एक देवी नाट्य विधि बताकर गई, वह
कौन थी ? x भ. -
वाणारसी x भद्रसेन सेठ, नंदा पत्नी, नंदश्री पुत्री x योग्य पति न मिलने से
नंदश्री का विवाह न किया x पार्श्वनाथ प्र. पधारे x गोपाली साध्वीजी के
पास दीक्षा ली x पहले अच्छा संयम पाला, फिर शिथिल हुई x हाथ पैर धोती
है वि. द्रौपदी के पूर्वभववत् x शिथिलाचार से रोकने पर अन्य वसति में
रहने लगी x आलोचना किए बिना मरकर लघुहिमवंत पर्वत पर पद्मद्रह
में देवों की वेश्या श्रीदेवी बनी x
ऐसे संवर ~~नहीं करने से~~ किया x ~~न~~ संवर करना चाहिए x
अन्य मत - जब वह देवी हथिनी का रूप कर समवसरण में भ. के आगे
आवाज करती है तब श्रेणिक ने पूछा।

अव. 21. आत्मदोष उपसंहार द्वार। यदि कुछ करूँगा तो दोगुना कर्मबंध होगा अतः
आत्मदोष का उपसंहार करना चाहिए। उदाहरण -
गा.1309 द्वारिका x अर्हमित्र सेठ, अनुद्धरी पत्नी, जिनदेव पुत्र x श्राद्ध x पुत्र को रोग
हुए x चिकित्सा से ठीक नहीं हुए x वैद्य ने कहा - तू माँस खा x वह नहीं

Notes Date :

माना x स्वजनों और माता-पिता ने अनुज्ञा स्नेह से दी x वह नहीं माना x आग्रह करने पर बाल्या-लंबे समय के व्रत को तोड़ूँ ? कहा भी है -

'वरं प्रवेष्टुं ज्वलितं हुताशनं, न चापि भग्नं चिरसञ्चितं व्रतम्' x।

उसने आत्मदोषों का उपसंहार किया x सर्वसावद्य का पच्चक्खाण किया x कर्म के क्षयोपशम से रोग शांत हुए x तो भी पच्चक्खाण नहीं तोड़ा x दीक्षा, केवलज्ञान, मोक्ष x।

अव -22. सर्वकामविरक्तता / उदाहरण -

गा। ३१० उज्जयिनी x देविलासुत राजा x ल्लाचना रानी x एकदा राजा शय्या पर बैठा था x रानी उसके बाल जमाती है x सफेदबाल देखकर कहा - दूत आया x राजा उत्सुकता से कुछ हर्ष और कुछ भय के साथ खड़ा हुआ, पूछा - कहाँ है ? x रानी - धर्मदूत है x रानी ने उस बाल को उंगली पर लपेटकर खींचा x सुवर्ण थाली में सूती कपड़ों के बीच रखकर बाल को नगर में घुमाया x राजा - सफेद बाल आने के पहले ही हमारे पूर्वज दीक्षा लेते थे, मैंने अभी तक नहीं ली x पद्मरथ को राज्य देकर राजा - रानी ने दीक्षा ली x संगत - अनुमतिका दास-दासी ने भी दीक्षा ली x सभी असितगिरि पर्वत पर तापसाश्रम में गए x दास-दासी ने बाद में दीक्षा छोड़ दी x रानी ने भी गर्भ की बात पहले नहीं करी थी x वह गर्भ बढ़ने लगा x अपयश के भय से गुप्त रखा x प्रसूति के समय सुकुमार होने से रानी मर गई x पुत्री जन्मी x अन्य तापसी का स्तनपान कर बड़ी हुई x अर्धसंकाशा नाम रखा x युवान् हुई x रोज जंगल से आते पिता की सेवा करती है x वह तापस युवान् कन्या पर आसक्त हुआ x 'कल उसे लूँगा' ऐसा सोचता है x एकदा उसे पकड़ने दौड़ा और झुपड़ी की लकड़ी से टकराकर गिरा x सोचता है - धिक्कार है मुझे ! आलोक का फल मिला, परलोक में खबर नहीं कैसा मिलेगा ? x प्रतिबोध हुआ x अवधिज्ञान हुआ x सर्वकामविरक्त होने का लोगों को उपदेश देते हैं x स्वयं की पुत्री साध्वीजी को दी x पिता-पुत्री दोनों सिद्ध हुए xx।

अव. 23-24. प्रत्याख्यान द्वार (द्वारगा. 1278 (g. 158) | पच्चक्खाण 2 प्र. - मूलगुण, उत्तरगुण। मूलगुण पच्चक्खाण का उदाहरण -

गा. 1311 साकेत x शत्रुंजय राजा x जिनदेव श्रावक x एक कोटीवर्ष नामक देश में गया x वहाँ म्लेच्छ थे x राजा चिलात था x जिनदेव श्रावक ने रत्न, किराना वि. जो उस देश में नहीं था, वो सब दिया x चिलात - ये सुंदर रत्न कहाँ से लाया? x श्रावक - हमारे राज्य में x राजा - मैं रत्न देखने आऊँ किंतु तेरे राजा से डरता हूँ x श्रावक - आपको डरने की जरूर नहीं है x श्रावक ने शत्रुंजय राजा को पूछवाया x शत्रुंजय राजा ने हाँ कही x जिनदेव के साथ साकेत आया x भ. पधारे x राजा और नगर के लोगों को जाते देख चिलात ने पूछा - ये कहाँ जा रहे हैं? x श्रावक - ये रत्नों के व्यापारी हैं x चिलात - तो हम भी देखने चलें x दोनों गए x समवसरण देखा x चिलात राजा ने भ. को पूछा - रत्न कैसे मिलते हैं? x भ. ने द्रव्य - भावरत्न का वर्णन किया x चिलात - मुझे भावरत्न चाहिए x भ. - दीक्षा से मिलते हैं x उसने दीक्षा ली xx

यह मूलगुण पच्चक्खाण हुआ।

अव. उत्तर गुण पच्चक्खाण का उदाहरण -

गा. 1312 वाणारसी x 2 मुनि - धर्मघोष, धर्मयश x हर महिने मासखमण x चौमासे में 4 मास तप x पारणे के दिन चौमासा पूर्ण होने से 'हमारा नित्यवास न हो' इसलिए पहली पोरसी में सूत्रपोरसी, दूसरी में अर्थपोरसी कर तीसरी पोरसी में उपधिलेकर उस क्षेत्र से निकले x शरद ऋतु की धूप से पीड़ित होने पर भी, प्यास लगने पर भी, गंगा नदी पार करते हुए मन से भी पानी की इच्छा नहीं की x गंगा की अधिष्ठायक देवी उन पर खुश हुई x उसने आगे गोकुल विकुर्वे x वहाँ बहुत दही-दूध वि. मिलते थे x ग्वाले साधुओं को बुलाते हैं x उनके रूप देखकर शंका होने से वहोरने का मना किया x देवी ने भक्ति से बादल विकुर्वकर बारिश की x भूमि गीली हुई x ठंडी हवा से उनकी पीड़ा कम हुई x गाँव में पहुँचकर भिक्षा ग्रहण की x

ऐसे (भिक्षादि) उत्तर गुणों का पच्चक्खाण पालना चाहिए।

अव. 25. व्युत्सर्ग द्वार - 2 प्र. द्रव्य, भाव। द्रव्य-भाव व्युत्सर्ग में करकंडु वि. 4 उदाहरण हैं -

Notes Date :

आ. 208-9 चंपा× दधिवाहन, चेटक पुत्री पद्मावती रानी× उसे दोहद - राजा का वेश पहनकर उद्यान वि. में घूमूँ ।× क्षीण शरीर होने का कारण पूछने पर रानी ने राजा को दोहद कहा× राजा ने रानी को जयहस्ति पर बैठाया× स्वयं छत्र ग्रहण कर बैठा× वे उद्यान में गए× तभी पहली बारिश हुई× ठंडी मिट्टी की गंध से हाथी वन की ओर दौड़ने लगा× सैनिक वि. पकड़ न सके × राजा-रानी जंगल में पहुँचे× राजा ने वटवृक्ष देखकर रानी को तैयार रहने कहा× राजा निपुण होने से शाखा पकड़ लेता है× पद्मावती पकड़ न सकी× राजा नीचे उतर कर दुःखी होकर चंपा नगरी गया×

हाथी पद्मावती को निर्जन जंगल में ले गया× प्यास लगने से द्रह में पानी पीने उतरा× पानी से खेलने लगा× रानी धीरे से नीचे उतरकर द्रह से बाहर निकली× दिशा को नहीं पद्मावती सागार भक्त प्रत्याख्यान लेकर एक दिशा में चली× बहुत दूर एक तापस दिखा× वंदन कर बैठी× तापस - हे माता! कहाँ से आए ।× रानी ने वृत्तांत कहा× वह तापस चेटक राजा का स्वजन था अतः कहा - दूसरा मत× उसे फल खिलाए× कुछ दिन रहकर जंगल के बाहर लाकर कहा - यहाँ मेरी मर्यादा पूरी हुई, यहाँ से हल से जोती हुई जमीन है अतः इस पर चलना हमें कल्पता नहीं है, यह दंतपुर नगर है, दंतचक्र राजा है× उसने नगर में साध्वीजी के पास दीक्षा ली×

गर्भ बढ़ने पर प्रवर्तिनी को कहा× पुत्र जन्म होने पर नाममुद्रा और कंबलरत्न के साथ श्मशान में छोड़ा× श्मशान पालक चंडाल ने पुत्रवत् रखा× साध्वी जी ने चंडाल से मैत्री की× अन्य साध्वियों को मृत बालक परठने का कहा×

बड़ा होकर अन्य बालकों के साथ खेल में वह राजा बनता और कर लेता× उसे सूखी खुजली आने लगी× वह बालकों को कहता - तुम मुझे खुजालो× उसका करकंडु नाम रखा× करकंडु को साध्वीजी प्रति स्नेह हुआ× साध्वी जी भिक्षा में मिलने वाली अच्छी वस्तुएँ उसे देती× बड़ा होकर श्मशान का रक्षण करने लगा× वहाँ घूमते हुए दो साधु आए× एक साधु दंड के लक्षण जानता था× उसने बबूल की झाड़ी में एक दंड देखकर कहा - इसे जो लेगा वह राजा बनेगा किंतु अभी ऐसे ही रहने देना चाहिए, जब 4 अंगुल बड़ा होगा तब योग्य होगा× यह बात करकंडु

और एक ब्राह्मण ने सुनी ×

ब्राह्मण ने ५ अंगुल जमीन खोदकर नीचे से दंड काट लिया × करकंडु ने इसके हाथ से छीन लिया × ब्राह्मण पकड़कर न्यायालय ले गया और बोला - मेरा दंड है × मेरी श्मशान में था, नहीं दूँगा × न्यायाधीश ने ब्राह्मण को दूसरा दंड लेने कहा किंतु न माना × करकंडु भी दंड देने का मना करता है × करकंडु को पूछा - तू दंड क्यों नहीं देता ? × इस दंड के प्रभाव से मैं राजा बनूँगा × न्यायाधीश ने हँसकर कहा तू राजा बनकर इस ब्राह्मण को गाँव देना × करकंडु ने हाँ की × ब्राह्मण ने अन्य ब्राह्मणों को इकट्ठा कर कहा - इसे मारकर हम दंड ले लें × यह सुनकर करकंडु के पिता - माता और पुत्र तीनों भागे × कंचनपुर पहुँचे × वहाँ राजा पुत्र रहित मरा × मंत्री ने घोड़ा अधिवासित किया ×

सोते हुए करकंडु को प्रदक्षिणा देकर घोड़ा खड़ा रहा × लक्षणपाठकों ने लक्षण युक्त पुरुष देखकर जयकार किया × करकंडु उठकर घोड़े पर बैठ गया किंतु चंडाल मानकर ब्राह्मण नगरप्रवेश नहीं करने देते × करकंडु ने वह दंड रत्न ग्रहण किया × दंडरत्न जलने लगा × डरकर ब्राह्मण चूप हुए × उसका नाम घर में अवकीर्णक था, बाद में बालकों ने करकंडु रखा ×

वह ब्राह्मण करकंडु के पास गाँव माँगने आया × करकंडु - जो इच्छा हो, वह गाँव माँग ले × ब्राह्मण - मेरा घर चंपा नगरी में है अतः मुझे वह दो × करकंडु ने दधिवाहन को लेख भेजा - आप मुझे एक गाँव दो तो मैं आपकी इच्छानुसार एक गाँव या नगर दूँ × दधिवाहन ने गुस्से में कहा - ये चंडाल स्वयं की जात को पहचानता नहीं और मुझे लेख भेजता है × इस से यह सुनकर करकंडु को गुस्सा आया × चंपा को घेरा × साध्वीजी यह सुनकर करकंडु को बुलाकर बोले - ये तेरे पिता हैं × करकंडु ने उसके चंडाल माता-पिता को पूछा × उन्होंने सत्य कहा और नाममुद्रा - रत्नकंबल दी × तो भी अहंकार से वह बोला - मैं पीछे नहीं हटूँगा × साध्वीजी चंपा में गए × महल में जाते हुए साध्वी जी को दासी पहचान कर पैर में गिरी × राजा भी सुनकर नीचे आया × वंदन कर आसन देकर गर्भ का पूछा × साध्वीजी - ये आपका ही पुत्र है × राजा खुश होकर नगर के बाहर निकला × दोनों मिले × दधिवाहन ने दोनों राज्य करकंडु को देकर दीक्षा ली × करकंडु बड़े राज्य वाला हुआ ×

Notes Date:

उसे गोकुल प्रिय थे x एकदा शरद ऋतु में करकंडु राजा ने ~~सफेद~~ गाय के एक सफेद बछड़े को देखा x ग्वाले को कहा - इसकी माता को दोहना मत, उसे ही दूध पीने देना, जब बड़ा हो तब अन्य गायों का दूध भी इसे पिलाना x वह बछड़ा ऊँचे सींग वाला और बड़ी खुंध वाला बैल हुआ x उसे युद्ध के लिए रखा x कुछ समय बाद उसे सामान्य पाड़ों से परेशान देखकर ग्वालों को पूछा - वह बैल कहाँ है? x ग्वालों ने बताया x ऐसे बुड्ढे को देखकर राजा को खेद हुआ x सोचने पर वैराग्य हुआ

भा. 210 श्वेत, सुजात, सुविभक्त सिंग वाले बैल को गोष्ठ में देखकर, ऋद्धि - अऋद्धि को सोचकर, धर्म को विचारकर कलिंग राज (करकंडु) बोध पाये।

★ सुजात = गर्भ दोष रहित। सुविभक्तशृंग = परस्पर विभाग से रहे, समान सिंग वाला। ऋद्धि = सार, अऋद्धि = असार रूप।

भा. 211 गोष्ठांगन में जिसके ढेक्कित शब्द से दीप्त, दर्पित, शरीर से सुतीक्ष्ण सिंग वाले बैल भी भग्न होते थे -

भा. 212 वह बैल पुराना, दर्परहित, गलती आँखों वाला, चलित होंठ वाला यही है, पाड़ों का परिघट्टन सहन कर रहा है।

★ दीप्त = रोषण करने वाले, दर्पित = बल से उन्मत्त, शरीर से सुतीक्ष्णशृंग = ~~सामर्थ~~ शारीरिक बल से समर्थ।

★ गलती आँखों = नीचे उतरी हुई आँखों वाला, चलित होंठ = वृद्धावस्था से कंपते।

ऐसे असार संसार को धिक्कार है, ऐसे सोचते हुए करकंडु को वैराग्य हुआ। x जातिस्मरण हुआ x विहार किया।

कांपिल्यपुर में दुर्मुख राजा x इन्होंने हजारों छोटी ध्वजाओं से शोभते इंद्रध्वज को पुनः विष्ठा मूत्र पर पड़ा और अशुचि से खराब हुआ देखकर वैराग्य हुआ -

भा. 213 समलंकृत इंद्रध्वज को गिरा हुआ और नष्ट होता हुआ देखकर ऋद्धि - अऋद्धि को सोचकर, धर्म को विचारकर, पंचाल राज बोध पाये।

विदेह देश में मिथिला नगरी में नमि राजा x बीमार हुए x रानियाँ दाह शांत करने चंदन घिसती हैं x चूड़ियाँ खन-खन आवाज करती हैं x उसने बोला - कान में आवाज का घात हो रहा है x एक चूड़ी रखकर सब निकाल दी x आवाज बंद हुआ x पूछने पर कहा - एक रखकर सब निकाल दिए x नमि राजा दुःख से परलोकाभिमुख होकर सोचने लगे - बहुत होने से दोष होता है, एक से नहीं x। -

भा.214 बहुत चूड़ियों का शब्द सुनकर और एक का न सुनकर मिथिलाधिप नमिराज निकला।

गंधार देश में पुरिमपुर में नग्गति राजा x एकदा यात्रा के लिए गया x रास्ते में पुष्पित आम्रवृक्ष से एक मंजरी ली x पीछे पूरी सेना ने ठारा 1-1 मंजरी लेने से वह ठूँठ बना x वापस आते हुए राजा ने पूछा - वह वृक्ष कहाँ गया? x यही है x ठूँठ कैसे हुआ? x पूरी सेना ने 1-1 मंजरी ली x नग्गति को राज्यलक्ष्मी की अनित्यता सोचकर वैराग्य हुआ -

भा.215 मंजरी, पल्लव, पुष्प समूह से युक्त और मनोऽभिराम आम्र वृक्ष को देखकर ऋद्धि अऋद्धि सोचकर, धर्म विचार कर गंधार राज बोध पामा।

चारों विचरते हुए क्षितिप्रतिष्ठित नगर के 4 दरवाजे वाले देव यक्षमंदिर में मिले x करकंडु पूर्व दिशा से घुसे x द्विमुख दक्षिण से, तब यक्ष ने सोचा साधु से पराङ्मुख कैसे रहूँ! x अतः दक्षिण में मुख विकुर्वा x पश्चिम से नमि, उत्तर से गंधार प्रविष्ट हुए x यक्ष ने चारों ओर मुख विकुर्वे x

करकंडु को बचपन से खुजली आती थी x एक सली लेकर धीरे-धीरे कान को खुजाकर सली छुपाई x ऐसा देखकर द्विमुख - तुमने राज्य, राष्ट्र, अंतःपुर छोड़ दिया है तो एक सली का परिग्रह क्यों करते हो? x करकंडु कुछ बोले इससे पहले ही नमि - राज्य में बहुत कार्य किए, उन सब कार्य को छोड़कर तू पुनः दूसरे के कार्य की चिंता कर रहा है x, तू उसका ध्यान रखने वाला है क्या? x गंधार - तू सब छोड़कर मोक्ष का प्रयत्न कर रहा है तो

Notes Date :

यहाँ क्यों करता है। x गंधार को कारकेंदु बोला - मोक्षमार्ग में रहे, ब्रह्मचारी साधुओं को अहित से रोकने वाले के दोष नहीं कहना चाहिए; हित भाषा सामने वाले को कड़वी लगे तो भी हितशिक्षा अवश्य कहना चाहिए।
तथा
गा. 1313 जैसे जलते हुए लकड़े की उपेक्षा करे तो वह जलता नहीं किंतु (चूल्हे में) आगे-आगे खिसकाने से जलते हैं वैसे तू चद्दण (टोकने) को सहन कर।
गा. 1314 लंबे समय से वक्र, हाथी के अंकुश के आकार वाले जड़ वाले करमंद वृक्ष के लकड़े तेल मालिश से सीधे होते हैं। (वैसे लंबे समय का दोष भी प्रेरणा से छूट जाता है।)

इन 4 चारों ने राज्य वि. छोड़ा, वह द्रव्य व्युत्सर्ग, कषाय छोड़े वे भाव व्युत्सर्ग।

अव. 26. अप्रमाद द्वार । उदाहरण -
गा. 1315 राजगृह x जरासंध राजा x 2 गणिका - मगधसुंदरी, मगधश्री x मगधश्री ने सोचा - ये मगधसुंदरी न हो तो अन्य कोई मेरा मान खंडित न करे, राजा भी मेरे हाथ में होगा, मेरा यश फैलेगा x उसने मगधसुंदरी के नृत्य के दिन सुवर्ण से बनी सुई के समूह को विषवासित कर और केसर जैसा रंग कर कर्णिकार पुष्प पर लगाई x मगधसुंदरी ने महत्तरिका को कहा - भमरे कर्णिकार पर नहीं बैठते और आम्रपुष्पों पर बैठते हैं, इसमें कुछ दोष होना चाहिए; परंतु ऐसा कहूँगी तो मैं गाँवडी कहलाऊँगी x अतः वह रंगमंच से नीचे उतरी x मंगल गाने के समय उसने गाया -
गा. 1316 वसंत मास में पुष्प की सुगंध फैलने पर भमरे कर्णिकार को छोड़कर आम्र पुष्प पर बैठे।
मगधश्री भी सुनकर समझ गई x मगधसुंदरी कर्णिकार पुष्प छोड़कर विलास-पूर्वक गाने-नाचने लगी x ठगाई नहीं xx

जैसे मगधसुंदरी कर्णिकार छोड़कर अप्रमत्त होकर नाची, ऐसे साधु भी प्रमाद छोड़कर अप्रमत्त बने।

अव. 27. लवालव द्वार (द्वार गा. 1278 पृ. 158) | ~~उसमें~~ एक क्षण भी प्रमाद न करना। उदाहरण –

गा. 1317 भरुच में एक आचार्य x कुछ कार्य से एक ~~शिष्य~~ विजय नाम के शिष्य को उज्जयिनी भेजा x रास्ते में किसी ग्लान के कार्य से उसे विलंब हुआ x अकाल में बारिश होने से आगे नहीं चल सका x अंडे, तृण वि. उत्पन्न हुए जानकर नजदीक गाँव में चौमासा रहा x उसने सोचा (लक्ष अंडे) – गुरुकुलवास नहीं है किंतु मैं यहाँ भी उपदेशानुसार करूँगा x गुरु की स्थापना कर चक्रवाल सामाचारी वि. बराबर पाली x प्रत्येक क्षण उपयोग रखा – मैंने यह किया, यह बाकी है x कहीं भी कुछ न चुका x उसने ऐसे योगों का संग्रह किया x।

ऐसे क्षण का भी प्रमाद नहीं करना चाहिए।

अव. 28. ध्यान संवर योग – उदाहरण –

गा. 1318 शिववर्धन नगर x मुंडिकाम्र राजा x पुष्पभूति आ. ने राजा को श्राद्ध बनाया x इन आ. का बहुश्रुत शिष्य पुष्पमित्र शिथिल होने से अन्य वसति में रहता है x आ. ने सूक्ष्म ध्यान में प्रवेश करने का सोचा x वह महाप्राणध्यान जैसा है x उसमें योगों का निरोध होता है x आ. के पास रहे साधु अगीतार्थ होने से आ. की जवाबदारी संभालने के योग्य नहीं थे x आ. ने पुष्पमित्र को बुलाया x ध्यान करने का कहा x पुष्पमित्र ने स्वीकारा x आ. व्याघात रहित एक Room में ध्यान कर बैठे x पुष्पमित्र किसी को अंदर नहीं जाने देता, बोला – यहीं से वंदन कर लो x शिष्यों ने ~~ऐसे~~ परस्पर मंत्रणा की कि आ. जिंदा है या नहीं? हम तलाश करें x एक शिष्य छुपकर देखता है x बहुत देर तक खड़ा रहा किंतु कोई हलन चलन नहीं, आ. श्वास भी नहीं लेते क्योंकि सूक्ष्म श्वास दिखते नहीं है x उसने आकर अन्य साधुओं को कहा x सब गुस्सा होकर पुष्पमित्र को बोले – आ. का कालधर्म होने पर भी तू हमें कहता नहीं है x पुष्पमित्र – कालधर्म नहीं हुआ है, वे ध्यान करते हैं

Notes Date :

इसलिए कोई विक्षेप मत करना x अन्यसाधु - 'ऐसा लगता है कि यह मात्र वेशधारी वेताल को सिद्ध करने के लिए थे आ. लक्षणयुक्त होने से कुछ बोलता नहीं है, आज रात को तलाश करेंगे x सब पुष्यमित्र से झगड़ने लगे x पुष्यमित्र ने सबको रोका x सबने राजा को बुलवाया और कहा - आ. का काल होने पर भी यह वेशधारी लेजाने नहीं देता x राजा ने देखा तो उसे भी लगा कि काल हो गया है x सब पुष्यमित्र पर विश्वास नहीं करते x पालकी बनवाई x पुष्यमित्र समझ गया कि ये आ. को मार देंगे x आ. ने ध्यान के पहले पुष्यमित्र को कहा था - अग्नि या कोई अनर्थ का भय हो तो मेरे अंगूठे का स्पर्श करना x पुष्यमित्र ने अंगूठे का स्पर्श किया x आ. ने ध्यान में से जागृत होकर पूछा - हे आर्य! क्यों विक्षेप किया? x उसने कहा - देखो, आपके शिष्यों ने आपके लिए पालकी तैयार की है x आ. ने सबको डाँटा x

ऐसे साधु को ध्यान करना चाहिए।

भव. 29. मारणांतिक उदय - उदय / वेदना मारणांतिक हो तो भी सहन करे। उदाहरण-

गा. 1319 रोहिड़क नगर x एक ललित गोष्ठी-समान उम्र वाले मौज-मजा करते x बुड्ढी वेश्या रोहिणी नामक x अन्य कोई आजीविका न मिलने से वह इस गोष्ठी के लिए भोजन बनाती है x एकदा कड़वी लौकी की सब्जी बनाई x किंतु कड़वी होने से सब्जी बिगड़ गई, मुँह में डाल भी न सके x उसने सोचा - गोष्ठी मेरे ऊपर गुस्सा होगी, इससे अच्छा यह भिक्षाचर को दूँगी जिससे पैसे न बिगड़े x

तभी मासक्षमण के पारणे धर्मरुचि अणगार पधारे x रोहिणी ने कड़वी सब्जी वोहराई x मुनि उपाश्रय गए x गुरु को बताया x उंगली में लेकर सूंघने से क्षारगंध पता चली x जाना कि विषाक्त है x जो खाएगा वो मरेगा x साधु को कहा - इसे परठ दे x साधु निर्जन स्थान में गए x जले हुए वृक्ष की छाया में परठूँ' ऐसा सोचते हुए झोली खोलते हुए साधु का हाथ सब्जी वाला हुआ x उन्होंने हाथ एक जगह स्पर्श किया x उसकी गंध से कीड़ियाँ आई, सब्जी खाकर मरी x मुनि ने सोचा - ज्यादा जीव मरे उससे अच्छा मैं एक ही मरूँ तो अच्छा x एक अचित्त भूमि में आलोचना प्रतिक्रमण कर मुहपत्ति का पडिलेहन कर निंदा किए बिना मुनि सब्जी वापर

गए x तीव्र वेदना हुई x सहन करते हुए सिद्ध हुए।
ऐसे साधुओं को सहन करना चाहिए।

अव. 30. संगों की परिज्ञा द्वार (देखें द्वार गा. 1279 Pg. 158)। भाव से अभिष्वंग, राग।
धनधान्यकलत्रादि में गृद्धि का परिणाम जिससे भविष्य में जीव को नारकादि भव के दुःख रूप भय उत्पन्न हो, उसे अभिष्वंग कहते हैं (टीप्पणक)।
उस परिणाम को ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से प्रत्याख्यान करना चाहिए। उदाहरण –

गा. 1320 चंपा x जिनदेव श्रावक ने घोषणा की – अहिच्छत्रा तरफ सार्थ जा रहा है x सार्थ निकला x जंगल में चोरों ने लूटा x वह जंगल में भागा x उसके पीछे बाघ, आगे अग्नि और आस-पास खाई आई x वह डरा x कोई शरण न दिखने पर स्वयं ही भावलिंग रूप सामायिक कर काउसग्ग में खड़ा रहा x जंगली पशु उसे खा गए x वह सिद्ध हुआ।
ऐसे संगों की परिज्ञा (ज्ञ और प्रत्याख्यान) करना चाहिए।

अव. 31. प्रायश्चित्त द्वार – विधि पूर्वक प्रायश्चित्त लेते शिष्य और देते गुरु को योगों का संग्रह होता है। विधि पूर्वक यानि सूत्र में कहे अनुसार, जो जितने

गा. 1321 (पूर्वार्द्ध) प्रायश्चित्त से शुद्ध हो उतना उपयोग रखकर देना वि.। उदाहरण –
एक नगर में धनगुप्त आ. x छद्मस्थ होने पर भी वे प्रायश्चित देना जानते थे x इंगिताकार से सामनेवाले के भाव जानते हैं x उनके पास जो प्रायश्चित लेते हैं उनकी सुखपूर्वक निस्तार होता है, बहुत निर्जरा होती है।
ऐसे अन्य साधुओं को भी करना चाहिए।

अव. 32. मृत्यु मरणांत में आराधना – उदाहरण –

गा. 1321 (पश्चार्द्ध) विनीता नगरी x भरत राजा x ऋषभ स्वामी का समवसरण x मरुदेवा भरत को विभूषित देखकर कहती है – तेरे पिता ऐसी ऋद्धि छोड़कर अकेले विचरते हैं x

Notes Date :

भरत- जैसी पिता की ऋद्धि वैसी मेरी कहाँ ! आपको विश्वास न हो तो चलो हम देखते हैं x भरत चूरी सेना के साथ चला x मरुदेवा भी उनके साथ गई x एक हाथी पर बैठे x छत्रातिछत्र और देवसमूह को देखा x भरत के वस्त्राभूषण उनके सामने निस्तेज थे x भरत - देखा आपके पुत्र की ऋद्धि, ऐसी मेरे पास भी नहीं है x मरुदेवा प्रसन्न होकर सोचने लगी x अपूर्वकरण में प्रवेश किया x जातिस्मरण हुआ क्योंकि वनस्पतिकाय में से आए थे x केवलज्ञान, सिद्ध x इस अवसर्पिणी में प्रथम सिद्ध हुए।

ऐसे आराधना करना चाहिए।

सूत्र तेत्तीसाए आसायणाहिं।

★ 33 आशातनाओं से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ।

पुरओ पक्खासन्ने गंता चिट्ठणनिसीयणायमणे।
आलोयणअपडिसुणणे पुव्वालवणे य आलोए ॥1॥
तह उवदंसनिमंतण खद्धाईयण तह अपडिसुणणे।
खद्धंति या तत्थ गए किं तुम तज्जात णो सुमणो ॥2॥
णो सरसि कहं चित्ता परिसंभित्ता अणुट्ठिाए कहे।
संथारपायपट्टण चिट्ठुच्चसमासणे यावि ॥3॥

1. पुरतः चलना - रत्नाधिक के आगे चलना।
2. पक्ष " - " पास में "।
3. आसन्न " - " पीछे एकदम पास में चलना।
4. पुरतः खड़े रहना। 5. पक्ष खड़े रहना। 6. आसन्न खड़े रहना।
7. पुरतः बैठना। 8. पक्ष बैठना। 9. आसन्न बैठना।
10. आचमन - ब्राह्मण वि. के देखने पर स्थंडिल भूमि से आकर हाथ-पैर धोना पड़े तब रत्नाधिक से पहले धोना।
11. आलोचना - बाहर से आकर पहले इरियावही करना।
12. अप्रतिश्रवण - रात को या विकाल में रत्नाधिक पूछे 'कोई जागता है?' तब शैक्ष

जगाने पर भी न बोले तो आशातना

13. प्रवलपन – कोई श्रावकादि रत्नाधिक से बात करे उससे पहले ही शैक्ष बात करे।

14. आलोचना – अशन पान खादिम स्वादिम लाकर शैक्ष पहले आलोवे।

15. उपदर्शन – गोचरी लाकर पहले अन्य को बताए फिर रत्नाधिक को बताए।

16. निमंत्रण – गोचरी वापरने पहले " " बुलाए " " " बुलाए।

17. खद्ध – गोचरी लाकर रत्नाधिक को पूछे बिना जिसे देने की इच्छा हो उसे अच्छे-अच्छे द्रव्य दे या प्रचुर द्रव्य दे।

18. अदन – रत्नाधिक के साथ वापरते हुए बड़े-बड़े कवल, पत्ते से बनी हुई सब्जी, वर्णगंध रस स्पर्श युक्त, रसाल अनार आम्रादि, मनोज्ञ, स्निग्ध, रुक्ष (रत्नाधिक को दिए बिना) वापरे।

19. अप्रतिश्रवण – दिन में रत्नाधिक बुलाए तो न सुने।

20. खद्ध – रत्नाधिक के सामने जोर-जोर से ऊँची आवाज में कर्कश बोले।

21. तत्र गत – रत्नाधिक बुलाए तब जहाँ हो वहीं से जवाब दे।

22. किं इति – " " " क्या है? बोले। मत्थएण वंदामि बोलना चाहिए।

23. तुम – तू कार से बोले।

24. तज्जात – रत्नाधिक के सामने वैसे ही वचन बोले eg. गुरु – ग्लान की सेवा क्यों नहीं करता? शिष्य – आप ग्लान की सेवा क्यों नहीं करते? गुरु – तू आलसी है। शिष्य – आप भी आलसी हो।

25. न सुमन: – रत्नाधिक कथा करे तब सुमन वाला न हो, मुँह चढ़ाकर बैठे, उपबृंहणा न करे।

26. न स्मरसि – रत्नाधिक कथा करे तब कहे – आपको ये अर्थ बराबर याद नहीं है।

27. कथां छेत्ता – " " " " " – आप रहने दो, मैं कथा करता हूँ।

28. पर्षदा भेत्ता – " " " " पर्षदा को खड़ा कर दे, कहे – चलो अब भिक्षा/वापरने/सूत्रपोरसी/अर्थपोरसी का समय हो गया अथवा कहे – ये मात्र उपदेश देते हैं, स्वयं कुछ नहीं करते।

29. अनुत्थितायां कथा – रत्नाधिक कथा कहने के बाद पर्षदा उठी न हो तो स्वयं रत्नाधिक ने जो कहा हो उसके अलग-अलग अर्थ वि. कहे।

Notes Date :

30. संथारपाय घट्टन – रत्नाधिक के संथारे-उपधि वि. को पैर लगने के बाद हाथ से क्षमा माँगे बिना चला जाए।

31. चिट्ठ – रत्नाधिक की शय्या, संथारा, आसन वि. पर खड़े रहना, बैठना, सोना।

32. उच्च – रत्नाधिक से ऊँचे आसन पर सोना, बैठना, उठना वि.।

33. समासन – " समान " " " "।

यह व्याख्या दशाश्रुतस्कंध के सूत्रों से करी।

यहाँ 1-9 आशातना निष्कारण करने पर जानना। यदि गुरु को रास्ता पता न हो, या धुंधला दिखता हो वि. सकारण करे तो आशातना नहीं है। गुरु के आगे और आजू-बाजू चलने से विनयभंग वि., पीछे एकदम चलने से निःश्वास या छींक आने पर कफ के कण गुरु को स्पर्शे वि. दोष। अतः पीछे जितने दूर से ये दोष न लगे, उतने दूर चलना चाहिए।

अथवा 'अरिहंतों की आशातना लेकर काल में स्वाध्याय न किया' तक सूत्र में कही आशातना समझना।

सूत्र अरिहंताणं आसायणाए सिद्धाणं आसायणाए आयरियाणं आसायणाए उवज्झायाणं आसायणाए साहूणमासायणाए साहुणीणं आसायणाए सावगाणं आसायणाए सावियाणं आसायणाए देवाणं आसायणाए देवीणं आसायणाए इहलोगस्सासायणाए परलोगस्स आसायणाए केवलिपन्नत्तस्स धम्मस्स आसायणाए सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स आसायणाए सव्वपाणभूयजीवसत्ताणं आसायणाए कालस्स आसायणाए सुयस्स आसायणाए सुयदेवयाए आसायणाए वायणायरियस्स आसायणाए।

★ पूर्व में कहे हुए अर्थ वाले अरिहंतों की आशातना से जो मैंने दैवसिक अतिचार किया हो, ~~वह~~ उससे मैं पीछे हटता हूँ।

टीप्पणक * अरिहंतों की आशातना – प्रत्यक्षादि प्रमाण से अग्राह्य होने से अरिहंत नहीं है अथवा गृहवास(a) में भी 3 ज्ञान से युक्त अरिहंत स्वीकारते हो तो वे भोगों को कटु फल जानकर भी क्यों भोगते हैं? केवलज्ञान उत्पन्न होने पर वीतराग अरिहंत (b) समवसरणादि पूजा रूप प्राभृतिका को क्यों भोगते हैं? अतः अरिहंत युक्ति युक्त नहीं हैं।

ऐसे कहते हुए को यह उत्तर कहना चाहिए –

(a) पूर्व जन्म में बाँधी हुई भोग रूप फल वाली पुण्य प्रकृतियों के उदय की प्रबलता से भोगों को भोगते हैं।

(b) वे ज्ञानादि के अनुपरोधक ऐसे अघाति कर्म – साता वेदनीय, यशःकीर्ति वि. को खपाने के लिए देवों की पूजा का अनुभव करते हैं। तीर्थंकर को अघाति कर्म के वेदन में अन्य कोई उपाय नहीं है तथा उन कर्म को वेदते अरिहंत को ज्ञानादि को कोई उपरोध नहीं है। तीर्थंकर नाम कर्म का सकल त्रिलोक में पूजनीयता ही विपाक है, अन्य कुछ नहीं। तथा सुरपूजा को अनुभवते हुए भी वीतराग होने से इन्हें कोई राग नहीं है क्योंकि सभी राग की कारण रूप मोह क्षीण हो गया है।

* सिद्धों की आशातना – ऐसा बोलने पर आशातना – (पूर्वपक्ष)

(a) प्रत्यक्षादि द्वारा अग्राह्य होने से सिद्ध नहीं होते।

(b) यदि होते हैं तो पाषाण की तरह निश्चेष्ट होते हैं।

(c) 'केवलज्ञान के उपयोग वाले होने से पाषाणवत् निश्चेष्ट नहीं होते' यदि ऐसा कहो तो अथवा केवलोपयोग होने पर विशिष्ट वस्तु के उपयोग में राग, अविशिष्ट वस्तु के उपयोग में द्वेष निश्चित तया होने की आपत्ति।

(d) सिद्धों का दर्शन – ज्ञानोपयोग अलग-अलग में माना जाता है। ऐसा होने पर ये असर्वज्ञ होने की आपत्ति होगी क्योंकि दर्शन के काल में विशेष नहीं जानते और ज्ञान काल में सामान्य नहीं जानते। ऐसे एक क्षण में भी सर्वज्ञता नहीं है।

(e) ज्ञान–दर्शन काल में दर्शन और दर्शन काल में ज्ञान न होने का कारण...

Notes Date :

कहना चाहिए। वह कारण ज्ञान-दर्शनावरण कर्म नहीं होगा क्योंकि वे तो मूल से ही नष्ट हो गए हैं। अतः सामर्थ्य से ज्ञान द्वारा दर्शन आवृत होता है, और दर्शन द्वारा ज्ञान आवृत होता है। ऐसे अन्योऽन्य आवरणता की आपत्ति होगी।

(f) यदि परस्पर आवरणता न मानो तो उनके निषेधक कारण का अभाव होने से ज्ञान-दर्शन युगपद् ही प्रवृत्त होंगे। ऐसा होने पर दोनों एक हो जाएँगे।

(g) (उत्तरपक्ष) सिद्ध अवश्य होते ही हैं क्योंकि 'सिद्ध' शब्द से ही पता चल जाता है। अनुमान प्रयोग-

सन्ति सिद्धाः व्युत्पत्तिमत्-शुद्धशब्दवाच्यत्वाद् घटादिवद्।

(h) निश्चेष्ट की शंका में सिद्धसाध्यता दोष है अर्थात् सिद्ध हुई वस्तु को ही साध्य बना दिया है। क्योंकि काययोग से उत्पन्न वीर्य का अत्यंत क्षय करने से करणवीर्य की अपेक्षा ये निश्चेष्ट भी हैं।

(i) विशेष- अविशिष्ट वस्तु के दर्शन में इन्हें राग-द्वेष नहीं होते क्योंकि राग-द्वेष के कारण रूप क्रोधादि कषाय का संपूर्ण क्षय हो गया है।

(j) ऐसे प्रकार के जीव स्वभाव से ही दर्शन-ज्ञानोपयोग युगपद् नहीं होता।

(k) जब सामान्य में उपयुक्त हैं, तब विशेष के ज्ञान की लब्धि इन्हें है। जब विशेष में उपयुक्त हैं, तब सामान्य ज्ञान की लब्धि है। अतः नैगमादि नयों में जो लब्धि को मानता है, उसके मत से इनकी सर्वज्ञता कभी हीन नहीं होती।

एक ही काल में एक ही ज्ञान में उपयोग होता है, बहुत में नहीं। तो छद्मस्थ अवस्था में 'यह द्विज्ञानी, यह त्रिज्ञानी, चतुर्ज्ञानी' ऐसा व्यपदेश कैसे हमेशा कैसे होता है? जैसे वहाँ एक ज्ञान के उपयोग में भी लब्धि से शेषज्ञान होते हैं अतः शेष ज्ञानों से व्यपदेश दुष्ट नहीं है, वैसे यहाँ भी समान है। अयुगपद् उपयोग प्रवृत्त होने पर भी नैगमादि लब्धि नय के मत से इनकी सर्वज्ञता कभी क्षीण नहीं होती।

(l) परस्पर आवरणता नहीं है]

(3) आवरणता न होने पर भी जीव स्वभाव से युगपद् प्रवृत्त नहीं होते तो दोनों उपयोग एक कैसे होंगे?
अथवा यदि युगपद् उपयोग स्वीकार लो तो भी ज्ञान-दर्शन एक नहीं होंगे क्योंकि दोनों के आवरण अलग हैं। अनुमान प्रयोग-
यस्य यस्य पृथगावारकं कर्म आसीत् तत् तदवस्थे युगपद् प्रवृत्तौ अपि नैकीभवति, दर्शनावरणवीर्यान्तरायक्षयोद्भूते क्षायिकसम्यक्त्वानन्तवीर्ये ⇒ जिस-जिस गुण का कर्म पृथग् आवरण वाला था, वह गुण उसकर्म के दूर होने पर युगपद् प्रवृत्ति में भी एक नहीं होता e.g. दर्शनावरण और वीर्यान्तराय के क्षय से उत्पन्न क्षायिक सम्यक्त्व और अनंत वीर्य गुण। अतः ज्ञान-दर्शन भी एक नहीं होते।
अथवा अवबोध (जानना) सामान्य की अपेक्षा से द्रव्यार्थिक नय से ज्ञान-दर्शन एक ही भी होते हैं अतः सिद्धसाध्यता दोष होगा। ज्ञान-नय-दर्शन नय द्रव्यार्थिक के ही भेद हैं। अतः इस नय से दोनों एक हैं। [दोनों एक होने से असर्वज्ञता कैसे। — हरिभद्रीय वृत्ति]

(4) असर्वज्ञता शंका का अन्य प्रकार से परिहार — केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्रज्ञापना में पश्यत्ता कही गई है। उसकी अपेक्षा से ज्ञानोपयोग के काल में दर्शनाभाव है और दर्शनोपयोग के काल में ज्ञान है क्योंकि पश्यत्ता सामान्य दोनों में है। अतः असर्वज्ञता नहीं है।

हरिभद्रीय वृत्ति * आचार्य की आशातना — ये आ. छोटे हैं, अकुलीन हैं, दुष्टबुद्धि हैं, रंक हैं, ऐसा आत्मलाभलब्धि वाला शिष्य बोले तो आशातना; ये ~~स्वयं~~ वैयावच्च का उपदेश देते हैं स्वयं तो करते नहीं। (पूर्वपक्ष)
(उत्तरपक्ष) आ. छोटे होने पर भी ज्ञान से वृद्ध हैं, बहुत गुणवान् होने से कुलीन हैं, दुष्टबुद्धि वि. असद्दोष हैं (अर्थात् तू असद्दोष कहता है)। ज्ञान को नित्य प्रकाशित करते आ. वैयावच्च करते ही हैं।

Notes Date :

★ उपाध्याय की आशातना – आचार्यवत् ।

★ साधु की आशातना – साधु सहन नहीं करते, धीरे गति वाले हैं, परस्पर झगड़ा करके भी चंडाल और कुत्ते की तरह एक साथ विचरते हैं, विचित्र वेश पहनते (उत्तरपक्ष) संसार के स्वभाव को जानते होने से अल्पकषाय वाले होने से हैं। परस्पर कलह करके भी एक साथ विचरते हैं।

★ साध्वी की आशातना – ये बहुत कलहकारी हैं, या (साध्वीजी की उपधि वि. की जवाबदारी गणावच्छेदक साधु की होने से वह सोचे) ये बहुत उपधिवाली है या उपद्रव समान है। जैसे - वेश्या को पुत्र, वृक्ष को लता, जल को संवास उपद्रव है (वेश्या को पुत्री हो तो महोत्सव, पुत्र हो तो उपद्रव) वैसे ये भी उपद्रव है।
(उत्तरपक्ष) संज्वलन कषाय से कभी कलह हो जाए तो क्षंतव्य है। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए जिनेश्वरों ने उन्हें इतनी उपधि रखने कहा है। अर्थ वाले आगम को जानते और जिनवचन में आत्मा स्थापित करने वाले साधु के लिए साध्वीजी उपद्रव नहीं है।

★ श्रावक-श्राविका की आशातना – मनुष्य भव प्राप्त कर और जिनमत जानकर भी ये विरति नहीं लेते, ये अधन्य हैं।
(उत्तर-) कर्म की विचित्र परिणति से विरति नहीं लेते तो भी सम्यग्दर्शन में स्थिर होने से धन्य हैं।

★ देव-देवी की आशातना – ये काम में आसक्त, विरति रहित अनिमेष नेत्र वाले, निश्चेष्ट (अनुत्तर देव), शक्ति होने पर भी तीर्थ की उन्नति नहीं करते।
(उत्तर) मोहनीय और साता वेदनीय के उदय से काम में आसक्त हैं। कर्मोदय से विरति नहीं होती। स्वभाव से ही अनिमेष नेत्र वाले हैं। अनुत्तर देव कृतकृत्य होने से निश्चेष्ट हैं। कल्प के प्रभाव से यहाँ तीर्थ की उन्नति नहीं

करते, अन्य क्षेत्रों में करते हैं।

* इसलोक-परलोक की आशातना - वितथ प्ररूपणादि।

* केवलिप्रज्ञप्त धर्म की आशातना - धर्म 2 प्र. श्रुत, चारित्र। श्रुत धर्म प्राकृत (सामान्य भाषा) में रचा है, कौन जाने किसने रचा है! दान बिना चारित्र क्रिया से क्या?
(उत्तर) बाल-स्त्री-मूढ-मूर्ख मनुष्यों पर उपकार करने यह सिद्धांत प्राकृत में रचा है। निपुण धर्म होने से ही सिद्ध होता है कि यह श्रुत सर्वज्ञ प्रणीत है। दान तो चरवाहा या चंडाल भी दे सकता है किंतु वे शील नहीं पाल सकते तथा दान से परलोक में जीव भोग प्राप्त करता है, शील से जीव भोग-स्वर्ग और मोक्ष भी प्राप्त करता है। चारित्री भी अभयदान तो देता ही है।

* सदेवमनुजासुर लोक की आशातना - देवलोकादि की विपरीत प्ररूपणा करे या लोक
भा. 216 7 द्वीप-समुद्र जितना ही है, प्रजापति ने (b) लोक रचा है अथवा लोक (c) प्रकृति-पुरुष के संयोग से होता है।
भा. 217 (उत्तर पक्ष) (a) इतना ही लोक होने से जीवों की संख्या परिमित होगी। वे सतत मोक्ष में जाने से और काल अनंत होने से, निगोद जीवों की बात भी अन्य दर्शनी को सुनी हुई न होने से सर्व शून्यता की आपत्ति है। (अर्थात् सभी जीव मोक्ष में जाने से लोक खाली हो जाएगा) (टीप्पणक)
(b) 'प्रजापति द्वारा लोक रचा गया' ऐसा मानने पर 'वह प्रजापति किसके द्वारा रचा गया' ऐसा कहना। यदि कहे कि 'अन्य प्रजापति द्वारा किया गया' तो अनवस्था।
(c) प्रकृति द्वारा प्रवृत्ति ही कैसे घटती है क्योंकि 'वह अचेतन होकर भी पुरुष के
भा. 218 अर्थ को साधने के लिए प्रवृत्ति करती है' ऐसा माना जाता है। और अचेतन-स्वतंत्र पत्थर के टुकड़े की प्रवृत्ति योग्य नहीं है। यदि ऐसा कहो कि 'पुरुष अचेतन ऐसी प्रकृति को प्रवृत्त करता है' तो पुरुष को आप प्रकृति का प्रवर्तक नहीं मानते हो क्योंकि कर्तृत्व सहित होने की आपत्ति है

Notes Date :

(अर्थात् आप पुरुष को अकर्ता मानते हो किंतु ऐसा कहने से वह कर्ता हो जाएगा) (टीप्पणक)

अत: लोक की रचना में कैसे भी प्रकृति की प्रवृत्ति का अयोग होने से, प्रकृति पुरुष के संयोग से भी इसकी सिद्धि (अर्थात् लोक की रचना) नहीं होती। ऐसा अन्य दर्शनी द्वारा सभी विरुद्ध कहा गया है। (टीप्पणक)

★ सर्वप्राणिभूतजीवसत्त्वों की आशातना —

प्राणी = व्यक्त श्वास लेने वाले बेइंद्रियादि।

भूत = पृथ्वी वि. एकेंद्रिय।

जीव = आयुष्य कर्म के अनुभव से युक्त सभी संसारी जीव।

सत्त्व = संसारी-संसारातीत भेद वाली सभी आत्मा।

अथवा चारों शब्द पर्यायवाची हैं। इनकी आशातना विपरीत प्ररूपणादि से।

(a) द्वीन्द्रियादि की आत्मा अंगूठे के एक पर्व जितनी है।

(b) पृथ्वी वि. एकेंद्रिय तो अजीव ही हैं क्योंकि स्पंदनादि रूप चैतन्य के कार्य उपलब्ध नहीं होते।

(c) जीव क्षणिक है।

(d) संसारी जीव तो अंगूठे के पर्व जितने हैं और संसारातीत तो है ही नहीं बल्कि मोक्ष तो बुझे हुए दीपक समान है।

(उत्तर पक्ष) (a) आत्मा देह जितना है क्योंकि पूरे देह में ही सुख-दुःखादि कार्य की उपलब्धि होती है।

(b) पृथ्व्यादि का चैतन्य अल्प होने से कार्य की अनुपलब्धि होती है, अजीव होने से नहीं।

(c) जीव एकांतक्षणिक नहीं होते क्योंकि

निरन्वयनाशे उत्तरक्षणस्यानुत्पत्तेर्निर्हेतुकत्वात् = निरन्वय नाश में उत्तरक्षण की अनुत्पत्ति होने से अर्थात् जिस नाश के बाद कोई अन्वयी अनुसरण न हो वह निरन्वय नाश। ऐसे नाश के बाद उत्तरक्षण की उत्पत्ति ही नहीं होती है। आप आत्मा वि. का निरन्वय नाश मानते हो किंतु उत्तरक्षण की उत्पत्ति मानते हो।

निर्हेतुकत्वात् - यदि उत्तरक्षण की उत्पत्ति मानो भी तो उसका कारण क्या? आप तो हेतु बिना ही उत्पत्ति मानते हो।

एकान्तनष्टस्यासदविशेषत्वात् - यदि ऐसा कहो कि पूर्वक्षण से उत्तरक्षण की उत्पत्ति होती है तो एकांत से नष्ट ~~हुआ~~ हुए का असत् से ~~कि~~ विशेष (भेद) नहीं होता अर्थात् एकांत नष्ट असत् होता है तो उससे ~~उत्पन्न~~ उत्तरक्षण की उत्पत्ति रूप कार्य नहीं होगा।

अतः जीव एकांत क्षणिक नहीं होते।

(a) संसारी जीव का प्रत्युत्तर दिया। जीव का सर्वथा विनाश नहीं होने से संसारातीत भी होते ही हैं।

★ काल की आशातना - (a) काल है ही नहीं (b) अथवा विश्व काल की परिणति (विकार) रूप है तथा दृष्टांत है -

कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः। कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः॥

काल जीवों को पकाता है, काल प्रजा का संहार करता है। सब सोए होने पर भी काल जागता है। काल का उल्लंघन कोई नहीं कर सकता।

(उत्तरपक्ष) (a) काल होता ही है क्योंकि उसके बिना बकुल चंपकादि वृक्षों का पुष्पादि देने का भाव नियत नहीं होगा।

(b) विश्व काल की परिणति रूप नहीं है क्योंकि एकांत नित्य का परिणमन नहीं होता। अर्थात् आप काल को एकांत नित्य मानते हो और विश्व को काल का परिणमन कहते हो, ये दो विपरीत बात हैं। एकांत नित्य वस्तु का कभी परिणमन नहीं होता।

★ श्रुत की आशातना - रोगी को औषध देने में काल या अकाल क्या? मैले वस्त्र को धोने में काल/अकाल क्या? ऐसे ही यदि श्रुत मोक्ष का कारण है तो उसका काल/अकाल क्या?

(उत्तर पक्ष) जैनशासन में दुःख क्षय के लिए ~~प्रयोग~~ ~~प्रयोजन~~ किया जाता प्रत्येक योग परस्पर अविरुद्ध हो, इसलिए काल बतलाया है।

Notes Date :

प्र. केवलिप्रज्ञप्त धर्म की आशातना में श्रुत धर्म की आशातना कही। तो यहाँ पुनः कहने से पुनरुक्ति।

उ. वहाँ धर्म की अपेक्षा से कही गई, यहाँ स्वतंत्र श्रुत की अपेक्षा।

* श्रुत देवता की आशातना – श्रुतदेवता है ही नहीं या तो अकिंचित्कर है।
(उत्तर) मुनीन्द्र (तीर्थंकर) के आगम अनाधिष्ठित नहीं होने से श्रुत देवता है ही। और अकिंचित्कर भी नहीं है क्योंकि उसका आलंबन लेकर प्रशस्त मन वाले को कर्म का क्षय देखा जाता है।
अर्थात् जो प्रशस्त मन से श्रुत देवताधिष्ठित मंत्र को याता है, उसे कालादि शक्ति और विशिष्ट श्रुत का लाभ देखा जाता है, अतः कर्मक्षय प्रसिद्ध ही है।
(टीप्पणक)

* ~~वाचना~~ वाचनाचार्य की आशातना – वाचनाचार्य = उपाध्यायादि द्वारा संदिष्ट जो उद्देशादि करे। दूसरे के सुख-दुःख को नहीं जानते ये कितनी बार वंदन कराते हैं, सोचने से आशातना।
(उत्तर) यह तो ज्ञान का विनय है। अतः इतनी बार वंदन कराने पर भी इन्हें कौन-सा दोष?

सूत्र जं बाइद्धं वच्चामेलियं हीणक्खरियं अच्चक्खरियं पयहीणं विणयहीणं घोसहीणं जोगहीणं सुट्ठुदिन्नं दुट्ठुपडिच्छियं अकाले कओ सज्झाओ काले न कओ सज्झाओ असज्झाइए सज्झाइयं सज्झाइए न सज्झायं तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

प्र. ये सूत्र की आशातना पहले ही कह चुके हैं (धर्म और श्रुत की आशातना में) तो यहाँ कहने पुनरुक्ति।
उ. ये 14 सूत्र (14 दोष) श्रुतक्रियाकाल विषयक होने से पुनरुक्ति करने वाले नहीं हैं। (स्पष्टता टीप्पणक में)

टीप्पणक जैसे 'केवलिपन्नत्तस्स धम्मस्स आसायणाए' सूत्र में श्रुतधर्म की आशातना में श्रुत की आशातना कही गई तो भी 'सुयस्स आसायणाए' सूत्र में यह श्रुत की आशातना कही गई, वैसे ही प्रस्तुत 14 सूत्रों (जं वाइद्धं... दुक्कडं) द्वारा भी यही श्रुत की आशातना प्रतिपादित की जाती है। तो भी पुनरुक्त दोष की आशंका नहीं करना। क्योंकि पूर्व के दो सूत्र में कही आशातना सामान्यश्रुत विषयक थी किंतु प्रस्तुत जं वाइद्धं इत्यादि सूत्र में कही आशातना श्रुत पढ़ने के क्रियाकाल विषयक है अर्थात् श्रुत के अध्ययन में प्रवृत्त को लगने वाली है (जबकि पूर्व के सूत्र में कही आशातना किसी को भी लग सकती है)।

(ऐसे यहाँ पुनरुक्ति दोष का परिहार किया गया और) पूर्व के 2 सूत्र में परस्पर पुनरुक्ति की आपत्ति का परिहार वृत्तिकार (हरिभद्र सू.म.) द्वारा ही 'सुयस्स आसायणाए' सूत्र (की वृत्ति) में किया गया। अतः सब (सुस्थ) दोष रहित हुआ।

प्र. तो भी ये 14 पद तब पूरे होते हैं ~~न~~ जब 'सुट्ठु दिन्नं दुट्ठु पडिच्छियं' सुष्ठु दत्तं दुष्ठु प्रतीच्छितं', इन दो पदों को अलग आशातना रूप में गिनो। यह योग्य नहीं है क्योंकि अच्छी तरह सूत्र देने वाले को आशातना नहीं होती (अर्थात् सुष्ठु दत्तं में आशातना संभव न होने से उसे आशातना में नहीं ~~भिन्न~~ गिनना चाहिए)।

उ. ऐसा होता यदि यहाँ सुष्ठु शब्द शोभनत्व का वाचक होता तो (अर्थात् यदि सुष्ठु शब्द यहाँ 'अच्छी तरह' अर्थ में होता तो आपकी बात सही होती)। किंतु यहाँ ऐसा नहीं है क्योंकि सुष्ठु शब्द यहाँ अतिरेक वाचक अर्थ में विवक्षित है। भावार्थ यह है कि- अल्पश्रुतज्ञान के योग्य पात्र को सुष्ठु यानि अतिरेक से, अधिकता से जो श्रुत दिया, (वह आशातना होने से) उसका मिच्छामि दुक्कडं विवक्षित होने से कुछ भी असंगत नहीं है।

Notes Date :

हरिभद्रीय वृत्ति ★ दोषदुष्ट श्रुत पढ़ने से हुए अतिचार से मैं पीछे हटता हूँ। (उपर्युक्त)

→ व्याविद्ध = रत्नों की उल्टी माला की तरह सूत्र उल्टे बोलना, पढ़ना।

→ व्यत्याम्रेडित = कोलिक (हल्की जाति के मनुष्य) की खीर की तरह। [कोलिक जाति के मनुष्य खीर में अनेक प्रकार के खाद्य द्रव्यों को Mix करते हैं, किंतु वैसे ही सूत्र पढ़ते हुए अनेक सूत्रों को Mix करना।]

→ हीनाक्षर = अक्षर हीन बोलना।

→ अत्यक्षर = अक्षर से अधिक बोलना।

→ पदहीन = पद से ही हीन बोलना।

→ विनयहीन = सूत्र का उचित विनय किए बिना बोलना।

→ घोषहीन = उदात्तादि घोष रहित बोलना।

→ योगहीन = योगोपचार (योगोपधान, जोग) किए बिना पढ़ना।

→ सुष्ठु दत्तं = गुरु ने अल्पश्रुत के योग्य शिष्य को अधिक दिया हो।

→ दुष्ठु प्रतीच्छित = कलुषित अंतरात्मा से ग्रहण किया हो।

→ अकाले कृत स्वाध्याय = कालिकादि श्रुत का जो अकाल है, उसमें स्वाध्याय किया हो।

→ काले न कृत स्वाध्याय = जिस सूत्र का स्वयं का जो अध्ययन काल है, उसमें वह सूत्र न पढ़ा (अर्थात् दीक्षा के तीसरे साल में आचारांग, चौथे साल में सूयगडांग वि. क्रमशः योग्यता होने पर भी न पढ़े तो आशातना)।

→ असज्झाय काल में स्वाध्याय किया।

→ सज्झाय काल में स्वाध्याय न किया।

★ अव. 'यह अस्वाध्यायिक (असज्झाय) क्या है?' इस प्रस्ताव से अस्वाध्यायिक निर्युक्ति आई है। (वह कहेंगे)।

इति श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ पञ्चमो भागो निर्युक्तिक्रमाङ्कैकविंशत्यधिकानि त्रयोदशशतानि यावल्लिखितः।
मत्यधारिहेमचन्द्रसूरिकृतटीप्पणकाद्विशेषार्थानुद्धृत्य तैः सह हरिभद्रीय-वृत्तिर्लिखिता।

समाप्तिवासरः - पौषशुक्ल पञ्चमी, वि.सं. 2074।
स्थानम् - श्रीउमराजैनसङ्घः, सुरत (सूर्यपुरी)